मंज़िल से आगे

महावीर अधिकारी

भूमिका

'मंज़िल से आगे' मेरा पहला उपन्यास है। इसका लेखन सन् १९५३ में शुरू हुआ था, जबकि इस देश के राजनीतिक नेता, दार्शनिक और विचारक अपनी आस्थाओं के नवीन आधारों की खोज कर रहे थे। इस खोज में अपेक्षित उत्कटता नहीं थी। उसका एक स्पष्ट कारण यह था कि पिछले इतिहास की लगभग ४० वर्ष की अवधि में इस देश के राजनीतिक, दार्शनिक और राष्ट्र-निर्माण संबंधी चिन्तन का व्यक्तित्व सर्वथा भिन्न था, जबकि दलीय सिद्धान्तों और मतवादी आग्रहों के एक-दूसरे के विरोधी रहने के बावजूद विद्रोह का एक समग्र स्वर निर्मित हुआ था, जिसने इस देश का भाग्य बदल दिया।

आज़ादी हासिल होने के बाद छठे दशक में रचना और विकास का अभियान शुरू हुआ और पहले के मतवाद संबंधी आग्रह एक-दूसरे से विपरीत दिशाओं में बढ़ने लगे। युग-संधि का यह एक ऐसा ऐतिहासिक मोड़ था, जबकि सभी राजनीतिक दल यह विश्वास लेकर जनता के समक्ष उपस्थित हो रहे थे कि वे उसका समर्थन प्राप्त कर सकेंगे। इस संघर्ष में अनेक राजनीतिक नेता अपने ही विचारों की शिलाओं से टकराकर चकनाचूर हो गए। कुछ लोगों का हृदय-परिवर्तन हो गया। शेष अपने आंतरिक विरोधों को सहेज कर इस उम्मीद से आगे चलते रहे कि कभी जन-जागृति का ऐसा युग अवश्य आएगा, जबकि आम जनता उन्हें खोज निकालेगी और अपने नेतृत्व का भार उन्हींके कंधों पर डाल देगी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

यह उपन्यास १९६१ में प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका में नायक दिवाकर से लेखक ने कुछ सवाल पूछे थे, जिनका सारांश यह है कि जो चिंतन कर्म में मूर्तिमंत नहीं होता, वह दोहरी पराजय चिंतक को उपहार में देता है। दार्शनिकीकरण से किसी भी क्रांतदर्शी का चित्र एक कागज़ के बाघ से अधिक प्रभावी नहीं बनता। इस उपन्यास के सभी पात्र आस्था के एक

छोर से अपनी जीवन-यात्रा प्रारंभ करते हैं और आखिरी मंज़िल तक पहुंचते-पहुंचते विपरीत दिशा की ओर मुड़ जाते हैं। लेखन प्रारंभ करने के २३ वर्ष बाद और प्रकाशन के १४ वर्ष बाद भी इस रचना में निष्कर्षित जीवन-मूल्यों के प्रति मेरी आस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया है, वरन् ऐसा अनुभव होता है कि जो पात्र इस रचना में जीवंत हुए, वे गुज़रे हुए कल के जीते-जागते लोग थे, परिवर्तमान आज के लोग भी हैं और आनेवाले लम्बे समय तक भी अजनबी नहीं समझे जाएंगे।

मेरे परम मित्र, राजपाल एण्ड सन्ज़ के संचालक श्री विश्वनाथ ने नवीन संस्करण की व्यवस्था करके 'मंज़िल से आगे' उपन्यास को सम्पूर्ण हिन्दी जगत् के समक्ष उपस्थित होने और मेरी स्थापनाओं को समय की कसौटी पर परखे जाने का अवसर दिया है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

—महावीर अधिकारी

मंज़िल से आगे

भाग १

एक

अभी-अभी दिवाकर घूमकर वापस आया था। दिन-भर शहर में घूमने और नई-नई चीज़ों को देखते रहने के कारण उसकी पलकों पर एक बोझ-सा मालूम पड़ता था और मन पर एक अजीब उदासी छा गई थी। सामने मकानों का लम्बा सिलसिला चला गया था। मुंडेरों पर गुटरगूं करते कबूतरों और खपरैली छतों के अतिरिक्त क्या था, जो उसे संतोष देता! और यह खिड़की हवा, रोशनी और गर्द-गुबार के अलावा और क्या दे सकती थी? यही गर्द-गुब्बार उसके अंदर घुमड़ रहा था! बहुत देर तक वह खिड़की से बाहर देखता रहा। अंधकार घना होता गया। बिजली की बत्तियां अधिक चमकदार होकर नक्षत्रों की तरह चमकने लगीं। खिड़की पर दोनों कोहनियां टिकाकर वह फिर किसी गंभीर विचार में डूब जाता, अगर सड़क के उस पार के मकान में कुछ शोर न हुआ होता।

उसने कान देकर सुना—शोर नहीं था। कोई सज्जन भाषण कर रहे थे। बीच-बीच में रुक जाते थे और फिर धाराप्रवाह भाषण करने लगते थे। उसका कुतूहल जागा: 'बड़ा अजीब आदमी है कोई। शायद वक्तृत्व-कला का अभ्यास कर रहा है।' वह बुदबुदाया और फिर वक्तृत्व-कला के अपने बेढंगे अभ्यासों की याद करके—जोकि वह सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के पूर्व करता था—एक मुस्कराहट उसके होंठों पर फैल गई। बहुत देर से दांतों के नीचे दबे होठ जब उन्मुक्त हुए तो वह अपने-आपसे बोला, "क्या अकेला रहकर वह सचमुच पढ़-लिख सकेगा, और इस तरह की पढ़ाई-लिखाई में भी वही सुख है जिसने उसे जन-जीवन से मोड़कर इस तंग कोठरी में ला पटका है? और क्या यह जीवन के खुले रंगमंच की अपेक्षा अधिक अच्छे तौर पर प्रबुद्ध कर सकता है?"

प्रार्थना वह प्रभु ईसूमसीह के प्रति थी। निरंतर बौद्धिक और राज-

नैतिक वातावरण में रहने के कारण आस्तिकता का यह रूप उसे बड़ा रोमानी लगा। प्रभु ईशू मसीह से जीवन के सुख और साधन मांगने और उतने-भर से संतुष्ट रहनेवाले पादरियों को देखकर वह स्वयं एक अजीब रोमान से भर उठा।

अगले दिन सुबह उसने खिड़की खोली। खुली तो वह पहले ही थी, पर अब उसने बाहर की दुनिया देखने के इरादे से इस बार उसे पूरा खोल डाला। सामने का दृश्य बड़ा दिलचस्प दिखाई दिया। एक वृद्ध सज्जन काठ की कुर्सी पर पांव समेटे बैठे थे और अपनी साहबी हिन्दुस्तानी में उधर से गुज़रने वाले पड़ोसी बालकों के साथ चुहल करते जाते थे। सामने ही काठ के बाड़े पर एक लड़की अपनी साड़ी सुखा रही थी—जो शायद वह खुद ही धोकर लाई थी। उसकी आस्तीनें चढ़ी थीं, अलकें बिखरी हुई थीं और साड़ी के आधे हिस्से को उसने कमर से कसकर बांध लिया था। उन बुज़ुर्ग की मज़ाक सुनकर उसके चेहरे पर भी बार-बार मुसकान खिल उठी थी और हालांकि उसका सारा बानक झांसी की रानी की तरह सिपाहियाना बना हुआ था, फिर भी उसके कपोलों की थिरकनमयी रक्तिमा दिल पर नक्श होती जाती थी।

न जाने कहां से दिवाकर के मन में एक मोह जाग उठा कि काश, यह देवसुंदरी उसकी ओर एक बार देख लेती। आश्चर्य कि दिवाकर के मन में ज्यों ही यह भावना आई उस सुंदर लड़की ने खिड़की की ओर देखा। देखा तो बस एक बिजली चमककर रह गई। इस अजनबी की ओर से निगाह हटाकर उस सुंदरी ने उस बच्चे को देखा जो नंगा चला आ रहा था और अचानक, पास में संतरे के छिलके खाती हुई बकरी को ढेला मारने लगा था। अपनी एड़ियों पर ज़ोर देकर वह पीछे घूम गई और नल पर जाकर कपड़े धोने लगी। उसकी मोटी-मोटी वेणियां पीठ पर लहराने लगीं। उनमें बंधे हुए खुशनुमा फीते रंग-बिरंगी झलकियां देने लगे।

दिवाकर बेइख्तियार हो उठा। उस सुंदर लड़की ने उधर देखा, लेकिन बिलकुल इस तरह जैसे उस कमरे की दीवार को, काठ की बेजान खिड़की को! क्यों वह उसे देखकर, देखती ही नहीं रह गई? उसका स्वाभिमान चोट खा गया! उसकी पुस्तक किसी भिखमंगे के हाथ की तरह खुली रह गई। वह मन ही मन बुदबुदाया और उस भाव को खुद ही समझ नहीं पाया। फिर उसने अपना आईना उठाया। आज न जाने क्यों, वह अपनी

प्रतिच्छवि पर मुग्ध हो उठा : "सभी कुछ तो यथावत् है; उसकी पेशानी पर नूर है और उसकी ठोड़ी अभी इकहरी ही है, जिसपर उसकी विचारशीलता स्पष्ट झलकने लगी है। अब वह उन गैर-जिम्मेदार छोकरों की तरह नहीं है, जिनकी ओर से भद्र कुमारियां बहुधा मुंह फेर लेती हैं।"

लेकिन उस लड़की ने उसकी ओर तवज्जह नहीं दी। इतनी भी नहीं, जितनी बिना प्रयोजन लोग किसी अजनबी के लिए जाहिर करते हैं। वह अंदर ही अंदर कहीं पराजित हो रहा था। वह पराजित नहीं होना चाहता था। उसने खिड़की इस तरह बन्द कर ली कि वह सुंदर लड़की उसे दीख पड़े और उसकी अपनी कुंठा भी नंगी न होने पाए। पर उस लड़की ने खिड़की पर अनुराग की एक नजर भी नहीं डाली। उसके लिए जैसे खिड़की वहां थी ही नहीं।

दिवाकर ने सोचा, शायद उससे पहले कोई ऐसा आदमी उस खिड़की में झांकता रहा हो—जो देखने का पात्र ही न रहा हो। इस दुर्भाग्यपूर्ण विरासत ने ही उसके सौभाग्य की संभावनाओं को ढक लिया है। कौन हो सकता है वह आदमी—जो उससे पहले यहां रहता रहा था। वह उस कक्ष के रिक्त अतीत को पकड़ने की कोशिश करने लगा।

कुछ टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें और कुछ कविताएं दीवारों पर लिखी हुई थीं। कुछ थोथ-थावय थे—उन सबमें मायूसी थी। क्या वह इस खिड़की से बाहर झांक-झांककर मायूसी को सीने में भरता रहा है! सोचते-सोचते न जाने कितने श्मशानों की गहरी अंधियारियों में वह भटक गया। उस अनुपस्थित पूर्ववर्ती की तलाश में न जाने वह किन-किन कदराओं में जा पहुंचा। पेशानी पर जब मच्छर ने दंश किया तो उसे अपनी स्थिति का भान हुआ। घबराकर उसने खिड़की बंद कर दी।

उसने कपड़े बदले। घूमने चला, पर न जाने कैसे पैर पीछे गली की ओर मुड़ गए। वह लड़की सामने बैठी थी! आरामकुर्सी पर! कुछ पढ़ती हुई। वह सामने आया तो आंखें मिल गईं। उलझ गईं। और उस एक क्षण की उलझन में बहुत कुछ साफ हो गया। वह कुछ इस तरह घबराई कि जैसे बदहवास हो गई हो और उसी हालत में अंदर दौड़ गई।

वह आगे बढ़ गया। सचमुच ऐसा हो गया प्रतीत होता है जिसके लिए वह तैयार नहीं है, और उसे होना नहीं है। यह प्रेम की पीड़ा क्या उसने पहले नहीं सही है! और इस पीड़ा का दायित्व भी क्या उसे अपने कन्धों

पर धारण करना नहीं पड़ा है !

उसे सहसा शान्ता की याद आ गई। क्यों, शान्ता ने उसे प्रेम की पीड़ा नहीं दी थी? एक लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति ! वह अपने सुख, वैभव और विलास को छोड़कर क्या उसके साथ नहीं चली आई थी ! वह प्रेम का श्रेय-प्रेय और प्रेम का पुरस्कार ! सभी कुछ तो वह पा गया है ! और भविष्य में ऐसे आनंद और ऐसी पीड़ा से दूर ही रहने का उसने प्रण कर लिया था, पर आज यह प्रेम का यह पीड़ा-युक्त संभार वह संभाल क्यों नहीं पा रहा है ? शान्ता आज भी उसके जीवन में है। उसके बाद भी अनेक लड़कियां उसके जीवन में आईं, पर लगता था कि शान्ता के बाद वह पीड़ा का कोष चुक गया है और अब और अधिक इस पीड़ा को सहन करने योग्य वह नहीं रह गया है।

वह क्यों इस लड़की को देखे बिना नहीं रह सकता? मनुष्य आखिर क्यों बार-बार इस पीड़ा को अन्तर में भरने के लिए तड़प उठता है? क्या नारीत्व सचमुच ही मनुष्यत्व के विकास की चरम पराकाष्ठा है और आदमी अगर उसमें खो जाना चाहता है, तो और भी अधिक सुंदर और स्वीकार्य बनने के लिए ! इस लड़की में खोकर वह कहां पहुंचने वाला है।

वह पति नहीं बन सकता। पति बनकर वह सांसारिक दायित्वों को निभा नहीं सकेगा। उसका विराट् स्व की संख्या में परिमित हो जाएगा। एक, दो और तीन ! एक की अनेकता अपरिसीम है। वह अपनी आत्मा को उसी विराट् मानवता के लिए अर्पित कर चुका है जो दीन-दलित है और जिसे पशुता का जीवन व्यतीत करने पर मजबूर किया जाता है, उसके उद्धार के लिए ! इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने एक दल की सदस्यता का वरण किया है जहां लोग अपने सुख को त्यागते हैं ताकि दूसरों के जीवन में सुख का संचार हो सके। शान्ता ने इसी कर्त्तव्य-मार्ग का रोड़ा बनना शुरू कर दिया था।

आज फिर यह क्या होने वाला है ? वह सारी तस्वीर जो उसने जीवन की बनाई है—उसमें दिवाकर कहां है ! क्यों उसके जीवन में आये दिन नित-नई पीड़ाएं कसकती ही रहती हैं ! वे घनीभूत होकर उस एक से एकाकार क्यों नहीं हो जातीं !

सुबह हुई तो उसके मन में भी जैसे नई ऊषा जाग उठी। समूह के जीवन से हटकर जब आदमी अकेला पड़ता है, तो उसका आपा जाग उठता है।

उसके साथ मां-बाप, भाई-बहिन और परिजन याद आते हैं। उसकी सोई हुई वासनाएं जाग उठती हैं। गली में शाम को छिड़काव हुआ, दरियां बिछीं। बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई। पड़ोस से इस सार्वजनिक कार्यक्रम को कौतूहल की दृष्टि से देखने वाले भी आ गए थे। ठीक समय पर पादरी साहब आए, प्रवचन हुआ, प्रार्थना हुई, प्रभु ईसूमसीह से उस दिन की रोटी और सारी दुनिया के लिए खुशी और सलामती की प्रार्थना की गई। हालांकि वह व्यवस्था करते हुए सामने वाला समूचा परिवार कई घंटों तक गली में आ गया था, परन्तु दिवाकर औरों की तरह लोगों की बड़ी भीड़ में से एक कभी बन ही नहीं सका है। वह नीचे नहीं उतरा, उस सुन्दर लड़की ने कई बार इधर-उधर देखा, नज़र चुरा-चुराकर खिड़की की ओर देखा। फिर भी नहीं।

प्रवचन समाप्त हुआ, पादरी साहब बड़ी ऊंची-ऊंची आवाज में आने वालों की मिज़ाजपुर्सी करते रहे और उन्हें बर्खास्त करते रहे। फिर जिज्ञासुओं की भीड़ जमा हो गई। वह जिज्ञासु भी नहीं बन सका। सामने रखी हुई पुस्तक लेकर बैठ गया, पढ़ता रहा और बीच-बीच में खुदा और उसकी खुदाई को जानने की व्यर्थता पर विचार करता रहा।

सुबह हुई। सामने के मकान वाले बुजुर्ग आरामकुर्सी पर बैठे थे। उनकी निगाह खिड़की की ओर उठी। दिवाकर ने देखा, तो निगाह नीची हो गई। बुजुर्ग ने फिर देखा, चश्मा आंखों पर चढ़ाकर देखा। दिवाकर के मन में कुछ ऐसा लगा कि उसे नीचे उतरकर उनके इतना सोद्देश्य देखने का अर्थ पूछना चाहिए। बात बड़ी बेतुकी लगी।

क्या वह यह सोचते हैं कि मैं खिड़की से उनकी खूबसूरत लड़की को देखता हूं? यह संदेह अगर सच है तो उसे दूर होना ही चाहिए और वह नीचे उतर आया। उसके हाथ में मिल्टन का 'पैराडाइज लॉस्ट' था।

वह उन बुजुर्ग के पास सीधा चला गया और उनका अभिवादन किया।

"कहिए"—बुजुर्ग ने पूछा।

"कुछ विशेष नहीं कहना है" उसने कहा, "कल आपके यहां सत्संग हुआ। मैं सोचता रहा—मैं भी क्यों न शरीक हुआ। फादर सबकी जिज्ञासा को कितने धैर्य के साथ शांत कर रहे थे। मेरे भी कुछ प्रश्न थे, पर मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूं। आ जाता तो शायद कुछ पूछ लेता।"

"अच्छा, अच्छा जरूर," उन्होंने कहा, "हमारे यहां सबका स्वागत है ! प्रभु ईशुमसीह के दरबार में सबका स्वागत है, बैठिए !"

वह बैठ गया। बुजुर्ग ने फिर पूछा, "क्या पूछना था आपको ?"

"मेरी कोई धार्मिक जिज्ञासा नहीं है, मैं तो साहित्य के बारे में पूछना चाहता था।"

"साहित्य, अरे हां, ये फादर साहित्य नहीं जानता, वह तो बस प्रीच करता है। पर हां, फादर विलियम मसीह होने से पहले अंग्रेजी का प्रोफेसर था। आज शाम को वह प्रीच कर रहा है। आप आइए। उनसे वक्त लीजिए।" फिर उन्होंने जोर से आवाज लगाई, "ओ शकुन, ज़रा देखो, ओ शकुन !"

बड़े उत्साह से बोले, "मेरी लड़की आपको बताएगी कि फादर विलियम कहां प्रीच कर रहा है !"

बुजुर्ग की आवाज के उत्तर में पुत्री चली आई थी।

"बोलो तो फादर···"

लेकिन बात पूरी होने से पहले ही लड़की ने छोटा-सा छपा हुआ पुर्ज़ा भी आगे बढ़ा दिया। बुजुर्ग ने कहा, "यह मेरी लड़की शकुन्तला जोज़ेफ, इस साल बी० ए० की परीक्षा देगी और आप ? माफ कीजिए, आपके बारे में तो मैंने कुछ पूछा ही नहीं।"

उसने बताया कि वह दिवाकर है। लखनऊ से आया है। यूं ही घूमने आया है। कुछ दिन रहकर एक-दो काम पूरा हो जाने पर चला जाएगा। यह भी कि उसका सौभाग्य है कि उसे इतना अच्छा पड़ोस और रहने के लिए अच्छा मकान मिल गया है। खिड़की से हवा आती रहती है और वह दिन-भर वहां बैठकर पढ़ता रह सकता है।

शाम को वह फादर विलियम के प्रवचन में गया। शकुन का आज नया रूप देखा। प्रभु ईशुमसीह की प्रशस्ति में उसने एक प्रार्थना गाई और बाइबिल से कुछ आयतें पढ़ीं। वह सोचता रहा, "अगर यह शकुन्तला जोज़ेफ अपने प्रेम के प्रतिदान की शर्त यह लगा दे कि वह मसीह बन जाए, तो क्या वह मसीह बन सकेगा ?" कंठ इतना मधुर था कि इस बात पर निर्णय करने का काम उसने भविष्य के लिए छोड़ दिया। बाद में वह आंख मींचकर प्रवचन सुनता रहा। जब कभी आंख खोलता तो केवल शकुन की ओर ही उसकी निगाह उठती थी। कई बार निगाहें मिलीं। धीरे-धीरे उसकी निगाह

से अजनबीयत का तंज भी निकल गया। प्रवचन समाप्त हुआ। सब लोग चलने लगे। वह अकेला था, जाने में दुश्वारी महसूस होने लगी। जाने के इरादे से वह बाहर निकलकर खड़ा हुआ कि मिस जोज़ेफ आई, बोली, "आप फादर विलियम से मिलिएगा ?"

उसने कहा, "बात बहुत थोड़ी-सी है। क्यों उन्हें कष्ट दिया जाए ? अगर आपके पास ही बाइबिल लेकर देख लूंगा तो काम चल जाएगा।" तो उसने उत्तर दिया, "बाइबिल भी मिल सकती है लेकिन मैंने फादर से आपकी भेंट पक्की कर दी है।"

फादर विलियम सांवले रंग के मद्रासी सज्जन। एक अनोखी अदा से मुस्कराकर बड़ी गर्मजोशी के साथ उन्होंने हाथ मिलाया और रहस्यमयी निगाहों से शकुन्तला की ओर और कभी दिवाकर की ओर देखते हुए बोले, "बहुत ख़ूबसूरत ! मिस जोज़ेफ को भी साहित्य से बहुत दिलचस्पी है। यह साहित्य की बहुत अच्छी स्कॉलर है।"

बात कुछ इस तरह बनी कि शकुन्तला वहां से हटने पर मजबूर हो गई। फादर की निगाहों ने यह क्या कर दिया। घर आकर दिवाकर यूं ही कुर्सी पर पड़ गया। बात निरन्तर उलझती जा रही थी। वह उठा, पढ़ने बैठा। खिड़की खोली। सामने देखकर वह हैरान रह गया। वही खिड़की जिस-पर हमेशा पर्दा पड़ा रहता था, ठीक उसीकी खिड़की की तरह खुल गई थी और सामने थी शकुन्तला जोज़ेफ ! उसके हाथ में पुस्तक थी और पुस्तक की ओर देखते-देखते वह उस खिड़की की ओर भी देखती थी, जिसे कुछ ही समय पहले उन्होंने बिलकुल उपेक्षित कर दिया था। क्या फादर विलियम के उस 'ख़ूबसूरत' शब्द का सामान्य से कुछ अधिक अर्थ शकुन्तला ने लगा लिया है ? दिवाकर एक मीठी पशोपेश में पड़ गया। अब वह निरंतर खिड़की से बाहर देखने लगा। बिजली की तेज़ रोशनी में शकुन्तला जोज़ेफ का चेहरा तमतमाया हुआ-सा लग रहा था।

रात के ग्यारह बज गए। दिवाकर बाहर की ओर ही ताकता रहा। शकुन्तला शायद यह सब देख रही थी। एक अजीब अदाज़ से उसने दिवाकर की ओर देखा जिसका अर्थ था कि अगर तुम कोई पुस्तक पढ़ नहीं रहे हो तो सो जाओ और अपनी बत्ती बुझा दो। लेकिन सामने की बत्ती फिर जल उठी। दिवाकर हंस पड़ा। वाह, क्या सांकेतिक भाषा है ? नयनों की भाषा कितनी स्पष्ट और संकटहीन होती है ! क्या वह सो नहीं सकी !

अगले दिन फिर सुबह दोनों खिड़कियां रोशनी से जाग उठीं। निगाहें मिलीं। निगाहों में मुस्कान खिली। वह फिर रानी लक्ष्मीबाई बनी। साइकिल पर चढ़कर कालिज गई। दिवाकर की खिड़की उसकी इंतजार में आंखें बिछाए खुली रही।

शाम को दिवाकर ने देखा खिड़की के सामने खड़ी होकर वह पुकार रही है—"क्या आप नुमाइश नहीं चलेंगे?" और इतने में आश्चर्यचकित होकर समझता कि वह आवाज़ उसीको जगाने के लिए फेंकी गई है···वह बुज़ुर्ग दूसरे कमरे से बोल उठे—"नहीं! तुम लोग जाओ।"

दिवाकर आनन-फानन में नुमाइश जाने के लिए तैयार हो गया। नुमाइश में भी वह काफी देर तक भटकता रहा। शकुन्तला उसे कहीं भी न दीख सकी, फिर भी उसे तस्कीन थी कि वह कहीं न कहीं तो है। अब उधर स्वीकृति का इज़हार हुआ था तो वह जैसे आत्म-विस्मृति के किसी गहरे गर्त में पैठ गया था। सामने की खिड़की अब तरह-तरह के रंग बदलती है। कभी झीना-सा पर्दा खिंच जाता, गुनगुनाहट आती है और कभी तेज़ खिलखिलाहट आती है। यह सब एक तिलिस्म था, एक रहस्य था, जिसमें दिवाकर जकड़ता जाता था—भोले-भाले शिशु की तरह उसमें खोता जाता था।

उसने तय कर लिया कि वह इस जकड़ को ढीला करेगा, वरना वह मर जाएगा। उसने सोचा कि वह उसका पीछा करेगा और अपने दिल की बातें साफ कर देगा। तीन दिन की लगातार कोशिश में वह कामयाब हुआ। वह साइकिल पर नहीं, पैदल ही आती हुई दीख पड़ी थी सड़क के दूसरी ओर। दिवाकर ने सड़क के दूसरी ओर कदम बढ़ाए। लेकिन ठीक वक्त पर वह फिर दूसरी तरफ चल दी। एक अजीब अदा से मुस्कराकर वह रास्ता काट गई। लेकिन दिवाकर ने इस तरह विश्वास के साथ उसे पुकारा कि अगर वह न रुकती तो भरी हुई सड़क पर एक हंगामा खड़ा हो जाता। ज्योंही दिवाकर पास पहुंचा, उन्होंने कहा, "क्या कहना है। सड़क पर बातें करना ठीक नहीं लगता है, सामने हमारे एक चाचा रहते हैं···कोई बाहर निकल आया तो। आप बाइबिल मंगा लीजिएगा।"

"बाइबिल! जी हां, मैं भूल ही गया।"

"इसी तरह भूलते रहे तो क्या होगा?"

"मैं तो एक अग्नि-परीक्षा में फंस गया हूं।"

"अग्नि-परीक्षा?"

जी हां, यहां का मौसम अच्छी-खासी अग्नि-परीक्षा है।"

"आप खिड़की बंद कर लिया करें। अग्नि-परीक्षा में शायद कुछ कमी पड़ जाए।"

दिवाकर लाजवाब रह गया।

वे दोनों साथ-साथ चलते रहे। चाचा का घर भी निकल गया। कोई दुर्घटना नहीं हुई। सामने की गली पर पहुंचकर शकुन्तला बोली, "आप क्या कहना चाहते थे, कहा नहीं!" दिवाकर कुछ कहे कि वह फिर बोल उठी, "अच्छा, अब आप सामने से जाइये और मैं पीछे से जाती हूं।"

दिवाकर क्या कुछ कहने आया था, जकड़ से छूटने आया था, जकड़ में फंस गया। अब वह अकेला चल रहा था। कुछ न कह सकने की निराशा के बावजूद एक अजीब-सी पुलक उसके शरीर में दौड़ गई थी। दिवाकर अपने कमरे में घुसा। बत्ती जलाई, खिड़की खोली। देखा सामने, खिड़की बंद थी। दिवाकर फिर भी सोचता रहा, "यह कितनी ममतामयी है। क्या सचमुच इंसान उस स्पर्श से वंचित होकर जो उसकी वासनाओं को जगाते हुए भी उसके चिन्मय रूप को खोने नहीं देता, निरा पशु ही नहीं रह जाता! सांसारिकता से वैराग्य, सेवाव्रत और सिद्धान्तों से पाणिग्रहण करके जीवन की नैसर्गिक निष्पत्तियों से वह इतनी दूर नहीं भागता कि एक दिन उसे आत्म-प्रवंचना कहकर उसके प्रति धिक्कार से भर उठे। युग-युग से आते हुए मनुष्य का इष्ट क्या है और उसकी पूर्णकामता कहां है? शकुन्तला मेरी क्या है! नारी पुरुष की क्या है कि उससे ही जन्म पाकर वह उसके उच्छ्वास की ऊष्मा, स्पर्श की सिहरन और सहवास के लिए तड़पता है? क्या उस आनंद को मनुष्य त्यागकर नहीं रह सकता? ऐसा सोचते-सोचते उसने अनुभव किया कि शकुन्तला उसके पास बैठी है और अपने उज्ज्वल नेत्रों से उसकी ओर अपलक देख रही है। अगले दिन उसे अपने कमरे में एक चिट्ठी मिली। लिखा था, "परसों मेरी परीक्षा समाप्त होगी। इत्मीनान से कहियेगा जो कहना हो। देखती हूं, हर वक्त खिड़की में ही बैठे रहते हैं।"

पत्र की लिखावट सुंदर थी। तीन दिन तक प्रतीक्षा करने के लिए लिखा गया था। इस छोटी-सी पुर्जी को पढ़ने के बाद दिवाकर की हालत उस पीने वाले के समान थी, जिसे शराब का एक प्याला देकर मेज के लिए शांति-पूर्वक प्रतीक्षा करने की बात कह दी गई हो। वह उस पुर्जी को बार-बार पढ़ रहा था।

दिवाकर को अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि कितने ज़रा-से विश्वास की छाया उस पुर्जे में से देखने के लिए वह कितनी बड़ी पीड़ा सहन कर रहा है। वह दिवाकर जो सहस्त्रों नर-नारियों की भीड़ को एक ही हुंकार में आंदोलित कर देता है, जिसे कारावास की कठोर यातनाएं सुई की चुभन से अधिक प्रतीत नहीं हुईं. वही दिवाकर किसी एक के कृपा-कटाक्ष के लिए मकड़ी के जाले में फंसी गरीब मक्खी के समान छटपटाकर रह गया है। पर वह सोचता है कि यातना जब कभी उसे पहुंचाई गई है, अपने विश्वासों के प्रति उतनी ही अधिक निष्ठा उसके मन में बढ़ी है। इस प्रेम की पीड़ा के घनीभूत आनन्द की संभावनाएं शायद उसे इस मार्ग पर ले जा रही हैं।

तीसरे दिन सामने की खिड़की खुली। दिवाकर को लगा, जैसे वर्षों की घनघोर वर्षा और बादलों के घटाटोप के बाद आज पहली बार सूरज निकला है। शकुन्तला की चितवन में उल्लास था और उससे आनंद की एक कोमल छटा विकीर्ण होती दिखाई पड़ती थी। यह कैसी अजीब तपस्या है! दिवाकर सोचता है, 'इस आनंद और पीड़ा के झूले में झूलने वाली तपस्या का न जाने कौन-सा अंत होगा!'

उस दिन दिवाकर का दिल पढ़ने-लिखने में खूब लगा। कई दिन के पड़े हुए पत्रों का उत्तर भी दे डाला। अंगूर बेचने वाली से ढेर-से अंगूर तुलवा लिये। खिड़की से बाहर भी उसने बहुत कम देखा। वह उस पुरस्कार की गरिमा से अपने को सम्पन्न करना चाहता था, जो बिना मांगे मिलता है।

शाम निकट खिंचती जाती थी। प्रत्येक क्षण वह किसी बहुत बड़ी घटना की प्रतीक्षा में था और जब वस्तुतः उसे संकेत मिला तो उसे लगा कि जैसे क़फ़स के द्वार खोल दिये गये हैं।

थोड़ी ही देर में वे उसी पार्क में पहुंच गये थे जहां से आते हुए उसने एक दिन उस पीड़ादायिनी को टोक दिया था। आज तो बिलकुल पास बैठकर उतना साहस भी बटोरे नहीं बन रहा है। संकेतों में चाहे प्रेम की कोमल-से-कोमल भावनाएं व्यक्त की जा चुकी हों...प्रेमी परस्पर मिलते हैं तो कितनी मर्यादा में अपने को बांध लेते हैं। एक मीठे असमंजस में दोनों की नाड़ियां फड़कने लगी थीं। दिवाकर तो इस तरह डूबा जा रहा था जैसे प्रेम के नहीं, सचमुच पानी के सागर में डूब गया है। वह अपने इस बधिर-भाव पर झुंझला भी आया था। आज फिर वह शकुन्तला का सामीप्य पाकर किसी लुटे हुए मुसाफ़िर की तरह भौंचक खड़ा रह गया है। वह आश्चर्य करता है कि यदि

इस प्रेम के व्यापार में यह अपने जीवन की समस्त दुर्बलता दे बैठा, तो क्या होगा। उसे सूझने लगा था कि प्रेम करनेवाले क्यों देखने में स्त्रियों के समान कोमल दीख पड़ते हैं। और वह बोला भी तो कितना फीका : "परीक्षा अच्छी तरह पूरी हो गई ?"

"जी, बहुत अच्छी तरह। आप भी अच्छी तरह रहे न ?"

"कोई खास काम कर पाना शायद मेरे भाग्य में बदा नहीं। परीक्षाएं अलबत्ता मैं भी जरूर देता आया हूं।"

"मैं किस अधिकार से कहूं कि आप पूरी दिलचस्पी के साथ अपना काम करें।"

"क्या भी करें ! अधिकार का प्रयोग करने से अगर अधिकार की सार्थकता बनती है, तो वह बेकार है। यहां हम आ गए हैं···बिना एक-दूसरे को जाने-पूछे। कौन-सा अधिकार पाकर ?" दिवाकर ने कहा।

"आदमी से आदमी का पूछना क्या ? कोई आदमी है तो बस आदमी है, प्रभु ईसू मसीह खुदा का बेटा है और आदमी उसका बेटा है। और जिसके रावेल में ही सम्राटों की सत्ता बन्दी हो, उसके अधिकार से कैसे पार पाए कोई ?"

"अधिकार ! वह तो शैतान का भी होता है। कितना खूबसूरत बनकर आदमी को छलता है। प्रभु ईसू मसीह के पुत्र कभी-कभी शैतान भी निकल आते हैं ? हमारी यह समाज-व्यवस्था और ये रिश्ते जिन पर गतानुगतिक भाव से हम चलते आते हैं, उन्हें भी शैतान ही तोड़ता है ? काश ! अगर आपके दर्शन उस दिन पिता जी के पास न होते और आप हमारी प्रार्थनाओं में न आते, तो क्या आप शैतान से कम दीख सकते थे ? क्या तब आपकी जिंदगी की पटमिमा कारगर साबित होती !"

"मैं पिताजी के पास इसीलिए गया था कि उन्हें यह जाहिर कर दूं कि मैं शैतान नहीं हूं ! देखना मात्र अधिकार प्राप्त करना नहीं होता।" दिवाकर, हालांकि, और भी ज्यादा बनने के लिए यह कह रहा था।

"फिर भी तो आप खिड़की से एकटक बाहर देखते रहते थे। अच्छा बताइए, किसी पादरी से 'पैराडाइज लास्ट' का अर्थ आप पूछने जायें तो वह आपको शैतान नहीं समझेगा···शैतान ही नहीं, सीधा लूसीफर समझेगा। वह तो अच्छा हुआ, आपने पिता जी से कुछ चर्चा नहीं की।"

"विश्वास करेंगी अगर कहूं कि उस दिन सड़क पर इतने बेधड़क पुकारने

का मेरा आशय प्रेम-निवेदन करने का नहीं था। आपसे कहना चाहता था कि मुझे कोई ऐसी दवा दें कि मेरे प्रेम-रोग का उपचार हो जाय।"

"मैं डाक्टरी नहीं पढ़ती···साहित्य पढ़ती हूं।"

"साहित्य की पुस्तकें शरीर-शास्त्र की शिक्षा से भरी होती हैं। वहां पहले दर्द पैदा किया जाता है और बाद में उसकी दवा करना सिखाया जाता है! वह और भी आगे का शास्त्र है।"

एक हल्की मुस्कराहट शकुन्तला के चेहरे पर मुखर हो उठी। उसने कहा, "किस्से-कहानियों में मैंने बहुत-सी बातें पढ़ी थीं जिन्हें अटपटी मानकर छोड़ दिया था। कीर्ति कहती है कि कुछ दिन से मैं ही स्वयं पागलों-जैसी दीखती हूं। मिस यंग तो मेरे बारे में अनेक कल्पानाएं करने लगी हैं, उसकी ज़बान को तो वैसे ही लगाम नहीं है।"

"कीर्ति आपकी बड़ी बहिन हैं न, बड़ी चुप रहती हैं?" दिवाकर ने कहा।

"ये चुप रहने वाले बड़े ज़ालिम होते हैं। सारे घर की मर्ज़ी के खिलाफ विवाह करके ही रहीं। उनका पति बड़ा अच्छा है। बाप रे बाप! फौज में कप्तान है। हमेशा हंसता ही रहता है। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। बस, हमेशा हंसना ही हंसना!"

"तो बागियों का परिवार है आपका?"

"बागियों का? हमारे से ज्यादा कंजर्वेटिव क्या होगा किसी का परिवार। जीजी की बात को आप अपवाद समझ लीजिये। मज़ा यह कि जीजी जितनी भक्तिन हैं, वह हज़रत उतने ही हरफनमौला हैं!"

"ठीक तो है—जीजी भक्तिन हैं और जीजा हरफनमौला। उनकी गाड़ी ठीक चलेगी।"

फिर बातचीत का सिलसिला एकदम टूट गया और दोनों ही हरी घास की जड़ें कुरेदने लगे। अब की बार शकुन्तला बोली, "सुनिए, आपको यह शहर कैसा लगा?"

"अब तो अच्छा लगता है।"

शकुन्तला का चेहरा खिल गया।

"कहते हैं कि बाहर के लोगों को यहां खाना-पीना नहीं रुचता!"

"मेरा विदेशीपन कम हो गया है।"

"मैं लज्जित हूं, कुछ भी नहीं कर सकती। इस समय आपके साथ हूं

और अकस्मात् कोई आपका परिचय पूछने लगे तो कोई सार्थक प्रसंग भी सूझेगा—विश्वास नहीं होता।"

"यह सज्जा, असमर्थता और असमंजस उठ चलने की भूमिका है! अगर आप न होतीं तो शायद मैं यहां से चला जाता। मैं केवल इसी दिन की प्रतीक्षा में इस शहर की धूल-कंकड़ बर्दाश्त करता रहा हूं।"

"सच"'!" यह शब्द शकुन्तला के दिल की इतनी गहराई से निकला कि उसकी गंभीरता पर खुद सोचकर उसने हाथों से अपना चेहरा ढक लिया। इस बार दिवाकर उस अमृतमयी नाटिका का नायक बनकर स्वाभिमान के और ऊंचे स्तर पर अवस्थित हो गया। कमल-मुख पर मृणाल जाल-सी फैली उंगलियां जैसे उसके अपने वक्षस्थल पर फैली हुई थीं!

एक रूखी-सूखी बात कितनी व्यक्तिगत हो गई। सोचकर भी उसने यही निश्चित किया कि बात अधिक अनकही नहीं थी, भावना को भाषा देने का प्रयास ही था जो निश्चय ही टूटकर गिर जाती, अगर शकुन्तला उस बात को इतनी कोमलता से ग्रहण न करती। दिवाकर ने सोचा कि वह उसके सुन्दर मुखमंडल को उसकी उंगलियों की ओट में देखे कि वह कौन-सी बात है जिसने नारी को कामिनी के पद पर अभिषिक्त किया।

"अब आगे क्या होगा?" वह बोला।

"क्या कहूं! कुछ सूझता नहीं है। पिताजी ने दक्षिण जाने का प्रोग्राम बना लिया है—क्या कहकर उसे टाल सकती हूं!"

"क्यों, क्या सिर्फ 'नहीं' कह देने से काम नहीं चलेगा?"

"कैसे चलेगा, पिछले तीन वर्षों से उनको तंग करती रही हूं। सब तय हो जाने के बाद बिना कारण यात्रा कैसे स्थगित होगी!"

"शकुन्तला," दिवाकर ने उसके कन्धे पकड़कर झकझोरते हुए कहा, "मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। मैं जानता हूं, तुम नहीं जाओगी। हमारा रिश्ता इतना हल्का नहीं है कि उसे यूं ही तोड़कर चली जाओगी!"

स्पर्श और अधिकार में कितनी भावना होती है, कोई छुई-मुई के पौधे से पूछे। शकुन्तला जिसकी प्रतीक्षा में अनमनी होकर भाग रही थी, उसे अकस्मात् पाकर निश्चेष्ट हो आई। दिवाकर को सहारा देकर उसे अपने वक्ष से दूर रखना पड़ा। फिर भी वे एक-दूसरे का सहारा लेकर आगे चलने लगे। कोई बोलता नहीं था। बोलने की ज़रूरत भी नहीं थ, शकुन्तला की आंखें उनींदी हो गई थीं। दिवाकर उसे, इतने अ-

संभाले हुए था जैसे स्वयं देवानांप्रिय मानव की पीड़ा का भार वहन करने पृथ्वी-तल पर उतर आए हों।

वे दोनों इसी तरह बहुत देर तक चलते रहे। दिवाकर ने शरीर के सहारे से दिशा बदल दी, तब भी चलते रहे। फिर भी कोई नहीं बोला। जब घर नज़दीक आ गया, तब भी कोई कुछ नहीं बोल सका। बात इतनी गहरी हो गई थी कि दोनों को ही उसकी सचाई पर विश्वास नहीं होता था। शकुन्तला चलने लगी तो बोली, "आपको छोड़कर मैं जा ही नहीं सकती। अब तो हम जन्म-जन्म के लिए बंधन में बंध गए हैं।

खिड़कियां खुली थीं—जैसे दो बांहें किसी को अपने आगोश में समा लेना चाहती हों। दिवाकर सामने खड़ा हो गया और वह जो आज उसके लिए उसके विश्वासों और आकांक्षाओं की साकार मूर्ति थी, इस तरह उदित हुई जैसे प्रलय की उन अघटित घड़ियों की कल्पना मात्र से ही स्तंभित रह रह गई हो। आंखों से उसने देखा और कहा, "तुमने मेरे जीवन के ३२ वर्ष से बनते हुए विश्वासों को कैसे अपनी मुट्ठी में बांध लिया?"

संकेत आया, "प्रेम का अधिकार संसार का सबसे बड़ा अधिकार होता है। ईसा मसीह प्रेम के लिए सूली पर चढ़ गया और उसने मनुजत्व में देवत्व की स्थापना कर दी।"

उत्तर गया, "क्या तुम मुझे भी ईसा मसीह बनाना चाहती हो? प्रेम के पंथ में बड़े कांटे होते हैं—अपने को खोना होता है।"

संकेत आया, "अगर तुम्हारे-जैसे साथी का विश्वास प्राप्त हो, जीवन यात्रा सुख से कट सकती है…"

उत्तर गया, "अपने मन्दिर के कपाट बन्द कर लो…इस महान मुहूर्त में कोई दूसरा प्रवेश कर गया तो अनर्थ हो जाएगा।"

यह संकेत-भाषा काफी देर तक चलती रही। मुद्राओं से आगे बढ़कर उसने अंग-प्रत्यंग से विविध भावनाओं द्वारा अपना प्रेम-निवेदन किया। दिवाकर को बस इतना ज्ञान था कि इस दृश्य को देखने से पहले वह ज़मीन पर था और फेफड़ों से जो गहरी सांस निकल जाती थी, उससे विश्वास होता था कि वह स्वर्ग में नहीं पहुंच गया है जहां लोग बिना सांस लिये भी जी सकते हैं।

इस अनुपम प्रेम-निवेदन के बाद कोई पर्दा नहीं रह गया था, परहेज़ नहीं था। पर्वत-उपत्यका में बसे उस हरे-भरे पुष्प-पादपों से गुंजान शहर का

कौन-सा सुंदर स्थल था, जहां उनकी प्रेम-क्रीड़ाओं की छाप न रह गई हो, कौन-सा विशेषण था जिसे उन्होंने एक-दूसरे के लिए प्रयोग न किया हो। उन्होंने अपने आदर्शों, भविष्य की योजनाओं, माता-पिता-परिवार और परिजनों की चर्चाएं की थीं। इस सब में दिवाकर डूब गया था; केवल भगोड़ा दिवाकर ही नहीं, वह क्रांतिकारी दिवाकर भी, जिसने आज तक रति को भी क्रांति के रूप में ही देखा था।

दिवाकर कई दिन से रुकी हुई डाक को संभाल ही रहा था कि अकस्मात् शकुन्तला कमरे में दाखिल हुई। शकुन्तला घबराई हुई थी और उसके माथे पर पसीने की बूंदें चमक आई थीं।

"[illegible] है ? यहां आने का साहस कैसे हो गया तुम्हें ?" दिवाकर ने पूछा।

"मजबूर हो गया। साउथ जाने से पहले एक दूसरी जगह जाना जरूरी हो गया है, पर मैं जल्दी ही लौट आऊंगी। एक मिनट भी तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता, पर जो काम है, वह केवल भावुकता से नहीं बनेगा। मैं जाऊंगी। और तुम कहोगे कि ठीक है! रोज एक पत्र लिखूंगी। पर एक शर्त है कि तुम जवाब नहीं दोगे।"

"जो कहोगी वही करूंगा।" दिवाकर ने इस आकस्मिक घटना को झेलते हुए कहा, "पर मुझे कहने दो कि मैं अभी पूरी तरह तुम्हें जान नहीं पाया हूं।"

"दिवाकर, मुझे सताओ मत। कुछ ऐसी बातें होती हैं जो पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, माता और पिता भी परस्पर छिपाकर रखते हैं और उनका छिपाना ही दोनों के हित में होता है!"

"मैं यह नहीं मानता। संपूर्ण सत्य का उद्घाटन बिना किए सच्चे प्यार का प्रसाद नहीं मिलता। उसके बिना प्यार एक दिन टूट जाता है, संदेह की अंधेरी खाई में सदैव के लिए खो जाता है।"

"वह दिन दूर नहीं है दिवाकर, जब तुम मेरे संपूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी होओगे। विश्वास से दुनिया के सब व्यवधान दूर हो जाते हैं। मैं आस्तिक हूं, आस्था रखती हूं, तुम सब जानोगे एक दिन। मैं गंतव्य पर पहुंचकर अपना सब-कुछ खोलकर तुम्हारे सामने रख दूंगी…?"

"कब जाना है?"

"अब ही।"

"जाना ही है तो जाना पड़ेगा, पर उस जाने को इतना रहस्यमय क्यों बनाती जा रही हो ?"

"मैं कहां बना सकी हूं। सच तो यह है कि दिल में आता है कि अपनी आत्मा ही तुम्हारे सामने खोलकर रख दूं और वैसा न करने के प्रयत्न में ही इतनी घबरा गई हूं।"

"लेकिन बुरे वक्त में आई हो !"

"मैं कौन यहां डेरा डालने आई हूं ! बस मेरी दुर्बलता है कि आए बिना रहा नहीं गया—चलती हूं।"

"अभी आये हैं और अभी जाने लगे। पता है, कितनी मिन्नतों के बाद यह दिन नसीब होता है ?"

"यह दिन इसलिए अच्छा लगता है कि मिलना नहीं होता। जब मिलेगा तो छोड़कर भागोगे। अनेक उदाहरण हैं मेरे सामने। कितनी सारी डाक आती है तुम्हारी। रोज़ नहीं संभालते ?"

दिवाकर ने एक चिट्ठी, जो सबसे अलग छांटकर रख ली थी, वह लिफाफे और हस्ताक्षर से कुछ अलग ही थी और शकुन्तला ने यह भी देख लिया था कि वैसे ही लिफाफे खुले पड़े हैं और संख्या इतनी अधिक है कि रोज़ ही वैसी चिट्ठी आने की संभावना नहीं की जा सकती थी। एक मार्मिक चर्चा आरंभ करके वह स्वय उसे भूल गई। बोली, "यह चिट्ठी किसकी है, देख सकती हूं ?"

"देख सकती हो, पर उसे सहन कर लेना मेरी तरह।"

शकुन्तला ने वह पत्र पढ़ लिया। जिज्ञासा इतनी बढ़ी कि बिना पूछे ही पिछले खुले हुए पत्र भी पढ़ लिये। और बोली, "तो तुम सचमुच क्रांतिकारी हो। तुम्हें देखकर मुझे पहले दिन ही संशय हुआ था कि हो-न-हो, तुम कोई क्रांतिकारी हो। पर यह जीवन, और ये अंदाज़ ! कभी एक भी बात से तुमने जाहिर होने दिया कि तुम्हारे जीवन का दूसरा भी कोई पहलू है ! यह धोखा नहीं है ? शान्ता कौन है ?"

"एक लड़की है !" दिवाकर ने कहा।

"लड़की तो है, पर पूछती हूं तुम्हारा क्या रिश्ता है उससे ?"

"वह पार्टी की सेक्रेटरी है और मैं उसका अनुगत हूं ?"

"तो वह तुमसे परामर्श क्यों मांगती है······अनुगत से ?"

"वह मेरे ही कारण पार्टी में आई थी। यह उसका बड़प्पन है कि

मुझे न पाकर उसने पार्टी को पाना बेहतर समझा। वह मेरे साथ ही रहती है।"

"पर तुमने कहा था कि तुम लखनऊ से आये हो? इन पत्रों पर तो दूसरी जगहों की मोहरें हैं?"

"देखता हूं, मेरे विश्वास और कामों से चौंक रही हो। मत, धर्म और जाति मनुष्य और मनुष्य के अंदर अविश्वास ही पैदा करते हैं—यह मैं मानता था और आज तुम भी शायद यही साबित करोगी। अगर विभिन्न विश्वासों को लेकर मनुष्य-धर्म नहीं निभाया जा सकता तो समझ लो कि मत, धर्म और जाति का मानव के हित से कोई संबंध नहीं है और उसे नष्ट होना चाहिए।"

"मैं मत, धर्म और जाति की बात नहीं करती। मैं पूछती हूं, शान्ता तुम्हारे साथ क्यों रहती है—तुम्हें प्रेम करती है?"

"करती होगी—कभी पूछा नहीं।"

"तो फिर एक साथ रहने का रिश्ता कैसे बनता है? क्या बिना प्रेम के भी कोई साथ रह सकता है?"

"आदमी को उसकी पुकार से जाना तो फिर जानना क्या हुआ! मुंह देखकर मेरी हकीकत जानने की चेष्टा करो।"

"तुम्हारा मुंह देखकर तो मेरा रास्ता बदल गया। उस बदनसीब का भी बदल गया होगा। मैं उसकी पीड़ा को समझ सकती हूं।"

इतना कहते हुए उसने दिवाकर का मुंह अपनी अंजलि में ले लिया, "तुम इतने नित-नवीन हो कि प्यार करते जी नहीं भरता। अब मेरी याद बहुत मत करना, पर कहीं शान्ता की तरह मुझे भी भुला मत देना। जानते हो, मैं राजनीति में विश्वास नहीं रखती। राजनीति से तुम्हें जीतने की कल्पना भी नहीं करती। अगर भूल जाओगे…"

आगे वह कुछ बोल नहीं सकी। गला रुंध गया। दिवाकर स्तंभित था। प्यार किया था। प्यार के आंसू भी देखे थे, उनसे वह द्रवित भी हुआ था, लेकिन इन आंसुओं ने उसकी आंखें क्यों गीली कर दीं! वह उसे भूल कैसे सकता है? विद्रोह का अर्थ भूलना तो नहीं! भूलना तो क्या, इसका हाथ छोड़ने की कल्पना से कलेजा मुंह को आता है!

शकुन्तला की आंखों में आनंद के आंसू चमकने लगे, [illegible] हमारे प्रेम के साक्षी हैं!"

"जाना ही है तो जाना पड़ेगा, पर उस जाने को इतना रहस्यमय क्यों बनाती जा रही हो ?"

"मैं कहां बना सकी हूं। सच तो यह है कि दिल में आता है कि अपनी आत्मा ही तुम्हारे सामने खोलकर रख दूं और वैसा न करने के प्रयत्न में ही इतनी घबरा गई हूं।"

"लेकिन बुरे वक्त में आई हो !"

"मैं कौन यहां डेरा डालने आई हूं ! बस मेरी दुर्बलता है कि आए बिना रहा नहीं गया—चलती हूं।"

"अभी आये हैं और अभी जाने लगे। पता है, कितनी मिन्नतों के बाद यह दिन नसीब होता है ?"

"यह दिन इसलिए अच्छा लगता है कि मिलना नहीं होता। जब मिलेगा तो छोड़कर भागोगे। अनेक उदाहरण हैं मेरे सामने। कितनी सारी डाक आती है तुम्हारी। रोज़ नहीं संभालते ?"

दिवाकर ने एक चिट्ठी, जो सबसे अलग छांटकर रख ली थी, वह लिफाफे और हस्ताक्षर से कुछ अलग ही थी और शकुन्तला ने यह भी देख लिया था कि वैसे ही लिफाफे खुले पड़े हैं और संख्या इतनी अधिक है कि रोज़ ही वैसी चिट्ठी आने की संभावना नहीं की जा सकती थी। एक मार्मिक चर्चा आरंभ करके वह स्वय उसे भूल गई। बोली, "यह चिट्ठी किसकी है, देख सकती हूं ?"

"देख सकती हो, पर उसे सहन कर लेना मेरी तरह।"

शकुन्तला ने वह पत्र पढ़ लिया। जिज्ञासा इतनी बढ़ी कि बिना पूछे ही पिछले खुले हुए पत्र भी पढ़ लिये। और बोली, "तो तुम सचमुच क्रांतिकारी हो। तुम्हें देखकर मुझे पहले दिन ही संशय हुआ था कि हो-न-हो, तुम कोई क्रांतिकारी हो। पर यह जीवन, और ये अंदाज ! कभी एक भी बात से तुमने ज़ाहिर होने दिया कि तुम्हारे जीवन का दूसरा भी कोई पहलू है ! यह धोखा नहीं है ? शान्ता कौन है ?"

"एक लड़की है !" दिवाकर ने कहा।

"लड़की तो है, पर पूछती हूं तुम्हारा क्या रिश्ता है उससे ?"

"वह पार्टी की सेक्रेटरी है और मैं उसका अनुगत हूं ?"

"तो वह तुमसे परामर्श क्यों मांगती है······अनुगत से ?"

"वह मेरे ही कारण पार्टी में आई थी। यह उसका बड़प्पन है कि

मुझे न पाकर उसने पार्टी को पाना बेहतर समझा । वह मेरे साथ ही रहती है ।"

"पर तुमने कहा था कि तुम लखनऊ से आये हो ? इन पत्रों पर तो दूसरी जगहों की मोहरें हैं ?"

"देखता हूं, मेरे विश्वास और कामों से चौंक रही हो । मत, धर्म और जाति मनुष्य और मनुष्य के अंदर अविश्वास ही पैदा करते हैं—यह मैं मानता था और आज तुम भी शायद यही साबित करोगी । अगर विभिन्न विश्वासों को लेकर मनुष्य-धर्म नहीं निभाया जा सकता तो समझ लो कि मत, धर्म और जाति का मानव के हित से कोई संबंध नहीं है और उसे नष्ट होना चाहिए ।"

"मैं मत, धर्म और जाति की बात नहीं करती । मैं पूछती हूं, शान्ता तुम्हारे साथ क्यों रहती है—तुम्हें प्रेम करती है ?"

"करती होगी—कभी पूछा नहीं ।"

"तो फिर एक साथ रहने का रिश्ता कैसे बनता है ? क्या बिना प्रेम के भी कोई साथ रह सकता है ?"

"आदमी को उसकी पुकार से जाना तो फिर जानना क्या हुआ ! मुंह देखकर मेरी हकीकत जानने की चेष्टा करो ।"

"तुम्हारा मुंह देखकर तो मेरा रास्ता बदल गया । उस बदनसीब का भी बदल गया होगा । मैं उसकी पीड़ा को समझ सकती हूं ।"

इतना कहते हुए उसने दिवाकर का मुंह अपनी अंजलि में ले लिया, "तुम इतने नित-नवीन हो कि प्यार करते जी नहीं भरता । अब मेरी याद बहुत मत करना, पर कहीं शान्ता की तरह मुझे भी भुला मत देना । जानते हो, मैं राजनीति में विश्वास नहीं रखती । राजनीति से तुम्हें जीतने की कल्पना भी नहीं करती । अगर भूल जाओगे…"

आगे वह कुछ बोल नहीं सकी । गला रुंध गया । दिवाकर स्तमित था । प्यार किया था । प्यार के आंसू भी देखे थे, उनसे वह द्रवित भी हुआ था, लेकिन इन आंसुओं ने उसकी आंखें क्यों गीली कर दीं ! वह उसे भूल कैसे सकता है ? बिछोह का अर्थ भूलना तो नहीं ! भूलना तो क्या, इसका साथ छोड़ने की कल्पना से कलेजा मुंह को आता है !

शकुन्तला की आंखों में आनंद के आंसू चमकने लगे, "प्रभु ईशू मसीह हमारे प्रेम के साक्षी हैं !"

दिवाकर किसका साक्ष्य प्रस्तुत करता ! वह प्रभु ईशू मसीह को नहीं मानता। किसी भी प्रभु को नहीं मानता। उसे सहसा लगा कि अगर वह किसी भी सत्ता को मानता होता तो यह अवसर कितना सुखद हो सकता ! वह अज्ञात सत्ता अगर कुछ भी नहीं है तो मनुष्य के विश्वासों का कोषागार है—जहां से विश्वास लिये जा सकते हैं, उन पर साबितकदम रहने का साहस लिया जा सकता है। शकुन्तला के पास कौन-सी वह रोक है जिसके सहारे वह विरह-वेदना को आंसुओं के साथ सहेज रख सकती है ? दिवाकर की शब्दावली आस्तिकता से पूरी तरह रीती हो चुकी थी। अपने प्रेम के स्थायित्व को जताने के लिए उसे शब्द ही नहीं मिले। पराजित-सा वह बोला, "तुम्हारे प्रभु ईशू मसीह हमें भटकने नहीं देंगे।"

फिर वह जल्दी ही लौटने का वचन देकर चली गई। जीवन में फिर कभी अलग न होने का वायदा करके वह चली गई। आंसू अपने आंचल में संजोकर, उसे शिशु के समान प्यार करके वह चली गई। उसने चारों ओर निगाह उठाकर देखा। काव्य, कथा, प्रेम और वीरता के शत-शत संस्कारों से वह घिरा बैठा है। पर ये कथाएं उसे फीकी मालूम देती थीं। सवेरे वह चली जाएगी ! अब उसे कुछ काम करना चाहिए। मैंने उसे वचन दिया है।

वह रात-भर बैठा रहा...रोशनी जलती रही...दिवाकर सोचता रहा...

अब वह चली गई है। सूरज निकल आया है। बत्ती जली हुई है। शाम जो मित्र आने वाले थे, वह अब सुबह आए हैं। कह रहे हैं, "बड़ी तपस्या कर रहे हो। तुम्हारा सारा जीवन तपस्या में बीता है। तुम्हारे लिए यह क्या बड़ी बात है ?"

समय गुज़र रहा है। डाक में बहुत से पत्र हैं। शान्ता का भी पत्र है। घर से पिताजी का भी पत्र आया है। साथी सुरेन्द्रमोहन का भी पत्र है। वह सबसे पहले पिताजी का पत्र खोलना चाहता है। पर खोलता है—शकुंतला का पत्र। उसने बड़ी सुन्दर भाषा में अपने प्रेम की उत्पत्ति की कथा वर्णन की है। सारी प्रेम-क्रीड़ाओं का सिंहावलोकन करने की चेष्टा की है। सुरेन्द्रमोहन ने शान्ता की बुराई लिखी है। आपस की क्षुद्रताओं पर रोष प्रकट किया है और किसी बहुत बड़ी हड़ताल के आरंभ होने की संभावना व्यक्त की है। उसने शान्ता का पत्र नहीं खोला। वह हमेशा वही लिखेगी कि उसने शान्ता को अनजाने ही कहां-से-कहां ले जाकर पटक दिया है। घर से सब की राज़ी-खुशी आई थी और उसकी राज़ी-खुशी के लिए भगवान से प्रार्थना

विना जुगनू नहीं दीखते और जब दीखते हैं तो उसका परिणाम क्या होता है !

वह सोचता है : सचमुच वह अपना आपा भूल गया है ।

कितने दिन बीते होंगे, जब एक दिन अपना मुंह देखने के लिए उसने आईना उठाया था, आज भी वही आईना है । आईने में भी जीवन का आदि और अंत एक साथ देखा जा सकता है । छाया से प्राप्त ज्ञान बालू की दीवार की तरह ढह गया है । जीवन की एक अनुभूति से ज्ञान की शत-शत धाराएं जैसे स्वयं ही फूट पड़ने को होती हैं ।

उस दिन उसने अपना चेहरा देखकर खुशी मनाई थी । आज के विषाद की घनी रेखाएं भी उसी खुशी में छिपी हुई थीं । खुशी में छिपा विषाद और विषाद में छिपा हर्ष दिवाकर को दीखता क्यों नहीं था !

मुंह से शब्द नहीं निकलता । केवल भाव की उद्भावना होती है और वह भाव कभी कमरे की दीवारों पर रंग-बिरंगी तस्वीर बनकर खिल उठा है, और कभी प्रसव-पीड़ा के समान उसके अंतर को मथने लगा है ।

अब वह प्रतिबंध तोड़ना चाहता है । वह सोचता है कि पत्र न लिखने का औपचारिक वचन शकुन्तला के लिए दिवाकर के जीवन से अधिक मूल्यवान नहीं हो सकता । कीर्ति बड़ी गंभीर लड़की है । वह उससे पता पूछ लेगा । एक विद्रोही दूसरे विद्रोही की बात बहुधा रख लेता है और अब विकल्प सोचने का समय भी कहां है !

तीसरे पहर जब गली में आना-जाना कुछ कम था और घर में अधिक हलचल नहीं थी, दिवाकर उठकर नीचे गया । कीर्ति सामने बैठी कुछ बिनाई कर रही थी । पैरों की आहट सुनकर उसने दिवाकर की ओर देखा और स्वयं उठकर बाड़े के निकट आ गई । बोली : "कहिए !"

"एक बार मिस जोज़ेफ ने मुझे बाइबिल देने की बात कही थी, आजकल क्या वह घर पर नहीं है ?" दिवाकर बोला । वह इतने में ही हांफ गया था ।

कीर्ति ने मुस्कराती आंखों से दिवाकर के चेहरे की ओर देखा और कहा, "बाहर गई है । बाइबिल की जिस प्रति की चर्चा उसने आपसे की होगी, उसे भी साथ लेती गई है ।"

कीर्ति की उक्ति में कुछ ऐसा था, जिससे वह आकंठ भर गया । दिवाकर ने कहा, "मेरा मन आजकल कुछ परेशान रहता है । सोचता था, बाइबिल

पढ़ूंगा तो चित्त को शांति मिलेगी। कब तक लौट रही हैं? कहां गई हैं?"

कीर्ति ने उत्तर दिया, "बहुत जल्द लौटकर आने के लिए कह गई थीं। साउथ जाने का प्रोग्राम भी था उसका! खामखा उसे भी स्थगित कर दिया। न जाने किस पागलपन से भरी रहती है?" फिर इस तरह उसने दिवाकर की ओर देखा कि अगर उस दृष्टि का अन्वय किया जाता तो वाक्य बनता, 'लेकिन आप क्यों पूछ रहे हैं हजरत! आपको मालूम नहीं होगा तो और किसे मालूम होगा?'

दिवाकर की आंखें नीची हो आईं। कीर्ति की आंखों में शोखी थी, पर आशीर्वाद नहीं था। एक मिनट पहले खुशी की जो लहर उसके मन को रसप्लावित कर गई थी, वहां अब मायूसी का बंजर रह गया है। हल्की-सी घुमेर उसके सिर में आती है। बाड़े की लकड़ी पकड़कर वह संभल गया है। सिल-से भारी कदमों पर पीछे लौट चलने का विश्वास जमाते-जमाते अंदर से मां आ जाती हैं और दिवाकर को खड़ा देख पूछती हैं, "क्या बात है कीर्ति?"

"कुछ नहीं। ये मिस्टर दिवाकर हैं, हमारे पड़ोसी। बाइबिल मांगने आए थे—कुछ तबीयत खराब है इनकी।"

"ठीक है!" उन्होंने अपने कार्य में व्यस्त रहते हुए कहा, "बाइबिल से इन्हें बल मिलेगा।" और फिर दिवाकर के चेहरे को देखकर बोलीं, "अरे, आप तो बिलकुल बदले दीखते हैं। देखो कीर्ति, इन्हें तो जॉडिस के आसार नजर आते हैं। कुछ इलाज किया बेटा। डाक्टर को दिखाओ! हमारे लायक कोई खिदमत हो तो कह दीजिएगा! डाक्टर विलियम को दिखायें तो कैसा रहेगा, क्यों कीर्ति?"

दिवाकर ने उन्हें धन्यवाद कहा और लौट आया। शकुन्तला का पत्र अब भी मेज पर खुला पड़ा है। इस दुनिया में हर चीज कितनी खुली पड़ी है। पर अगर आदमी अपनी पाने की हैसियत को समझ ले, वरना कहीं कुछ भी हाथ नहीं आता। क्यों उसने कीर्ति से उसका पता न पूछ लिया? वे दोनों ही कितनी भद्र और वत्सला थीं!

पत्र में लिखा है: "मैं जानती हूं, तुम मेरी प्रतीक्षा करते होगे। पर विश्वास है कि काम में ध्यान बंट जाता होगा। तुम्हारे मन की दृढ़ता को पहचानती हूं। पर अपनी क्या कहूं। इन चंद दिनों में तुम्हारी शकुन बिलकुल बदल गई है। मेरी हालत उस बेल की तरह है जो अपने आश्रय-स्तंभ

से बिछुड़कर हरिया ही नहीं सकती। कहते होंगे, अगर ऐसा है तो मैं चली क्यों नहीं आती। तुम्हारे विराट् व्यक्तित्व का सहारा होते हुए मुझे अपनी दुर्बलता को अनुभव करके बड़ी घबराहट होती है। काश, मैं तुम्हारे मनोभावों की एक झलक पा सकती! पर अब वह दिन अधिक दूर नहीं है!"

उसने पत्र लंबा लिखा था। पर उसका सार संक्षिप्त ही था। शकुन्तला ने उसकी दृढ़ता की चर्चा की है। इस दृढ़ता की बात सुनकर उसका रहा-सा उत्साह भी टूट गया है। मां ने पीलिया के लक्षण बताए हैं। शायद शकुन्तला से बिना मिले ही उसे लौट जाना होगा। वह कुछ भी तय नहीं कर पाता। वह कलम उठाता है और सुरेन्द्रमोहन को पत्र लिखता है कि वह अस्वस्थ है और जल्दी ही लौट आएगा। वह दूसरा पत्र लिखता है शान्ता को, और उससे अपेक्षा करता है कि क्या वह अपने व्यस्त राजनीतिक जीवन में से कुछ समय उसके लिए निकाल सकती है? अनजाने ही अनेक ऐसी बातें भी लिख जाता है जिनको कभी शान्ता के मुंह से सुनकर उसने उपेक्षा से होंठ बिचका लिये थे। जीवन के संघर्ष में गहरा पहुंचकर आज वह जीवन के रस को चाहने लगा है। समष्टि में अपने को विलीन करके आज उसे अपनी इकाई की याद आ रही है।

तीसरे दिन जब वह डाक्टर के यहां से दवा लेकर लौट रहा था, तो पोस्टमैन को ऐक्सप्रेस डिलीवरी लिए अपनी प्रतीक्षा में पाता है। रसीदी पुर्जी पर हस्ताक्षर करके वह तत्काल पत्र खोलता है। पत्र शकुन्तला का है। आज का संबोधन बिल्कुल बदल गया है। 'जीवन-साथी' के स्थान पर 'प्राणधन' आ गया है और वह स्थान जो सदैव खाली रहता, था वहां पता भी अंकित है। पत्र में लिखा था : "कल कीर्ति बहिन का पत्र आया था। तुम्हारे बहुत अधिक अस्वस्थ और घबराये होने की बात लिखी थी और दुःख प्रकट किया था कि संकोचवश वह कुछ भी करने का सौभाग्य न पा सकीं। क्या वाकई बहुत कमजोर हो गये हो। मैं तो तुम्हें रोग और शोक के प्रभावों से अतीत जितेंद्रिय मानव मानती हूं।

"सोचते होगे कि मैं दूर बैठकर उपदेश देना जानती हूं। आज जो लिखती हूं उसे क्या सहन कर लोगे? आखिर तुम्हारी शकून के पास भी कुछ तो होना था जिसे कहते समय वह भी तुमसे सहन कर लेने की प्रार्थना करती। आज तड़प कर भाग चलने का मन होते हुए भी जो मैंने अपने पैरों में पत्थर बांध लिये हैं, वे मेरे अपने बांधे हुए हैं और उन्हें तोड़ने के लिए ही यह

पीड़ा सहती हुई पड़ी हूं। आज से दो वर्ष पूर्व, ये सज्जन, आज मैं जहां हूं, हमारे यहां मेहमान बनकर आये थे। उनकी शान-शौकत, चेहरे पर लिखी हुई मुस्कान मेरे लिए कुतूहल के विषय बने। उन्होंने मुझसे प्रेम-निवेदन किया और मेरी खामोशी का गलत अर्थ लगा लिया। उस दिन जीजी ने बताया कि उनके परिवार की ओर से विवाह का प्रस्ताव आ पहुंचा है, तो मेरे प्राण ही निकल गए।

"मैं जानती हूं, मेरे मना करने पर एक पत्ता भी मेरी मर्जी के खिलाफ हिल नहीं सकेगा। परन्तु मैं चाहती हूं कि जिस तरह यह बात पैदा हुई है उसी तरह समाप्त हो जाय। इस परिवार के हमारे परिवार पर बड़े अहसान हैं। पापा दुःखी होंगे कि बिना किसी कारण एक सुपात्र के प्रेम की अवहेलना मैं क्यों करती हूं। वास्तव में वह इस रिश्ते के प्रस्ताव से प्रसन्न हुए हैं। मैं बात को तर्क में डालना नहीं चाहती। इन महोदय से प्रार्थना करना चाहती हूं कि मेरी अभ्यर्थना का अर्थ बिलकुल ही गलत लगाया गया, लेकिन वे तो मेरे आने से पूर्व ही व्यापार के सिलसिले में बाहर चले गये थे।

"कल तार आया था कि आज पहुंच रहे हैं। कई दिन से रोज तार आते हैं। अब मैं ज्यादा इंतजार नहीं करूंगी। घर पर उनकी मां और बहिन हैं। समझती हैं कि मैं इस प्रस्ताव की स्वीकृति देने आई हूं। बड़ी खुश हैं। मुझे पलकों से उतारना नहीं चाहतीं। दुनिया कितनी विचित्रताओं से भरी है। काश, तुम मेरे जीवन में न आते तो क्या संभव न था कि मैं भी इनकी खुशी को अपनी खुशी मानती? आज इनकी खुशी से मेरे प्राण निकलते हैं।

मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है। किसी दिन इसका पूरा-पूरा बदला देने की हसरत भी है। काश, कि तुम इस समय अपनी शकून को देख सकते।

"स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखना।

सदैव तुम्हारी ही
शकून

मगर इस पत्र के आने से व्यथा घटी तो नहीं। काश, यह पत्र न आता और दिवाकर के मन में विरक्ति होती, घृणा होती या कम-से कम तटस्थता का भाव पैदा हो जाता। घृणा से उसमें कर्तृत्व शक्ति का संचार होता आया है। मन में दुर्घर्षता पैदा हुई है। इस पत्र में भी अनेक बातें हैं जिन्हें लेकर मन में वैराग्य का भाव भर लिया जा सकता है। पर दिवाकर सोचता है कि अब शकुन्तला के प्रसंग में वैराग्य और घृणा की सत्ता को अपने

कोष से निकाल देना या रखना उसकी अपनी शक्ति के बाहर की बात हो गई है। इस पत्र को पढ़कर दिवाकर का सांस हलका पड़ गया है। सीने को दबाकर वह तिरछा होकर लेट गया है। उसके मन में कोई भी पश्चात्ताप नहीं है। वह सुखी और कृतकृत्य है। वह आश्चर्य करता है कि कैसे फिजां के एक ही रंग ने उसकी सारी साधना का रुख पलट दिया। अगर वह इस शहर में कभी न आता तो क्या ईर्ष्या और वासना के सनातन चक्र में घूमते रहकर भी अपने को सुखी और कृतकृत्य ही नहीं मानता रहता ? तो क्या सचमुच विचारों की दृढ़ता आदमी का दुराग्रह मात्र है। वह यह निश्चय नहीं कर पाता कि मनुष्य के विचार पहले बदलते हैं अथवा जीवन ! उसे लगता है कि उसका अब तक का सोच-विचार गणित के 'हासिलों' से कुछ भी अधिक नहीं है। इस जटिल जीवन गणित को फलित करने के लिए न जाने कितनी बार उन हासिलों को बनाना-मिटाना पड़ा है।

सोचते-सोचते उसका सिर झनझनाने लगता है। शरीर में गर्मी बढ़ती जा रही है। परदेस में आकर वह कितनी कठिन परीक्षा में फंस गया है। उसने वस्त्र ओढ़ लिया है। अब चेतना बार-बार लुप्त हो जाती है। आंखें बंद हैं। मस्तिष्क में कुहासा छा गया है।

पड़ोसी छात्र घबड़ाते हैं। उसे हिलाकर उसके घर का पता पूछते हैं ! घर का पता नहीं मिलता ! चिट्ठियां डालते-डालते उन्हें दो पते याद हो गए हैं ! शान्ता और सुरेन्द्रमोहन को तार खड़खड़ाने वे डाकघर की तरफ भाग जाते हैं।

उसके घर में पानी नहीं है। वह छात्रों को आवाज देता है जो कि डाकघर से अभी लौटे नहीं हैं। उसका स्वर सामान्य से अधिक ऊंचा होता जाता है। और वह पलंग पर सीधा बैठ गया है। आंखें मशाल की तरह जल रही हैं। वह पानी लेने नीचे आता है लड़खड़ाकर गिरता है।

सारे मकान में खलबली मच गई है। कीर्ति और उसकी मां भी आ गई हैं। दिवाकर को थोड़ी चेतना आती है। वह वृद्धा मां का शुक्रिया अदा करता है।

"कोई बात नहीं" मां भोले कृतज्ञ भाव से कहती है, "मनुष्य का रिश्ता प्रेम और सेवा का रिश्ता है। आप लेट जाएं। शीघ्र ही तबियत ठीक हो जाएगी।"

पर दिवाकर क्या कह रहा है। उसने अपनी प्रेम-कहानी विस्तार-

पूर्वक कहनी प्रारम्भ कर दी है। यहां तक कि मां के हाथों से उसके पैर छूट जाते हैं। कीर्ति की गर्दन उस सार्वजनिक अपमान से नीची हो जाती है। वे दोनों उठ जाते हैं। औरतें प्रायः सभी उठ गई हैं। डाक्टर विलियम निर्लिप्त भाव से सब सुन रहे हैं और इंतज़ार कर रहे हैं कि बुखार का वेग कम हो और वह बैठे रहने या जाने का निर्णय करें। उन्होंने बहुत मरीज़ देखे हैं, पर यह दिवाकर भी अजीब मरीज़ है! ऐसे वचन बोल रहा है कि इंजील में रख दिए जाएं।

सभी के चेहरों पर एक ही प्रश्न है और उसने दिवाकर की खतरनाक बीमारी से हटाकर लोगों का ध्यान इस चर्चा की ओर खींच लिया है। डाक्टर विलियम मौन ध्यान-मग्न बैठे हैं और एकटक मरीज़ की ओर देख रहे हैं।

दिवाकर का शरीर अब शिथिल होने लगा है। दो-एक जमुहाइयां भी आई हैं। डाक्टर का खयाल है कि उन्माद कम हो जाएगा। बस, अब नींद आ जाएगी। गोलियों का असर ठीक हो रहा है।

बहुत देर बाद दिवाकर की नींद खुलती है। पड़ोसी छात्रों को आश्चर्य होता है कि उसे कुछ भी याद नहीं है। वह पूछते हैं—

"क्या सचमुच आप मिस जोज़ेफ से शादी करेंगे?"

"तुमसे किसने कहा?" वह प्रश्न करता है।

"अरे, आप ही तो उसकी मां के सामने सब-कुछ कह रहे थे?"

"मैं कह रहा था। मैं कसम से कहता हूं कि आज तक यह चर्चा कभी हुई ही नहीं"‘‘मैं शादी कभी करूंगा ही नहीं। और अगर करूंगा भी तो क्या मेरे लिए एक शकुन्तला ही रह गई है।" वह बच्चों को बहकाता है। छात्रों के प्रश्नों की कोई सीमा नहीं है। पर दिवाकर को कुछ भी मालूम नहीं। पर वह सोचता है कि अगर यह सच है तो इससे बड़ा दूसरा सच कैसा होगा?

दुनिया जो कुछ भी सोचे! दुनिया के सोचने का व्यक्ति के जीवन में महत्त्व ही क्या हो सकता है। पर आदमी दुनिया को लेकर खुद जो सोचने लगता है! जो आचरण उसके द्वारा हो चुका था, उसकी ज़िम्मेदारी से मस्तिष्क की उन्मत्तावस्था का सहारा लेकर मुक्त नहीं हुआ जा सकता था।

आज जब डाक्टर के घर से दवाई लेकर छोटा विद्यार्थी लौटता है तो कहता है, "डाक्टर साहब पूछते थे कि क्या हमने शकुन्तला को दिवाकर के पास आते देखा है?"

"क्या कहा तुमने?" दिवाकर पूछता है।

"हम ने कहा—नहीं तो !"

"तुमने झूठ क्यों बोला ? एकाध बार आई तो हैं !"

"वाह साहब, एकाध बार आने से क्या हुआ ! एकाध बार तो कोई भी किसी के पास आ जाता है ?"

"क्यों, जब कुछ होना होता है, तो एक बार आने से ही हो जाता है।"

"अच्छा, बताइए तो, क्या सचमुच आप शकुन्तला को अन्दर बुलाकर किवाड़ बन्द कर लिया करते थे ?"

"तुम क्या सोचते हो, दवाई पिलाते न जाओगे ?"

"हमारी तो कुछ समझ में ही नहीं आता। आते-आते कई लोगों ने पीछे से कंधे पर हाथ रखा और यही पूछा। दिवाकर बाबू, पादरी का बड़ा छोकरा भारी बदमाश है। आपको परेशान करेगा।"

"तुम हमारी रक्षा नहीं करोगे ?"

"दिवाकर बाबू, उसे लेकर आप भाग क्यों नहीं गए ? हमारे गांव में एक भाई शहर से बीबी उड़ाकर ही लाया था।"

"भागकर कहां जाओगे, दुनिया का छोर है कहीं ? अच्छा बताओ, तुम मेरी जगह होते तो क्या करते ?"

पर बालक उत्तर नहीं दे पाता। खिड़की से किसी मोटर के आकर रुकने की घहराहट होती है। बालक पलंग पर चढ़कर देखता है और आवेग में बोल उठता है, "लो दिवाकर बाबू, वह आ गई तुम्हारी शकुन्तला !"

बालक कितना प्रसन्न है। प्रेम-वार्ता करने में उसका दिल उछला पड़ता था। पर दिवाकर उतना प्रसन्न कहां हो सकता है ! अगर शकुन्तला आ गई है, तो बस संकट सिर पर ही जैसे आ गया है। क्या शकुन्तला अपने अतीत को स्वीकार कर लेगी, या दूर खिड़की में बैठकर मेरी बीमारी का तमाशा देखती रहेगी ! क्या वह दुनिया की क्षुद्रता को ठोकर मारकर उसे अपना लेगी ! अजीब हालत होती जाती है। बुखार बढ़ता जा रहा है। कोई बात नहीं ! दिवाकर सोचता है, जो कुछ होना है वह हो जाए। इससे अधिक जीवन का मूल्य भी क्या है !

बाहर जीने पर दस्तक लगती है। दिवाकर कहता है, "देखो श्याम, बाहर कौन आया। तुम्हें अकेले मेरे पास रहने में भय मालूम होता था न !"

श्याम चुपचाप चला जाता है। और तत्क्षण लौटकर कहता है, "अरे, जिसे मैं शकुन्तला कहता था, वे तो कोई और हैं…आपको पूछती हैं !"

और इतने में वह कोई और स्वयं ऊपर आ पहुंची है और कह रही है कि वह मिस यंग हैं, शकुन्तला की मित्र हैं। कीर्ति से सूचना पाकर उन्हें अपने साथ ले जाने के लिए आई हैं! और यह कि वह तकल्लुफ बिलकुल नहीं करने देंगी। बीमारी कठिन है। बेखबर नहीं होना चाहिए। दिवाकर शिथिल है, पर प्रतिरोध करना चाहता है।

"ओह नो, शकुन्तला मुझ से सब-कुछ कह चुकी है। बड़ी बहादुर लड़की है। आप अभी जानते नहीं हैं। हम में से कोई मित्र आपत्ति से डरने वाली नहीं है।" दिवाकर के माथे पर हाथ रखती है, "अरे, बुखार फिर बढ़ रहा है। ओ, बढ़ते बुखार में कैसे होगा! लेकिन कोई फिक्र नहीं। मैं बैठूंगी। टैक्सी को जाने को कहती हूं?"

"देखिए, इस समय मुझे साथ ले चलने से पूर्व आप शकुन्तला के पास पहुंचिए और उससे कहिए कि अभी कुछ दिन घर वापस न आयें। लौटकर आयेंगी तो मैं आपके साथ चलूंगा।"

यह बात सुनकर मिस यंग कुछ सोच में पड़ गई है। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों पर लम्बी-लम्बी पलकें कांटेदार तारों की तरह छाई हुई हैं। उसके स्वर और हर अंदाज से विश्वास झलकता है। दिवाकर उसके हाथों में पहुंचकर निश्चय ही अपने रोग-शोक से मुक्त हो जाएगा। आगतुका विचार की मुद्रा से कहती है, "ठीक कहते हैं, अभी उसे इधर नहीं आना चाहिए। पर आने से वह रुकेगी नहीं, मैं जानती हूं। आयगी तो मेरे पास ही रहेगी। घर नहीं लौटना चाहिए। बात को दब जाना चाहिए। फिर आप के हट जाने से सब ठीक हो जाएगा। अच्छा, आप घबराइये नहीं। कल सुबह तक आप शकुन्तला को देख लीजिएगा। देखते ही बुखार दूर हो जाएगा, मैं जानती हूं?"

और फिर एक भोले अंदाज से 'चीयर' कहती हुई वह चली गई। श्याम खड़ा देख रहा है। जितनी देर वह रही है, श्याम उसके चेहरे को ही देखता रहा है। श्याम को देखकर दिवाकर के मन में एक असीम आत्मीय भावना उभरती है। उसके नेत्रों से आंसू निकल आते हैं। दुनिया में कितनी अच्छाई है! कितनी ममता है!

तरुण जैसे किसी मोह से जागा है, "अरे, हम समझे थे कि जिन्हें हमने मार दिया था, वे ही आ गई हैं।"

"तुमने किसे मार दिया था?" दिवाकर सहज भाव से पूछता है।

उसी जन-समूह में एक थी शान्ता। उसके हाथों में फूलमाला थी और जब दिवाकर ने उसकी ओर देखा था तो उसने पलकें नीचे झुका ली थीं। दिवाकर को यह नया चेहरा देखकर कितना आश्चर्य हुआ था। उस दिन की अनेक स्वागत-सभाओं में धुआंधार भाषण करते हुए और अपार जनसमूह में झूलते हुए भी हर कोने से वही दो आंखें झांकती नज़र आती थीं। फिर शान्ता उसके पास बार-बार आने लगी। पहले दिन की नज़र से जैसे वह सदा के लिए उसके पास आ गई थी। बीच का व्यवधान अगर मिटते-मिटते भी बहुत-सी शक्लें बदलता है तो क्या मन की इन क्रीड़ाओं को कोई याद रखना नहीं चाहता! जब वियोग की ज्वाला झुलसाती है तो ये क्रीड़ाएँ ही अतीत के मिलन की मिठास को और भी गहरा बना देती हैं।

दिवाकर सोचता ही जाता है:

शान्ता ने उसके लिए क्या नहीं किया? उसने अपना घर छोड़ा—जहां वह ऐश्वर्य के पालने में झूलती थी, उसने अपने सभी पुराने रिश्ते तोड़ दिए और गरीबों और मज़दूरों के जीवन को इस तरह अपना लिया कि जैसे वह पैदा ही उनमें हुई हो। फिर एक दिन उसके दिल में बढ़ते हुए तूफान पर एकदम पानी पड़ गया। इतना बड़ा त्याग करने के बाद भी शान्ता जो चाहती थी, दिवाकर उसे दे नहीं सका। उसे लगता था कि एक को अपना आपा देकर शायद वह समग्र के प्रति सिमट जाएगा। अन्तस् की पूरी सच्चाई के साथ शान्ता के जो प्रस्ताव सामने आते थे, दिवाकर उन्हें क्षुद्र स्वार्थ सिद्ध करके लांछना उसके सिर पर मढ़ता जाता था। शान्ता ने लांछना को ही अंगीकार किया और धीरे-धीरे वह तटस्थ हो गई। इस तटस्थता से उसे कितना झटका लगा था। वह कानूनी तौर पर दिवाकर का हाथ अपने हाथ में यद्यपि ले न सकी, पर अन्तर तो बाहरी दिखावे का मोहताज नहीं होता। शान्ता ने दिवाकर को अपने मन में उस पद पर बैठा लिया था, जहां किसी और को बैठाने की गुंजाइश नहीं रहती। एक दिन आंखों में आंसू लेकर उसने कहा था, "दिवाकर, तुम मुझे क्रान्ति के पथ पर ले चलो। वह समय आ गया है जब हमारे संकल्पों से भी बड़ा यथार्थ हमारा सामाजिक दायित्व बन गया है।"

अतीत का वह चित्र पूरी स्पष्टता से दिवाकर की आंखों के सामने खिचता जा रहा था। शान्ता की आंखों में जाते समय आंसू आ गये थे। वह क्या चाहती थी। क्या उसके मन में वह बीता हुआ सपना फिर जाग उठा

है ? अगर वह सपना पूरा हो जाता तो उनके उस संयोग का स्वरूप आज कैसा होता। बदले हुए को लेकर फिर क्या प्रयोग करेगी वह ? शकुन्तला भी क्या एक दिन इसी प्रयोग का पुनर्वाचन उसके सम्मुख प्रस्तुत नहीं करेगी ? शायद शकुन्तला उतना कर भी चुकी है और दिवाकर ने उस पर उतनी झुंझलाहट भी अनुभव नहीं की है। दिवाकर ने मन की गहराई को टटोलकर देखा और पाया कि दोनों के प्रति उसकी चाह में शायद कोई अन्तर नहीं था। दोनों के सम्पर्क में ही उसे सम्पूर्ण आनन्द की अनुभूति हुई है। पर कौन-सी बात है कि जो शान्ता के सामने शकुन्तला की चर्चा नहीं उठाने देती ? वह कौन-सी दुविधा है जो शकुन्तला को चुपचाप छोड़ जाने के प्रति उसके मन को विद्रोह से भर देती है ?

इस पहेली को सुलझाने का अवसर नहीं मिला। अपने दोनों बाल-सहयोगियों के कन्धों पर बहुत-सा सामान लेकर शान्ता दरवाज़े पर उदित हो चुकी थी।

यात्रा की थकान उसके चेहरे पर से न जाने कहां उड़ गई थी और इतना उल्लास न जाने उसने उस चेहरे पर कभी देखा भी था या नहीं। शान्ता सब संभालकर रखने लगी है और कहती जा रही है, "एक-एक सामान के लिए कहां-कहां भटकना पड़ा है। देखो तुम्हारे लिए...और यह अपने लिए। यहां की कोई यादगार भी साथ चलेगी न ? और इन दोनों के लिए—श्याम और राम के लिए"...और फिर दोनों बच्चों को उनके तोहफे और फल देकर विदा करते हुए उसने कहना जारी रखा, "मैं तो सोचती थी कि तुम्हारे डाक्टर से भी परामर्श करती चलूं, पर लड़कों ने जगह ही ठीक तरह बताई नहीं। स्टेशन टेलीफोन किया था—सीटों को सुरक्षित कराने के लिए, पर सब चौपट हो गया। खुद जाकर देखूंगी। तुम्हें मालूम है, दिल्ली चलकर हम सबके साथ नहीं रहेंगे। मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है। दिवाकर, एक बात सुनोगे ?...मैंने माताजी से बहुत चिन्ता के साथ तुम्हारी बीमारी का ज़िक्र किया। सुनकर उनकी आंखों में कोमलता आ गई। मुझसे कहने लगीं, 'फिर मुझसे क्या कहने आई है ?' और कहते-कहते आंखों में आंसू भर लाईं। उठकर चली गईं और थोड़ी देर बाद लौटकर अपना पर्स मेरी गोद में पटक कर बोलीं, 'हवाई जहाज़ से चली जाना !' मेरी कुछ समझ में नहीं आता था—दिवाकर ! हां, उनके आंसू देखकर तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो आक्रोश था, वह न जाने कहां उड़ गया..."

दिवाकर चुप है। उलझन और भी उलझती जा रही है। दिवाकर की आंखों में एक अजीब-सा नक्शा बनता जा रहा ! "स्टेशन जाने की ज़रूरत नहीं ? एक बार फिर फोन पर पूछा जा सकता है। सुविधानुसार स्थान सुरक्षित हो जाएगा। अब आराम से बैठो···यहां मेरे पास बैठो !" दिवाकर ने आग्रहपूर्वक कहा।

शान्ता इस आग्रह को टाल न सकी। पास बैठते हुए बोली, "श्याम पूछता था कि क्या मैं तुम्हारी बहिन हूं ? उसका खयाल है कि हम दोनों के चेहरे बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। क्या सचमुच मिलते हैं ?" और वह कपोल से कपोल मिलाकर आईने में उसके कथन की सत्यता की परीक्षा करने पर सन्नद्ध प्रतीत हुई। लेकिन दिवाकर ने उसका संकल्प पूरा नहीं होने दिया। उसका सचेष्ट हाथ अपने हाथों में ले लिया और बोला, "देखती नहीं हो, मेरा मुंह तुम्हारे मुंह के साथ रखने योग्य नहीं है।"

शान्ता ने सप्रश्न और आतुरतापूर्ण मौन की सारी वाग्मिता को उंडेल कर दिवाकर की आंखों में देखा।

"हां-हां, मेरा मुंह तुम्हारे सामने रखने लायक कहां है ?" दिवाकर ने दोहराया और एक बेचैन कराह उसके अन्तस् से फूट पड़ी, जो उसके बलपूर्वक चेष्टा करने पर भी छिपाई न जा सकी। शान्ता बोली, "हाय, कैसी हूं मैं···भूल ही गई हूं कि बीमार की परिचर्या करने आई हूं !"

पर दिवाकर के हृदय में उस स्पर्श से जो कुछ जाग उठा था, उसमें एक कड़वाहट थी और उस कड़वाहट को पीना दिवाकर के बस की बात नहीं थी। सचमुच दिवाकर तड़पने लगा था। वह तड़प बड़ी विचित्र थी। वह सोचता जाता था : नारी और पुरुष का रिश्ता क्या है, स्पर्श से जाग उठने वाला यह आनन्द एक दिन सो जाता है—पर यह सोता हुआ भी जागता कैसे रहता है !

इसीलिए शायद जिनके प्रति वचन और बुद्धि से सम्मत कर्तव्य निभाना हो उन्हें दूर ही रखना होता है। शान्ता को लेकर उठने वाले तूफान में भटक जाने के बाद दिवाकर ने कितनी पीड़ा सहकर अपने को प्रकृतिस्थ किया था। एक बार फिर वही आचरण दोहराया था उसने ! निश्चय ही वह शकुन्तला से बिना मिले ही चला जाएगा और जीवन-भर उसके वियोग का संताप सहकर अपनी इस उच्छृंखलता का प्रायश्चित्त करेगा। दिवाकर के मन में यह साफ हो गया कि पीड़ा इसलिए नहीं थी कि शकुन्तला के साहचर्य का सुख उसे फिर

नहीं मिल सकेगा, वरन् इसलिए थी कि उसने अपनी विचारणा में मनुष्य के उस मंगल रूप का अनादर किया था जिससे प्रेरित होकर वह अपनी इकाई को संपूर्ण के प्रति समर्पित कर देता है !

बेचैनी ज्यों-की-त्यों कायम थी ! शान्ता उसके मुंह को देखकर घबरा उठी थी और डाक्टर की सहायता की आवश्यकता अनुभव करने लगी थी।

पड़ोसी बालक एक इशारा होने पर ही डाक्टर को बुला लाया था। वही डाक्टर विलियम जो इस बीमार से बहुत तंग आ चुके थे—उनके निकट एक और दिलचस्प अजनबी को देखकर बड़े कुतूहल से उसके शरीर को अपने थाले से देख रहे थे। रोग से भी अधिक वे यह देख लेना चाहते थे कि कौन-सी धातु में यह देह बनी है कि चुम्बक की तरह सब को अपनी ओर खींच लेती है। देख-भालकर उन्होंने बताया कि नींद की सख्त जरूरत है। कुछ गोलियां भिजवाने का वायदा करते हुए वे अपनी फीस और लड़के को साथ लेकर चले गए।

गोली खाने और शान्ता के बार-बार सिर सहलाने से दिवाकर को नींद आ गई।

शान्ता ने घंटों बाद अनुभव किया कि दिवाकर को देखकर वह अपनी सुध-बुध भूली जा रही है। कुछ उसने खाया और आरामकुर्सी पर शिथिल हो कर लेट गई। शाम का झुटपुटा घिरता आ रहा था और दिन की समस्त हलचलें विराम के सन्निकट थीं। शान्ता ने उठकर खिड़की से बाहर झांका। कीर्ति और उसकी माता जो अपने महल में कुर्सियां बिछाकर बैठी थीं, शान्ता की नज़र से बहुत दूर नहीं थीं। शान्ता ने देखा कि उसे देखकर उन्होंने आपस में कुछ बातें कीं और ऊपर से पीठ फेर ली। गली में बच्चे थे—दिलबस्तगी के सभी सामान थे। निचले मध्यवर्गीय नागरिकों की उस गली में वह सामने [illegible]गी स्त्रियाँ कुछ विशेष थीं और शान्ता सोचने लगी कि अगर वह नीचे उतरेगी तो उनसे बातें जरूर करेगी। पर अभी उसके सामने कई प्रबन्ध करने [illegible] थे। सोने की व्यवस्था और खाने की व्यवस्था ! नीचे उतरकर वह [illegible] मालकिन के पास गई। मालकिन के अनेक सकौतुक प्रश्नों का कुछ [illegible] देकर और कुछ को टालकर वह अपनी समस्त व्यवस्था कर आई। [illegible] सोया था। शान्ता सोच रही थी कि इस बार दिवाकर [illegible] बदलवा देगी। कपड़ों का बक्स खाली तो नहीं था, पर [illegible] अस्त पड़े हुए थे। शान्ता कपड़े ठीक करने लगी और [illegible] बेचैनी का सारा रहस्य अनायास ही उसके सामने [illegible]

सभी पत्रों पर एक हल्की नजर उसने डाली। यूँ तो किसी एक को पढ़ने पर ही पूरी कहानी की कल्पना कर सकने की नैसर्गिक प्रतिभा उसमें थी। शान्ता ने पत्र संभालकर ज्यों-के-त्यों रख दिए। फिर उसने एक नज़र सोते हुए दिवाकर के चेहरे पर डाली और हाथों में अपने सिर को थामकर वह कुर्सी पर बैठ गई। सोचती रही, 'तो यह है सारी बीमारी, जिसके लिए बुलाया गया है! लेकिन फिर उसे उसने बुलाया ही क्यों? क्या उसके दुर्भाग्य पर अट्टहास करने के लिए! दिवाकर की समस्त क्रान्तिवादिता का मर्म केवल इतना है!'

शान्ता अपने-आप पर बहुत कुण्ठित हुई और सोचने लगी, 'वही अपने को इतना अपदार्थ क्यों बनने दे। वह उनके बीच में से हट जाएगी। हमेशा के लिए वह दिवाकर को अपनी छाया से मुक्त कर देगी। दूसरे भी तो साथी हैं—सुरेन्द्रमोहन, अहसान, प्रेमनाथ और न जाने कितने? उनसे भी तो वह हंसती-बोलती है। वे भी उसकी देह को स्पर्श कर लेते हैं, फिर दिवाकर के स्पर्श को ही वह इतना महत्त्व क्यों देगी? ठीक है, दिवाकर अब करोड़ों इन्सानों में से उसके लिए केवल एक होगा जो अब बीमार हो गया है और अनेक रोगियों की तरह उसके द्वारा परिचर्या की अपेक्षा रखता है।"

इस प्रकार के संकल्प-विकल्पों में वह डूबती-उतराती रही। दिवाकर के जाग उठने से पूर्व ही अपने मानस की उन समस्त कोमल भावनाओं को समेट कर रख लिया जो उसके स्पर्श से बरसाती स्रोतों की तरह फूट पड़ी थीं। लेकिन जाने से पहले वह शकुन्तला को देखना अवश्य चाहती थी। दिवाकर को इतना थोड़ा जानकर भी इतना सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर देने वाली आस्था और विश्वास की वह मूर्ति कैसी होगी—यह जानने की उत्कण्ठा उसके मन में पैदा हो चुकी थी!

दिवाकर सोता-सोता अकस्मात् चौंक उठा था और उसे इस तरह चौंकते देखकर शान्ता फिर उठकर उसके पास चली आई थी। "क्यों, कैसी तबीयत है?" शान्ता उदासीन भाव से पूछती है।

"एक सपना देखा…अच्छा नहीं था।" दिवाकर उत्तर देता है।

"बुरा सपना…तुम्हें बुरे सपने कभी दीखते ही नहीं थे। मुझे तुम्हारे शब्द आज भी याद हैं। मेरे बुरे सपनों को तुम मेरी दुर्बलता का परिचायक बताया करते थे। आदमी किस तरह बदल जाता है।" फिर उतने ही अविचल स्वर से बोली, "अच्छा, अब कपड़े बदल लो, कई दिन से शायद बदलने

का होश ही नहीं रहा है !"

दिवाकर को लगता है कि शान्ता सोकर उठने की अवधि में ही बदल गई है। चुपचाप वह उसका आदेश स्वीकार करता है। शान्ता भी खामोश है कि कुछ सूझता नहीं है। बाहर उठ जाना चाहती है। उसके दिल में बेचैनी है कि वह चर्चा किस तरह उठे ताकि वह शीघ्र दिवाकर को अपनी ओर से मुक्त कर दे···उसके अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त कर दे। पर बात मुंह पर आती नहीं थी।

बात जब मुंह पर आ नहीं पाती तो न जाने क्यों और भी उत्कटता से जाहिर होने लगती है ? शान्ता का चेहरा देखकर दिवाकर अपना भयानक स्वप्न भूल गया और कपड़े एक ओर रखते हुआ बोला, "क्यों, क्या बात है शान्ता ?"

बात का उत्तर नहीं मिलता, सिर्फ दो आंसू शान्ता की आंखों में छलक आए हैं—जिन्हें वह छिपाना नहीं चाहती। आंसू पोंछता हुआ दिवाकर पूछता है—"हुआ क्या है ? किसी ने कुछ कहा है ? कहीं गई थीं तुम !"

"नहीं···!"

"तो फिर कुछ कहो भी तो···!"

"बस यही कि आज से तुम मुझे बिलकुल भूल जाओ। लौट कर अपना काम संभालो। मुझसे दूर भागने की जरूरत नहीं है। मैं ही तुम्हारी आंखों से ओझल हो जाऊंगी। जो तुम से नहीं पा सकी—वह किसी दूसरे को पाते देखकर तुम्हारे और किसी और के बीच शान्ता बाधा नहीं बनेगी।"

दिवाकर को निश्चय हो गया था कि किसी भी तरह हो, बात शान्ता पर खुल चुकी है, पर दिवाकर के लिए बाधा शान्ता थी ही नहीं। होती तो शकुन्तला उसके जीवन में कैसे आती, पर आज जरूर बाधा बनती जा रही है। जो यात्री का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उसके कदमों पर झुक जाए—ऐसी बाधा। दिवाकर ने स्वप्न में भी कुछ ऐसा ही देखा है, पर स्वप्न की शान्ता इतनी उत्सर्गमयी और विवेकी नहीं थी। स्वप्न में वह अपने प्रति किए गए विश्वासघात का बदला लेना चाहती थी। स्वप्न, कल्पना और जीवन का यथार्थ यह सभी एक-दूसरे के अंतरंग होते हुए भी कितने भिन्न होते हैं। दिवाकर चुप है और उसके अन्दर निष्कर्ष की प्रकाश-रेखा उभरती आ रही है। वह बोलता है, "शान्ता, मेरे पास कहने को कुछ भी नहीं है। तुमने पूछा भी कुछ नहीं है, पर मैं तुमसे जानना चाहता हूं, क्या कभी तुम्हारे

मन में मेरे प्रति इतनी विरक्ति नहीं भरी कि मेरा स्थान किसी दूसरे को मिल जाता ?"

शान्ता अन्दर-ही-अन्दर चौंकती है। दिवाकर फिर कहता है, "क्यों तुम भी मेरी तरह किसी से प्रेम करके अपने जीवन की डगर पर बढ़ नहीं गई ? क्या कहूं कि मेरे मन की बात तुम तक पहुंच जाए। पहले ही क्या कुछ नहीं कहा है ? क्या आज फिर उसे दोहराऊं तो विश्वास करोगी ?"

शान्ता को फिर उसने असमंजस में डाल दिया है। वह जानना चाहती है कि उतना कुछ हो जाने के बाद भी क्या आदमी के पास कुछ कहने को बाकी रह जाता है ! नीची नज़र करके वह अपने मन के आवेग को छिपाती हुई बैठी रही। दिवाकर बोलता गया, "प्यार और मुहब्बत कोई बाहरी चीज़ नहीं है—वह अपने अन्दर की चीज़ है। बाहर से उसे उद्दीपन मिलता है वह प्रेम नहीं है—वासना है। वासना में ही हमारा सामाजिक दायित्व है। मानता हूं—मैं वासना से अतीत नहीं हो सका, इसलिए प्रेम के नाम पर तुम्हें कुर्बान नहीं होने दूंगा। मुझे ले चलो शान्ता। मैंने शकुन्तला से कहा था कि मैं शान्ता का अनुगत हूं। कितनी सच्ची बात थी। सच्ची होने के लिए बात को कितना कठोर होना पड़ता है ? ठीक कहता हूं, शान्ता, चाहो तो हवा से भी उड़ा ले जा सकती हो।"

शान्ता के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं है। उसे विश्वास नहीं होता था कि मन पर इतनी जल्दी विजय पा लेना किसी के लिए संभव भी है। दिवाकर को जानती तो है कि वह व्यामोह के बन्धन को बेरहमी से काट डालता है। पर शकुन्तला के पत्रों में व्यक्त होने वाले प्रेम की उत्कटता क्या दिवाकर की दृढ़ता से कम कठोर है ? अगर उसे जीतना है तो वह परीक्षा में बैठकर जीतेगी और उस गौरव को अपनी थाती मानकर दिवाकर की कृतज्ञ होगी। वह दिवाकर के बिलकुल निकट पहुंच जाती है—"जी तो अच्छा है न ?" शान्ता पूछती है, "तुमने अपना धैर्य कहां खो दिया है दिवाकर ! मेरी पूछो तो तुम्हारे मुंह से इतना सुनकर और कुछ सुनने की चाह नहीं देखती अपनी। तुमने शकुन्तला से प्रेम किया है तो क्या कोई विश्वास नहीं दिया होगा ? उस विश्वास को लेकर उसने कोई जीवन-दिशा न बना ली होगी ? मैं एक बार शकुन्तला से सब-कुछ बिना पूछे यहां से जाने वाली नहीं हूं ?"

"ऐसा मत सोचो, शान्ता !" दिवाकर उद्विग्नतापूर्वक कहता है, "उसे

फिर कभी मेरी आखों के सामने मत आने देना। उसे एक बार देखकर तुम्हें मेरे कथन की सचाई पर जीवन-भर विश्वास नहीं होगा। बस, सुबह चल देना है। मैं अब ठीक हूं—तुम्हारे साथ यात्रा कर सकता हूं।"

शान्ता दिवाकर को दवाई पिला रही है और सोचती जाती है, ऐसा भी कोई आदमी हो सकता है—जो दृढ़ता और दुर्बलता की एक साथ ही इतनी प्रबल अनुसन्धि बना सकता हो। जिसे देखने से आदमी अपने निश्चय पर सायित कदम न रह सके—ऐसी वह शकुन्तला कैसी है? अपना सब-कुछ दांव पर लगाकर भी वह उसे देखे बिना जा नहीं सकती। वह उसी प्रकार अविचलित होकर कहती है, "तार देकर एक बार बुला क्यों नहीं लेते? अगर चाहो तो शकुन्तला क्या साथ चल नहीं सकेगी? तुम्हारी प्रकृति और स्वभाव को तो पहचान गई होगी। उसने दर्द दिया है तो दवा भी उसे ही नहीं देनी चाहिए?"

शान्ता व्यग्य करने पर उतर आई थी, क्योंकि शकुन्तला के व्यक्तित्व की इतनी सराहना करके दिवाकर ने उसके स्वाभिमान को गहरी ठेस पहुंचाई थी। शान्ता जानती है कि सामाजिक दायित्व के बोझ और बन्धन उस भावना के एक झोंके में तिनके की तरह उड़ जाते हैं—जिसे लोग प्रेम कहते हैं—या वासना भी। वैसी ही एक लहर कभी शान्ता के मन में भी उठी थी और उसने मा-बाप, बन्धु-बांधवों सभी के प्रति अपने सामाजिक दायित्वों को ठुकरा न दिया था? वह भीख मांगकर अपने नारीत्व को हेय नहीं होने देगी। शान्ता चाहती है कि हजार चुनौतियां उसके कंठ से फूट पड़ें ताकि दिवाकर को यह विदित हो जाय कि शान्ता दया के भाव से प्रेम पाने की पात्र केवल दिवाकर के लिए भी नहीं है। ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो शान्ता के अंतर्मन में छिपे वैभव के एक कण को पाकर भी दिवाकर से अधिक उसके प्रशंसक बनने में अपना गौरव समझेंगे। एक दिन दिवाकर ने ही उसे लौकिक वैभव पर भरोसा न रखकर, सामान्य सामाजिक-सार्थकता की ओर झुकने को प्रेरित किया था। आज उसने प्रेम भी छीन लिया और आदर्शों को झुठला दिया। एक ही नज़र में मन चुरा लेने की भी साधना करनी होती है! कितनी विडंबना है जीवन में!

दिवाकर चुप है। उसके पीले चेहरे पर थकान साफ उजागर है। लेकिन वह शारीरिक बीमारी से जितना पीड़ित था, उससे अधिक स्वयं यह मानसिक उलझन उसे कचोट रही है। पर शान्ता नहीं देखती है कि रात आ गई

है। उसके अपने लिए तो जैसे पौ फट रही है और उसकी अरुणिमा से अपने भाल को यद्यपि वह अलंकृत नहीं कर सकती है तो भी कम-से-कम रोशनी की चिलक उसे उसका रास्ता सुझा देगी—ऐसी आशा शायद उसके मन में कहीं है।

रात गहरी पड़ रही है। मालकिन ने जो व्यवस्था शान्ता के लिए बनाई थी, उसकी उसे सुधि नहीं है। दिवाकर को पथ्याहार देकर वह अपने को भूल जाना चाहती है।

उन सभी उलझनों को सीने में सहेज कर दिवाकर सो गया है—या किसी जाग्रत स्वप्न में डूब गया है—कहा नहीं जा सकता, परन्तु शान्ता को लगता है कि वह सो गया है। शान्ता उसकी ओर देख रही है और सोच रही है—इतना सब होते हुए भी उसके मन में दिवाकर के प्रति घृणा क्यों नहीं पैदा होती? वह उसके पैरों के पास बैठ जाती है। और तकिया उठा कर वहीं, बिलकुल उसकी बगल में ही लेट जाती है!

दिवाकर सोया भी है जाग भी रहा है। उसके मन में बार-बार अंधकार भर उठता है। वह सोचता है: सामाजिक दायित्व के नाम पर दिए गए वचन किस कुएं में जाकर गिरते हैं? शान्ता ने वचन की गरिमा को दिवाकर के द्वारा भंग कर दिये जाने पर भी अपने सुख की बलि देकर अक्षुण्ण क्यों रखा है? वह उठकर बैठ गया है। शान्ता के सिर पर हाथ रखता है। शान्ता क्या जाने गहरी नींद सो रही है या उसकी पलकें शान्त भाव से जुड़ी हुई हैं। स्पर्श से कहीं कोई सिहरन पैदा नहीं होती। एक के बाद एक डंक दिवाकर के मस्तिष्क में चुभता जा रहा है। उसे अब क्या करना है? क्या शकुन्तला को भूल जाना होगा? अभी भी समय है कि शकुन्तला उससे वियुक्त होकर उसे भूल जाएगी। एक दिन उसकी याद दुनिया की नई-नई बातों में खो जाएगी। ऐसा सोचते-सोचते एक आह उसके फेफड़ों से निकल जाती है। इस आह से भरे दिल को करवट के नीचे दबाकर वह निश्चय करता है कि कल शकुन्तला और मिस यंग के आ पहुंचने से पैदा होने वाली समस्याओं के सामने अपनी चेतना को एक बार फिर खो देने से पहले ही उसे चले जाना होगा।

सुबह हो गई है। दिवाकर गंभीर है। वह अत्यंत संयत और सहज व्यवहार कर रहा है। खिड़की बंद है। एकाध बार शान्ता के खोल देने पर भी उसने उसकी निगाह बचाकर उसे फिर बंद कर दिया है। वह उसकी

याद को फिर से जागने देना नहीं चाहता। वह अंदर-ही-अंदर चल उठने की तैयारी कर रहा था। शान्ता को लेकर उसके जीवन में जो आंधी आई थी, जिसने उसे अनेक बार झटके दिए थे—और जिससे अपने को रीता करने के लिए उसने इस दूर देश की यात्रा की थी—वह आत्म-प्रवंचना थी। शान्ता को वरण कर ही लेना चाहिए। उसके शरीर की भूख बार-बार जाग उठती है—जाग उठा करेगी—इसलिए अब उस शहर में एक क्षण भी ठहरना निरर्थक है।

दिवाकर की सौम्य और प्रशांत मुखाकृति को देखकर शान्ता का अभिमान गलता जा रहा है और दिवाकर के संकेत से ही उसने चलने की तैयारी कर डाली है।

स्टेशन पर लोगों की भीड़ लगी है, दिवाकर वेटिंग रूम में बैठा है। उसके चेहरे पर एक भयानक खामोशी है। शान्ता इधर-उधर जाकर पाथेय जुटा रही है। उसके स्नेह-भाजन राम और श्याम उसका साथ दे रहे हैं। दिवाकर उनसे आंखें नहीं मिला सकता। उनकी आंखों में कहीं शकुन्तला ही उसे झांक न ले, यही डर उस पर सवार है। गाड़ी के आने का वक्त बहुत निकट आ गया है। वह सोचता है, काश! एक झलक ही उसकी मिल जाती। काश! कि वह अपनी भूल के लिए क्षमा मांग सकता। काश! कि एक बार"'बस, केवल एक बार आंखें उसे देख सकतीं। गाड़ी आ गई है। वेटिंग रूम से उठकर डिब्बे में बैठने को जी नहीं हो रहा है। पैर कितने तो भारी हो गए हैं। शान्ता हाथ का सहारा देकर उठा रही है।

श्याम और राम की आंखों में आंसू हैं। शान्ता की बाजुओं में वे दोनों किस तरह चिपक गए हैं!

बस, अब हमेशा के लिए वह जा रहा है। अब वह कभी इधर आएगा भी नहीं। इस शहर की धरती भी वह छू नहीं सकेगा। बस सब खत्म हुआ! बाहर ताकते-ताकते उसकी पुतलियां फट जाना चाहती हैं। उसे लेट जाना चाहिए। गाड़ी की सीटी बजती है। दोनों बालक आंखों में आंसू भरकर रूमाल हिला रहे हैं। उनके स्नेह की ऊष्मा शान्ता की आंखों में भी छलक आती है। बस, अब सब खत्म हुआ"'!

सहसा गाड़ी को झटका लगता है। दिवाकर का दिल घबरा उठा है। वह सोचता है कि बस शकुन्तला आ गई है—बिस यग और उसके साथ शकुन्तला भागती हुई रेल में प्रवेश करने ही वाली है, पर वैसा नहीं होता!

शान्ता कह रही है कि कोई अंग्रेज़ महिला दौड़ती आ रही है। वह उन्हीं के डिब्बे में आ गई है। वह मिस यंग नहीं है। इंजन फिर दहाड़ रहा है। उस की दहाड़ से दिवाकर का कलेजा फट जाने को हो रहा है और उसने मुंह पर चादर ढांप ली है। इस डिब्बे में दो-दो स्त्रियां हैं। वह अपने आंसू पी लेगा, वह अपने होठों को फकड़ने भी नहीं देगा।

शकुन्तला जिस समय जबलपुर से वापस लौटी, तो उसके मन में अनेक भाव पैदा हो गए थे। मि० विल्किन्स के उस उच्छ्वसित प्रेम को—जिसकी गर्माई से शकुन्तला को अपनी आत्मा सुन्नमती प्रतीत होती थी—मिस यंग ने जितने अनायास ही ग्रहण कर लिया था, और जिस कठिन काम को पूरा करने में उसे अनेक उलझनें दिखाई देती थीं, वह मिस यंग की उपस्थिति से इतने स्वाभाविक ढंग से हल हो गया कि जैसे मि० विल्किन्स युग-युगान्तर से मिस यंग की प्रतीक्षा करते रहे हों। मेज पर एक साथ बैठकर कलेवा करने के बाद फिर उनके हाथ एक-दूसरे की बगल में से निकले ही नहीं।

शकुन्तला को मिस यंग के इस अप्रत्याशित व्यवहार पर आश्चर्य था और यह उसकी मित्र से छिपा नहीं था। इसीलिए मिस यंग ने शकुन्तला को एकांत में ले जाकर कहा था, "आंखें फाड़कर तो इस तरह देखती हो कि जैसे मैं तुम्हारे दूल्हे को ही तुमसे छीन लेना चाहती हूं। पर याद रखो, वह तुम्हारा असली दूल्हा बहुत सर्द आदमी है, मैं ऐसे आदमी को पसंद नहीं करती। मि० विल्किन्स मर्द हैं! अगर एक दिन इनके साथ और तुम रह लो, और इस बहाने मैं भी यहां रह लूं तो फिर तुम नार्थ जाओ और मैं इनके साथ साउथ जाऊं, और वहां किसी और के हवाले कर आऊं।"

शकुन्तला के मन में ग्लानि तो इससे नहीं भरी थी, पर उसे कुछ ऐसा जरूर लगा था कि जीवन में साफ और उलझन-हीन होने के लिए मिस यंग की तरह बनना कुछ बहुत घटिया बात नहीं है और मि० विल्किन्स प्रेम के रूप में अपने ऊपर आने वाली आफत को सदा के लिए दूर करने और इस आकस्मिक प्रेम की प्रगति का निकट से प्रेक्षण करने के लिए वह एक दिन और ठहर गई थी, हालांकि बार-बार उसका माथा ठनक जाता था और दिल में इस तरह घबराहट होने लगती थी कि जैसे वह मूर्च्छित हो जायेगी।

आज नागपुर लौटकर उसका वह सपना बिगड़ गया। स्टेशन से उतर कर वह जिस विश्वास और साहस के साथ घर जा पहुंची थी, वह सब बिखर गया था। मोह-लज्जा और अपवाद उसके दिल पर सिल की तरह [illegible]

दिवाकर चला गया था। किन परिस्थितियों में गया था—यह कोई बताना नहीं चाहता। पर शकुन्तला के मन में रोष अपने ऊपर था। वह अपनी भीरुता को लांछित करके मरी जा रही थी। घर में मां थी, कीर्ति थी, पिता थे पर इस बार सब जैसे बदल गए थे। यात्रा से लौटने के बाद एक बार भी उन्होंने बुलाकर उसके सिर पर हाथ नहीं फेरा था, उनके मुंह का हास और उल्लास न जाने कहां चला गया था। सभी लोग उसकी ओर थकी हुई, अपमानित और मायूस चितवनों से देखते थे। मायूसी जैसे माहौल के एक-एक ज़र्रे से बोलती थी। चारों तरफ वीरानी थी। वह खिड़की, जिसमें बैठे हुए देवता के लिए उसने अपना सब-कुछ न्योछावर किया था, आज किसी जेल के समान बेबसी का आलम अपने अंदर छिपाए मालूम पड़ती थी।

वह किससे पूछती कि जिसके चरणों में बैठकर उसने अपना सर्वस्व समर्पित किया था, वह बिना कुछ कहे, सुने कैसे चला गया? अब वह उसे कहां ढूंढ़ेगी, और क्या अब उसे ढूंढ़ना भी चाहिए!

मिस यंग ने उसे जब बदले हुए वातावरण का वास्तविक कारण बताया, तो उसका चेहरा फक हो गया। मिस यंग बोली, "बड़ी बुरी हुई तुम्हारे साथ सखि! बड़े निष्ठुर से तुम्हारे नयन लगे।" फिर उसकी चिबुक को ऊपर उठाती हुई कहने लगी, "कोई बात नहीं। हम-तुम दोनों जोगिन का रूप भरकर उसे देश-देश ढूंढ़ती फिरेंगी।" और फिर शकुन्तला की साड़ी का पल्ला खींचकर वह जोगिन का अभिनय करने की चेष्टा करने लगी। शकुन्तला ने व्यथित कंठ से कहा, "बेटी, सता मत मुझे। मेरा सब-कुछ लुट गया। मेरे पास तो उनका पता भी नहीं।"

"अरे, लुटा क्या तुम्हारा! मैं जानती हूं तुम लुटने वाली नहीं हो। लुटने के लिए हौसला चाहिए। वैसे मिट्टी के माधो और भी मिल जायेंगे। अगर तुम चाहो तो तुम्हारा विल्किन्स…!"

"नहीं, तुम्हें ही मुबारक हो तुम्हारा विल्किन्स।"

"तो फिर छोड़ो चिन्ता। अगर उसकी मुहब्बत सच्ची है, तो एक दिन लौटकर आयेगा तुम्हारा दिवाकर!"

"लौटकर कैसे आयेंगे…लौटकर आना होता तो जाते ही क्यों?"

मिस यंग ने अनेक प्रकार से शकुन्तला का मन बहलाने कोशिश की, पर व्यथा इतनी गहरी थी कि जितना मन हटाने की चेष्टा की जाती, विह्वलता और भी बढ़ती जाती।

उस दिन संध्या समय यह व्यथा पराकाष्ठा को पहुंच गई। डा० विलियम की दूकान के सामने से जब वह गुज़री तो डाक्टर ने अकस्मात् पूछा, "आपके मरीज़ कैसे हैं अब ?"

उसने अपने पारिवारिक डाक्टर की आंखों में एक खामोश वीरानी देखी और बिना कोई उत्तर दिये ही वह लौट आई। नागपुर लौटने के बाद से जिस पागलपन ने उसे अभिभूत कर लिया था, लोकापवाद के एक ही झटके ने उसे उस स्थिति से निकाल लिया था। गली के मोड़ से निकलकर वह घर के सामने आई, तो जैसे उसका अतीत मूर्तिमान होकर उसके सामने खड़ा हो गया। उसे एक बार लगा कि जैसे उसे गलत बताया गया है कि दिवाकर चला गया है। दिवाकर उसे छोड़कर नहीं जा सकता और वह यन्त्रचालित-सी ज़ीने पर चढ़कर उस कमरे में जा पहुंची जहां उसने जीवन के उस अंतिम निष्कर्ष की भूमिका स्वयं लिखी थी।

कमरे की सांकल चढ़ी थी। सांकल खोलने के लिए उसकी बाहें नहीं उठीं। वह चेतना खो चुकी थी। पड़ोस के राम और श्याम ने आकर जब उसे दीदी कहकर आवाज़ दी और यत्न से उठाकर अपने कमरे में बैठाया, तो उसे लगा कि बस उसका जीवन-दीप बुझ गया—अब उसकी लौ कभी नहीं जलेगी।

श्याम ने शकुन्तला से कहा, "दिवाकर बाबू शान्ताजी के साथ चले गये। हम से कह गये थे कि शकुन्तला से कहना, अगर समय हुआ तो वह शीघ्र ही आयेंगे।"

"कैसी हैं शान्ताजी ?"

"बड़ी अच्छी हैं। तुम्हारे बारे में पूछती थीं। न मालूम उन्हें किसने बता दिया सब-कुछ, हमने तो कुछ भी नहीं कहा ?" श्याम ने राम की ओर देखते हुए कहा।

"उस दिन बेहोशी की हालत में आपकी माताजी से न जाने उन्होंने क्या-क्या कहा। हमसे एक और गलती हुई। हमने शान्ताजी को तार दे दिया और वह हवाई जहाज़ से आ गई।"

"जाते समय बड़े उदास थे शकुन्तला दीदी।" श्याम ने गमगीन होकर कहा, "हमसे कह गये हैं कि आपको दिलासा देते रहें। जब गाड़ी छूट रही थी, और ज़ोर-ज़ोर से सीटी बज रही थी तो उनके मुंह की हालत देखते बनती थी। काश, अगर शान्ता दीदी सामने न होतीं तो मैं उन्हें कभी न जाने देता ! न जाने क्यों, मेरा दिल बैठा जा रहा था !"

"हमारी बदनसीबी है श्याम ! हम उन्हें रोक नहीं सके। भाग्य का लिखा हुआ कब टलता है !"

"तुम उन्हें चिट्ठी लिखकर बुला क्यों नहीं लेतीं ? हमारे लिफाफे में ही रख दो। हम आज ही चिट्ठी भेज रहे हैं।"

शकुन्तला ने चिट्ठी हाथ में उठा ली और उसका पता पढ़कर मन में रख लिया, पर स्वयं चिट्ठी लिख नहीं सकी। लिख नहीं सकती थी। उसके मानस-पटल पर शांता की वह तस्वीर उभरती आ रही थी जो स्वयं दिवाकर ने उसके सम्मुख खींची थी! वह शान्ता का प्रेमास्पद था और जीवन के संयोग ने उसे शान्ता से छीनकर शकुन्तला की गोद में पटक दिया था।

पर दिवाकर की याद आते ही कोई आक्रोश की रेखा उसके मन पर उभरती न थी। उस मकान से निकलकर शकुन्तला जब गली में आई तो उसने देखा कि कीर्ति संतरे बेचने वाली से कह रही है, "अरे, वह बाबू उधर नहीं है। बीमार होकर अपने देश चला गया।"

शकुन्तला का गली से निकल कर बाहर आना और कीर्ति के मुंह से उन शब्दों का निकलना एक ही साथ हुआ। शकुन्तला का चेहरा आंसुओं से तर था और वह कीर्ति के सीने पर सिर रखकर फफक उठी।

कीर्ति उसे संभालकर अंदर ले गई, "शिक्की, क्या हो गया है तुझे ! पढ़ा-लिखा सब खाक में मिला दिया !"

"मैं ही खाक में मिल गई दीदी !"

"क्या खाक में मिली हो। हिम्मत से काम लो। पापा बुरा मना रहे थे कि जबलपुर से आई है तो कुछ भी बताया नहीं।"

"आह, क्या पापा मेरा मुंह अब भी देखना पसंद करेंगे ? वे तो मेरी ओर से निगाहें फेर लेते हैं···मेरे कारण उनकी इज्जत···।"

"क्या फिजूल बकती है ! उसका पता तो अच्छी तरह अम्मा को ही है। मेरे सामने ही तो पागलपन की हालत में वह सब-कुछ कह उठे थे। मैं नहीं जानती आदमी को, पर शायद बड़ा अच्छा दिल पाया होगा।"

"दीदी, तुमने भी मुझे मरा समझ लिया था। मालूम था, मैं विल्किन्स जैसे आदमी का चेहरा भी देखना पसंद नहीं करती।"

"पर विल्किन्स की रही क्या ? मना कर आई हो ?"

"मना करने की आवश्यकता ही पड़ी नहीं। मिस यंग पर मोहित होकर उसने मुझसे बातें ही नहीं कीं !"

"वह चंडाल कैसे जा पहुंची वहां ?"

"दिवाकर ने मुझे बुला लाने के लिए भेजा था।"

"तो फिर पापा से सब कह दो—खाना-पीना होश में रहकर खाओ। या तुम भी पागल बनोगी ? अगर पागल बनकर मनचीता मिल सकता तो दिवाकर को ही मिल जाता।"

"दीदी, तुमने वह लड़की देखी थी जिसके साथ वह गये ? क्या बहुत सुंदर थी ?"

"सुंदर भी थी, पर उससे भी ज्यादा दबंग थी। ऐसी औरतें आदमियों को गुलाम बनाकर रखती हैं।"

"बस, अब खतम हुआ दीदी। कोई कुछ भी बनाकर रखे। पागल मैं बनूंगी नहीं, अपनी किस्मत के साथ लड़ूंगी !"

"तू तो पागलों की तरह बातें करती है। इससे अधिक क्या होगा ?"

शकुन्तला ने यद्यपि यह निश्चय नहीं किया था कि उसे आगे क्या करना होगा, परंतु यह बात न थी कि उसे लेकर माता-पिता ने कुछ भी न सोचा हो। दोनों बहिनें किसी निर्णय पर पहुंचना ही चाहती थीं कि माताजी अकस्मात् अंदर आ पहुंचीं। उन्हें आया देखकर शकुन्तला असमर्थ होकर फफक उठी। मां ने सजीदा आवाज में पूछा, "क्या अभी खतम नहीं हुआ तुम्हारा पागलपन ?"

"मैं तो बहुत समझा रही हूं मां।" कीर्ति ने कहा।

"मुझे मालूम है विलिंग्म को यह कभी पसंद नहीं करेगी, पर तेरे डैडी मानें भी। वह छोकरा न जाने पागलपन में क्या बक गया। क्या बुरा था अगर उसका साया इसके सिर पर रहता।" मां ने कहा।

"आपको पता नहीं है मां, शिवजी जबलपुर जाने से पहले उसमें चिट्ठी लिखने को मना कर गई थी। उसने घबराकर घर को तार दिलवा दिया होगा—आखिर वही किस भरोसे पर यहां बैठा रहता ?"

"अरे, लेकिन वह गया तो गया। परदेसी का कोई ठौर-ठिकाना होता है ? अपना मन हलका न करो। खेलो, कूदो, मौज करो ! बचपन में भावुकता किससे नहीं होती ?"

इतना कहकर वह जिस अन्यमनस्कता से आई थीं, वैसे ही लौट गईं। शकुन्तला ने कीर्ति से कहा, "तो क्या यह सारी-की-सारी प्रेम और प्रणय-गाथा बचपन की भूल कहकर भुलाई जा सकती है ?"

"बहुत गनीमत समझ शिक्की। जब मेरा मामला उठा था तो मां ने बहुत बड़ी बात कही थी। उनका तो यहां तक खयाल है : प्रेम की बात तो बहुत साधारण-सी बात है। शारीरिक संपर्क से भी कुछ नहीं बिगड़ता। जब आवश्यकता अनुभव की जाये तो बंधन तोड़ा जा सकता है।"

("तो विवाह और वेश्यावृत्ति में क्या अन्तर हुआ दीदी ?"

"इतना तो मैं भी कहती हूं शिक्की, कि विवाहित स्त्री और वेश्या में बारीकी से अन्तर खोजो तो बहुत कम अन्तर मिलेगा। वेश्या शारीरिक श्रम चाहे जितना कर ले पर बहुधा अपने सर्वस्व का समर्पण वह किसी विरले को ही करती है—जबकि विवाहित स्त्री समर्पण एक को करती है, पर मन में अनेकों की सोचती है !"

"यह क्या कहती हो कीर्ति जीजी ? कितनी खतरनाक बात है !"

"नहीं, यह सिर्फ कहने की बात नहीं है, अपने मन के रहस्यों को साहस करके स्वीकार कर लेने की बात है। वेश्या और विवाहित स्त्री के बीच में केवल कानून की पतली-सी दीवार हटने से स्त्री केवल स्त्री रह जाती है।"

"कैसी अराजकता की बातें करती हो जीजी ?"

"भोली शिक्की, तूने दुनिया नहीं देखी। औरत ने पुरुष के बनाए सदाचार को पवित्रता का कवच बनाकर अपने चारों ओर लपेट लिया और अपना विध्वंस करती गई। और पुरुष ! क्या उसके लिए सदाचार के दूसरे नियम लागू होते हैं ? किसी भी पुरुष को स्त्री चरित्रहीन नहीं मानती—जुआरी, व्याभिचारी, मद्यपान करने वाला पुरुष भी यदि निर्भरता का पात्र हो, कोई भी स्त्री उसको अपने हृदय का स्वामी बनाना पसन्द करती है। यह सब पेट की भूख है शिक्की, शरीर की मांग है।")

"सच बताना जीजी, तो फिर तुमने अपने मनचाहे आदमी से विवाह करने के लिए इतना संघर्ष क्यों किया ?"

"मेरी भूल थी शिक्की। शायद मेरी शिराओं में दौड़ने वाले गर्म खून की मांग थी—या केवल मेरे संस्कारों की छलना-मात्र थी ?" इतना कहकर कीर्ति की आंखों में आंसू आ गए।

"मेरी अच्छी जीजी, क्या बात है ! आज तक तो तुमने कुछ भी नहीं बताया। पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक चली गई—अपनी अभागी शिक्की को कुछ भी नहीं बताया !"

"बताती क्या शिवकी, तुम्हारी बातों का पता चल गया है, तो तुम्हारी कोई क्या सहायता करेगा ? जिन्दगी तो अपने पैरों पर ही चलानी होती है। इंसान खुद ही अपने पैरों में जंजीरें बांधता है और खुद ही उन्हें खोलता है। मनुष्य-समाज की जो परम्पराएं हैं, जो सिद्धांत और निष्कर्ष हैं—जिन्हें सब—सब के भले के लिए मानते हैं, लेकिन उनके बल पर जीवन-वास्तव का निर्णय नहीं होता। इसलिए तुम्हें क्या बताती !"

"फिर भी तो !—इतनी गहरी बात तुम्हारे मन में कहां से आ गई ? कभी किताब उठाकर पढ़ते भी नहीं देखती।"

"किताबों की बात मैं क्या जानूं शिवकी ! यह मैंने देखा है कि किताबों में जो होता है, वह आदमी के मन की कल्पना से आगे क्या होगा, पर जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसा घटित होता है जिसे कल्पना भी नहीं पा सकती। सुनोगी, अगर तुम्हें कुछ बताऊं !"

"न जाने, अब तक क्या समझकर नहीं बताया तुमने !"

"तुम्हारे मि० कुमार, जिन्हें तुम बहुत पसन्द करती थीं, आजकल मेजर हो गए हैं···और उन्होंने एक नया प्रेम रचा लिया है। और मैंने भी···! यह छोटा मुन्ना मि० कुमार को अपना पिता नहीं कहेगा···"

"जीजी···!"

"क्यों, घबराहट की क्या बात है ?"

"जीजी, इतने कठोर संघर्षों से गुजरती रही और चेहरे पर कभी एक शिकन भी न आने दी···कभी एक शब्द भी मुंह से नहीं बोला···"

"तुमसे क्या कहती शिवकी ! तुम्हारा मन दिवाकर में था। मैं जानती हूं, पहली बार जब प्रेम किया जाता है तो आदमी अच्छे-बुरे का हिसाब लगा कर कुछ नहीं करता। अगर वह हिसाब तुम्हें बताती तो क्या तुम दिवाकर को इतनी उत्कटता से प्रेम करती रहतीं ? चार दिन हंसी-खुशी से जीने का अवसर भी जिन्दगी में किसे नसीब होता है ?"

"मेरी आंखें तो खुली होतीं, जीजी !"

"आंखें सबकी खुली होती हैं, शिवकी ! पर असल देखना खुली-आंखों कहां होता है ! बाहर देखना सार्थक नहीं होता जब तक आंखें बन्द करके भी देखा न जा सके। मेरी बात सुन बहिन, सच तो यह है कि इंसान सदा दूसरे के सिखाए ही नहीं सीखता। अपने अनुभव से सीखता है। य[illegible] और ज्ञान दूसरों के सहारे मिलता है, वह सब अलमारियों में [illegible]

आदमी की उम्र, ज्यादा बड़ी कहां होती है, शिक्की ! केवल २५ साल···और केवल यही उम्र इस इतनी बड़ी दुनिया की है। इसलिए किसी के ज्ञान और अनुभव से लाभ उठाने की आशा छोड़ दो।"

कीर्ति के चेहरे पर कुछ ऐसा उभार आया था जिसे देखकर शकुन्तला के लिए यह विश्वास करना मुश्किल हो रहा था कि पलक मारने की अवधि में कीर्ति के स्थान पर कोई और तो नहीं आ बैठी है—जिसे उसने आज तक कभी देखा-सुना नहीं है। अपने को निढाल करते हुए शकुन्तला ने कहा, "पर मुझे क्या कहती हो जीजी ! कभी नहीं सोचा था कि इस तरह छोड़कर चले जाएंगे। मैंने बहुत-कुछ सोच लिया था। पर आज आपको देखकर मन में आता है कि सब कितना गलत सोचा था। आने वाली बातों के बारे में पहले से सोचकर रखना कितना निस्सार होता है !"

"ठीक कहती हो। दिवाकर ने क्या कभी सोचा होगा कि वह इस तरह बीमार पड़ेगा···तुम्हें छोड़कर चला जाना ज़रूरी हो जाएगा। इसलिए मैं कहती हूं कि भविष्य को विचारों की बांहों में कभी मत जकड़ो। जो है, उस के प्रति जागरूक रहो। भविष्य की दिशा जीवन में से स्वयं निकल आएगी, शिक्की ! दिवाकर सब की तरह का आदमी नहीं था—दूर से देखकर भी इतना मैंने ज़रूर समझ लिया था। मेरा खयाल है कि प्रेम करते हुए भी उस ने कभी मर्यादा का उल्लंघन न किया होगा।"

"हां, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जिसके आधार पर मैं उन्हें पकड़ कर रख सकती, कभी पकड़ में नहीं आए। दो अच्छे आदमियों की तरह हम मिले, साथ रहे और बिछुड़ गए।"

कीर्ति ने सुनकर लम्बी सांस खींच ली। शकुन्तला की पीड़ा अब एकाकी नहीं रह गई थी। उसमें दिवाकर की पीड़ा भी थी। वह यह जानती थी कि दिवाकर के इस तरह चुपचाप चले जाने के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। क्यों न उसने विल्किन्स की बात को उसे बताकर स्वयं उससे रास्ता पूछा ! क्या अधिक चतुर बनकर उसने स्वयं को निपट अज्ञ नहीं बना लिया है ? कीर्ति ठीक ही कहती है कि शान्ता उसे गुलाम बनाकर रखेगी। कीर्ति की बातें सुनकर उसे लगता था कि जैसे अब तक उसकी आंखें खुली नहीं थीं। आज खुली हैं, तो जीवन कितना खट्टा अनुभव होता है। 'क्या सचमुच यह भी संभव है कि हम जीवन भर एक दूसरे से न मिल सकेंगे ?'—इस विचार से ही शकुन्तला का गला रुंधने लगा है और वह अपना रुआंसा मुंह

छिपाने के लिए उठने लगी है। लेकिन कीर्ति उससे पहले ही उठ गई। छोटा बेबी सोकर उठ चुका था। उसके रोने की आवाज सुनकर शकुन्तला को लगा जैसे उसके अदर कुछ मचल रहा है। वह सूचना, जो अभी-अभी उसने कीर्ति से सुनी थी, कितनी सनसनी से भरी थी। वह उक्ति, दिवाकर के मर्यादित प्रेम की! उसकी सारी देह में एक अजीब-सी सिरहन दौड़ गई। दिवाकर का प्रेम मर्यादित न होता तो'''आज वह क्या होती? क्या वह दिवाकर में इतनी नहीं डूब गई थी कि उसके किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार करके अपने को कृतकृत्य मानती? उसने मन ही-मन दिवाकर के प्रति कृतज्ञता अनुभव की और अपने मन पर संपूर्ण अस्था प्रकट करते हुए कहा, 'कितना अच्छा था वह परदेसी!' शकुन्तला विचारों में डूबी बैठी थी कि कीर्ति उस शिशु को उठा ले आयी जो कुमार को अपना बाप नहीं कहेगा। शकुन्तला ने बच्चे को बहिन की गोद से लेकर कहा, "कितना प्यारा है!"

"प्यारा है तो तू ही संभाल ले इसे!" कीर्ति ने सोल्लास कहा।

"जीजी, क्या मैं जान सकती हूं''''''?"

मन की बात मुह पर आकर रह गई। शकुन्तला ने लजा कर शिशु को चूम लिया।

"क्यो री, लजाने का काम मैंने किया और ताला तेरे मुह पर पड गया। पर मैं, तू पूछेगी भी तो बताऊंगी नहीं'''बता नहीं सकती।"

"क्यो जीजी, मुझे भी नहीं। एक मा के पेट से पैदा होकर भी मैं तुम्हारे विश्वास की पात्र नहीं बन सकूगी?"

"बताने लायक कुछ नहीं है, शिक्की! मैंने कुमार को छोड़ कर जीवन में किसी से प्रेम नहीं किया। कह नहीं सकती कि क्या किया था वह! कुमार ने जब अपनी 'उसे' लाना शुरू किया तो पीटर और मेरी उससे बहुत हिलमिल गए और उसने मेरे बच्चो पर जादू करना शुरू कर दिया। वे कई-कई दिन जाकर उसके साथ रहते और मुझे याद भी न करते। कुमार का प्रेम खोकर भी मैं इतनी निराश नहीं हुई थी—जितना बच्चो का प्रेम खोकर हुई। उस भाग्यशालिनी ने मेरे बच्चे मुझसे छीन लिये। उनके बिना मैं तडपती थी और एक रात मैं उठकर चली आई। पर जाती कहा? गन्तव्य मेरे लिए कहीं था ही नहीं। यू ही बिना सोचे निकल चली थी। छावनी से निकलकर स्टेशन पर पहुची कि राबर्ट मिल गया। और उस रात मैंने रॉबो के साथ सफर किया। पति के द्वारा परित्यक्ता मैं उसकी नीली आंखो के

पानी में डूब गई। कई रातें तो हम साथ रहे और फिर एक रात उसे सोता छोड़कर मैं नागपुर चली आई। बस, इतनी-सी कहानी है…"

"कुछ समझ में नहीं आता," शकुन्तला जैसे खुद बच्चे की नीली और चमकती हुई आंखों में डूब चुकी थी…इन्सान के मन के फेर समझ में नहीं आते? "क्यों जीजी, रॉबी को इधर तो कभी आपके साथ नहीं देखा। कुमार ने भी कभी एक दिन भी याद नहीं किया। वर्षों का प्रेम-सम्बन्ध क्या इस तरह तोड़ दिया जा सकता है?"

"रावी इधर कभी नहीं आएगा। तू जानती नहीं। वह कहीं टिकता है! वह तो खुश हुआ होगा कि मैं उसके गले का जंजाल न बनकर खुद ही चली आई। बचपन से उसका यही हाल है पर उसका प्रसाद लेकर मैं जीवित रह सकूंगी शिक्की! कुमार के प्रति अपने संपूर्ण आत्म-समर्पण से युक्त प्रणय की सुखद स्मृतियां मुझे मार डालतीं। पीटर और मेरी के लिए बार-बार कुमार के चरणों पर गिरी हूं और ठुकराई गई हूं। अब अपने पाप को पालने के लिए प्रभु ईशूमसीह से प्रार्थना करूंगी। उसके कदमों को छोड़कर अब आदमी की पूजा नहीं करूंगी।"

शकुन्तला ने शिशु को कीर्ति की गोद में लिटा दिया और देखा कि साड़ी के छोर से कीर्ति ने अपनी आंखों के दोनों छोर सुखा लिए हैं। एक लम्बी सांस लेकर वह बच्चे के लिए दूध लेने उठ गई।

शकुन्तला उस रात को कीर्ति के साथ ही सोई। नीली आंखों वाला वह प्यारा बच्चा उनके बीच में सोया हुआ था। सोने से पहले उन सबने मिलकर प्रार्थना की थी। अपने लिए, सारी दुनिया के लिए उन्होंने ईशूमसीह से सलामती की प्रार्थना की थी। बच्चे को मां ने अपने सीने से चिपका लिया था और बार-बार उसकी छाती से हूक-सी उठती थी। शकुन्तला सोचती, प्रभु अपने प्यारों को इतने संकट में क्यों डाल देता है! और सोचते-सोचते न जाने कब उसकी आंखें लग गई। वह सारी रात ही जैसे स्वप्नों का समारोह बन गई थी। उसने देखा कि वह दिवाकर के साथ सो रही है। नीली आंखों वाला बच्चा उनके बीच में है। शान्ता उस बच्चे को छीनकर ले गई है और फिर बच्चे को लेकर शान्ता जंगल की तरफ भागती जाती है। शकुन्तला भी उसके पीछे भागती है और एक बड़े अजगर के खुले मुंह में प्रवेश करते-करते वह चीख उठी है। नींद आती नहीं है। उठकर वह बाड़े पर आ गई है। गुलाबी जाड़ा पड़ रहा है। आसमान में हलका गर्जन हो रहा है। तीन

वायुयान एक के बाद दूसरा, ज़मीन से उठते हैं और तीन दिशाओं में मुड़कर काले क्षितिजों में खो गए हैं। जो वायुयान उत्तर को गया है, उसने एक लम्बा चक्कर लगाया था। शकुन्तला ने सोचा : अगर आज मैं दिवाकर को पत्र लिखती तो कल प्रातःकाल यह जहाज़ उसे उनके हाथों में पहुंचा देता ! फिर क्या होता···फिर क्या होता !

कौन जानता है क्या होता ! आदमी कुछ नहीं जान सकता। "हे प्रभु, मुझे धैर्य प्रदान कर। मेरे समस्त संदेहों का परिहार कर। मुझमें अपनी दया के प्रति आस्था पैदा कर। मैं निर्बल और अज्ञ तेरी दया के बिना मन का संताप सह रही हूं। मुझे शांति प्रदान कर !"

पश्चिम से एक ठंडी हवा का झोंका आया। यूकलिप्टस के ऊंचे वृक्ष से एक डाल चटक कर उसके सिर पर आ लगी। उसने विचारों की नींद से जागकर देखा कि गली सुनसान है। कहीं ज़रा-सा खटका-सा भी नहीं है। सामने के मकान में वही खिड़की खुली पड़ी है, दिवाकर के साथ बीतने वाले वे सुख और उल्लास के क्षण चलचित्र के समान उसके मस्तिष्क में घूमने लगे हैं। शकुन्तला पीड़ा-भरी याद लेकर लौट आई है। कीर्ति और नीली आंखों वाले शिशु की करवट में अब वह नहीं सो पाई। शीतल पाटी लेकर और दोनों हाथ आंखों पर ढक कर प्रभु ईशूमसीह के चित्र के सामने वह दो-ज़ानू होकर बैठ गई है।

आज की रात मुक्ति की रात थी। शकुन्तला अपने भविष्य का पथ नहीं खोज सकी थी, पर जैसे उसे प्रकाश मिल गया था। आज सुबह वह उठी तो सीधे पिता के पास पहुंच गई। जोज़ेफ साहब पैर-पर-पैर रखे सदैव की भांति विचार में निमग्न थे। शकुन्तला ने प्रातःकालीन अभ्यर्थना से उन का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। एक फीकी मुस्कराहट उनके चेहरे पर फैल गई। बोले, "तुम कहां रहती हो शकुन !"

"घर में ही तो पापा, आपकी आंखों के सामने ही तो !"

"अरे, पर हमेशा ही क्या ऐसे रहती थीं ? जबलपुर से लौटकर न जाने कैसी हो गई है। हां, बताओ तो क्या हुआ ? विल्किन्स की मदर और सिस्टर अच्छे हैं। ओह, बड़ा शान का आदमी था उसका बाप ! विल्किन्स का बड़ा पुराना घर है बेटा !"

"पर मैं पापा······मैं जबलपुर नहीं जाऊंगी।"

"क्यों, क्या बात है ! तुम्हें तो विल्किन्स पसंद था। कितना अच्छा

लड़का है। सुख के सभी सामान उस घर में हैं।"

"नहीं पापा, मुझे विल्किन्स पसंद नहीं हैं। अगर उन्होंने आप से ऐसा कहा तो उन्होंने मुझे कतई गलत समझा !"

"अच्छा, मैं तुम्हारी मां को बुलाता हूं। तुम्हारे दिमाग में जो फितूर पैदा हो गया है, उसे दूर तो करना ही होगा।"

उनके संकेत से मां और बहिन दोनों साथ ही चली आईं।

मि० जोजेफ ने कहा, "लो, तुम्हारी इस लाड़ली ने विल्किन्स का रिश्ता नामंजूर कर दिया।"

"कर दिया तो ठीक है। अब अपने-आप देख लेगी। नई रोशनी की लड़कियां मां-बाप की मदद की मोहताज नहीं होतीं !" मां ने कहा।

"मैंने ऐसा क्या किया मम्मी, कि ऐसा कहने लगी हो !"

"क्या किया है, सो तो सारा मोहल्ला जानता है। तूने घर की सारी प्रतिष्ठा को राख कर दिया, लड़की। मोहल्ले में मेरा मुंह अब किसी के सामने नहीं पड़ता। फेरी लगाने वालियां तक मेरा अपमान कर जाती हैं !"

अपमान से शकुन्तला की आंखें भर आईं। बोली, "फिर मैं क्या करूं मम्मी, जो आपके सामाजिक सम्मान की क्षतिपूर्ति हो जाय ?"

"लो, अब भी पूछने को बाकी है। परीक्षा हो चुकी, नतीजा निकल जाय तो बस शादी करके अपने घर जाओ। विल्किन्स कितना अच्छा छोकरा है। ही इज ए परफैक्ट क्रिश्चियन।"

इस अन्तिम उक्ति पर मि० जोजेफ ने अपनी बीवी की ओर आंख फाड़ कर देखा। कीर्ति ने विस्मय से और शकुन्तला ने दया की दृष्टि से मां को देखा, क्योंकि उस परिवार में एक वही थी जो अपने चालीस वर्ष के विवाहित जीवन में एक बार भी अपने क्रिश्चियन होने का सबूत नहीं दे सकी थी। घर से अगर लड़कियां कहीं चली जातीं तो रविवार का सत्संग समाप्त हो जाता। मि० जोजेफ एक वारनूख और धार्मिक किस्म के आदमी थे और उनकी बीवी, जिनकी पिछली पीढ़ी ने ईसाइयत को गले लगाया था, अभी क्रिश्चियन परिवारों के तौर-तरीकों की अभ्यस्त नहीं हुई थीं। आज भी वह हिन्दू-पर्वों पर अपने हिन्दू मित्र परिवारों के घर जाती थीं और उनके संबंधों में राम और कृष्ण का स्थान ज्यों का त्यों बना था।

अब की बार कीर्ति बोली, "शिक्की, जो कहना है, कह क्यों नहीं देती ? सारे जानती है कि आदमी अच्छा है, कोई बुराई है तो कहो।"

"मम्मी उसे नहीं जानती। वह सच्चे ईसाई तो क्या, झूठे ईसाई भी न हीं हैं। उनका ईमान है पैसा"'और उनका काम है""" शकुन्तला के मन में आया कि वह सब-कुछ कह दे जो उसने अपनी आंखों से देखा है। पर बात मुंह पर आकर रह गई। क्योंकि अगर वह कह दी जाती तो उसका प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता बन जाती और फिर उसे शायद वही प्रमाण अपने लिए सुनने को मिल जाता क्योंकि वह जानती है कि मां की अकल काम करे या न करे, जबान खूब काम करती है, इसलिए वह चुप रह गई।

मि० जोजेफ ने पत्नी को संकेत करते हुए कहा, "बातें शांति से की जाती हैं कि इस तरह तमाशा बनाकर! सोचने दो लड़की को!"

इस पर श्रीमती जोजेफ चोट खाकर बोलीं, "मैं अच्छी तरह जानती हूं—तुम्हें और तुम्हारी औलाद को। मुझे बुलाया क्यों गया? कोई कही मुंह काला करे—मेरी बला से!" और वह इतना कहकर उठ गई। मर्माहत शकुन्तला बैठी रह गई—कसमसाती।

आज प्रातःकाल नाश्ता भी उसने नहीं लिया। बार-बार उसके मन में मा के मुह से निकलने वाले लांछन छा जाते और उसे लगता कि उस घर में अब उसके लिए सम्मानपूर्ण स्थान नही रह गया है। जाना पड़ेगा। मा-बाप अब उसे सहन नहीं कर सकते। शादी का तो बहाना है। असली बात तो उससे छुट्टी पाने की है—वह चाहे पति के घर जाकर हो या कहीं भी मुंह काला करके। क्या सचमुच दिवाकर से प्रेम करके उसने अपना मुह काला किया है! उसे याद आया—उसके स्पर्श में कितनी शांति थी। उसकी आंखों मे एक स्वप्न था और अनेक बार वह केवल उसकी आखों में ही खो गई है। वह कितना कम बोलता था। बस होठों का फड़कना ही उसकी भाषा थी और चेहरे की व्यंजना ही उसका शृंगार था। काश, उसके विशाल वक्ष पर सिर रखकर हमेशा के लिए सो रहने के लिए नींद ही उसे आ जाती। उसे मैंने अपनी कायरता से खो दिया और अपनी बहादुरी से शान्ता ले गई। क्या जीवन मे एक बार और वह संयोग नही बनेगा? उसने निश्चय किया कि एक बार ब्रेटी के पास जाकर वह मन्त्रणा करेगी। और फिर निश्चय ही वह अपने भविष्य का पथ निश्चित कर लेगी।

मिस ब्रेटी सग मिस शकुन्तला जोजेफ की दो वर्ष से सहपाठिन थी। कालिज में दोनों दो प्रकार से मशहूर थी—शकुन्तला अपने सगीत, वाग्मिता और धार्मिकता के लिए और ब्रेटी अपने उन्मुक्त हास्य और डान्स—

के लिए। वह अभिनेत्री भी थी और वार्षिकोत्सव के अवसर पर उसने 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' में पोर्शिया की भूमिका इतनी सुन्दर निभाई थी कि शकुन्तला ने गद्‌गद होकर उसे छाती से लगा लिया था। उस दिन से वे दोनों कक्षा में भी साथ-साथ बैठतीं, और कभी-कभी ग्रेटी कालिज जाते समय उसे अपनी गाड़ी में भी लेती—अगर उसका बड़ा भाई विलियम घर पर होता।

परंतु विलियम का घर पर रहना बहुधा होता नहीं था। वह एक कार्निवाल में काम करता था, कार्निवाल के साथ ही उसे घर से बाहर रहना पड़ता। पर कार्निवाल में उसे शारीरिक शक्ति के प्रदर्शन और मांस-पेशियों पर असाधारण अधिकार का परिचय देते समय यह जानना मुश्किल होता कि यह वही विलियम है जिसने लड़कियों जैसी सरल मुस्कराहट के साथ इस तरह हाथ मिलाया था कि जैसे वह मोम का बना हाथ हो। कार्निवाल देखते समय ग्रेटी ने एक बार कहा था, "शिक्की, माई ब्रदर इज एन आइडियल आव यूथ।" और सचमुच शकुन्तला उससे इतनी प्रभावित हुई कि अगले दिन बधाई देने के लिए ग्रेटी के साथ गई थी।

उस बधाई देने के दिन की बात शकुन्तला को आज तक याद है। जब शकुन्तला ग्रेटी के घर पहुंची थी तो उसी समय शहर के एस० पी० मि० डिकिंसन की कार भी उनके दरवाज़े पर आकर रुकी थी, उनकी लड़की मेरी डिकिंसन विलियम के लिए एक हार लाई थी, जिसमें केवल शुभकामनाएं ही नहीं थीं, उन फूलों में मेरी का दिल भी था। अपराह्णकालीन जलपान करते समय ग्रेटी के साथ उसने भी यह समझ लिया था कि उन दोनों का आत्मिक परिणय हो चुका है। उसके बाद विलियम से मिलने का विचार भी शकुन्तला के मन में कभी नहीं आया।

इसके कुछ दिन ही बाद विलियम मद्रास चला गया और मि० डिकिंसन की बदली कहीं दूसरी जगह हो गई। शकुन्तला उस रोमान्स को, दिलचस्पी के बावजूद अधिक निकट से देख नहीं पाई। गाहे-बगाहे ग्रेटी से पूछकर ही संतोष कर लेती थी। ग्रेटी को अपने भाई और उसकी प्रेमिका के संबंधों की प्रगति देखने का स्वयं अवकाश कहां था? कितने पत्र उसके अपने पास आते थे और इतने गुमनाम तोहफे कि वह बहुधा परेशान रहती और अक्सर शकुन्तला से उन अज्ञात प्रेमियों की कृपा से मुक्ति पाने का उपाय पूछती रहती। लेकिन शकुन्तला उन पत्रों और तोहफों को देखकर सिवा हंसने के और कोई भी उपाय उसे कभी भी बता नहीं सकी।

शकुन्तला को ब्रेटी के चरित्र पर निष्ठा थी। वह समझती थी कि ब्रेटी आने वाले हिन्दुस्तान की आदर्श युवती है। वह स्वस्थ है, बौद्धिक है और कलाकार है। रात-दिन अनेक निवेदकों के प्रणय-प्रस्तावों के बावजूद वह खजूर की पत्ती की तरह तीखी और सख्त थी। दिवाकर की पहले दिन की हरकत भी उसने उसी दिन ब्रेटी को बतला दी थी और फिर काफी दिन तक रोज़ ही उस रोमांस की प्रगति की चर्चा दोनों सखियां परस्पर करती थीं। जबलपुर जाते समय भी शकुन्तला ब्रेटी से दिवाकर का ध्यान रखने लिए कह गई थी, हालांकि अपनी निजी व्यस्तता में ब्रेटी उसकी बात को बिल्कुल ही भूल गई थी और जब आवश्यकता पड़ी तो वह जबलपुर निस्संकोच जा पहुंची, और वहां विल्किन्स से कितनी नाटकीयता के साथ उसे मुक्त करके ले आई। शकुन्तला को विश्वास था कि उसकी सखी इतनी विषम परिस्थिति में से उसे किसी सरल उपाय से निकाल लेगी, जिसकी वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकती।

आज जब शकुन्तला ब्रेटी की कोठी पर पहुंची तो उसे दरवाज़े पर एक बैरा मिला जिसने उससे परिचय-पत्र मांगा। शकुन्तला को कुछ अजीब-सा लगा, क्योंकि ऐसा आज तक कभी हुआ नहीं था। लेकिन बैरा वह नया था और कर्नल यंग के घर की दुनिया अक्सर बदलती रहती थी। इसलिए उसने किसी भी अप्रत्याशित परिवर्तन की कल्पना में अपना दिमाग फंसाने की अपेक्षा एक कागज़ पर अपना नाम लिखकर देना ही बेहतर समझा।

बैरा उसका नाम-पत्र अंदर ले गया और लौटकर उसे जिस कमरे में ले गया वहां ब्रेटी नहीं थी, श्रीमती यंग थीं, जिन्होंने बड़ी ही मंद मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया। शकुन्तला आंखों में प्रश्न लेकर बैठ गई। वह बोली, "आप कुछ उदास लगती हैं श्रीमती यंग। खैर तो है?" क्योंकि श्रीमती यंग के लिए यूं सामान्यतः एक क्षण भी चुप रहना दुश्वार था।

"हां, भगवान की दया से सब खैरियत है…सिर्फ इतना है कि कर्नल यंग अब दुनिया में नहीं रहे, विलियम अपनी प्रेमिका के साथ [illegible] गया और…और तो सब-कुछ है…"

"हे भगवान! ब्रेटी ने कुछ भी बताया नहीं। [illegible] है [illegible] यंग! हमारे घर में कोई भी इस शोक-समाचार को नहीं [illegible]।"

"ओह, तुम क्यों चिन्ता करती हो मिस [illegible]। [illegible] बनाया हुआ विधान है। अब बात कितनी पुरानी [illegible] है।"

"लेकिन ब्रेटी से जाकर पूछती हूं। इस[illegible]

और मुझे कुछ भी नहीं बताया !" और वह उठने को हुई लेकिन श्रीमती यंग ने उसे जाने नहीं दिया, रोक लिया और कहा कि ग्रेटी एक बहुत ही ज़रूरी काम कर रही है। उससे फारिग होकर स्वयं ही इधर आ जाएगी।"

जब काफी देर होने पर भी ग्रेटी नहीं आई तो शकुन्तला एकदम घबरा उठी। घर का वातावरण एकदम बंद और घुटन-भरा था। उसने श्रीमती यंग के चेहरे की ओर देखा—केवल कुछ ही दिनों में उसमें कितना घोर परिवर्तन आ चुका था। उनकी आंखें जैसे किसी स्वप्न में खो गई थीं। उनके चेहरे पर एक व्यंगपूर्ण मुस्कान थी जिसने शकुन्तला को पहले आर्द्रता का धोखा दे दिया था, पर अब लगता है कि जैसे वह किसी लाश की मुखाकृति पर छाई हुई उस मुद्रा की तरह है जो प्राण-पखेरू उड़ने से पहले बनकर रह गई है और अब कभी बदलेगी नहीं।

शकुन्तला जाने की इजाज़त मांगने लगी, तो भी उन्होंने हमेशा की तरह आज ग्रेटी से बिना मिले ही चले जाने पर कोई व्यग्रता नहीं दिखाई, जैसेकि वह घर उनका नहीं है और वह उस होटल की मैनेजर हैं जोकि मेहमानों के आने और जाने के अवसरों पर एक-सा ही उत्साह दिखाता है। शकुन्तला थोड़ी-सी देर में इतनी थक जाएगी—उसे मालूम न था और जब वह बाहर निकलने के लिए दरवाज़ा खोल रही थी तो जैसे अपनी भावुकता के लिए अपने को धिक्कारने की स्थिति में आ गई थी।

द्वार खोलते ही उसने आश्चर्य से देखा कि ग्रेटी कार के पास खड़ी है और विल्किन्स को विदा करती हुई उसका हाथ चूम रही है। वह देख न ली जाये, इसलिए शकुन्तला खंभे की ओट में खड़ी हो गई और जब विदा करके ग्रेटी लौटी तो शकुन्तला को देखकर एक बार तो सन्न रह गई। लेकिन तत्काल ही उसने अपनी सखी को बांहों में भर लिया, और बोली, "आह, शिक्की ! तुम कितनी हसीन हो···" और हमेशा की तरह उसे चुंबनों से बेहाल कर दिया।

"लेकिन तुमने तो हुस्न का बाज़ार खोल लिया दीखता है। ओह, तुम्हारी प्रतीक्षा करती-करती कितनी थक गई हूं। ग्रेटी, तुम कितनी बेरहम हो कि घर में इतनी बड़ी घटनाएं घट गईं और मुझे कुछ भी नहीं बताया ! इतनी देर तक तुम अजनबी के साथ कैसी बैठी रह सकती हो—मैं कल्पना ही नहीं कर सकती।"

"जानती हो, वह कौन था ?"

"देख लिया है !"

"जानती हो, वह यहां क्यों आया था ? चलो, अंदर चलकर बैठो—गाथा सुनाऊंगी। शिक्की अपनी पुरानी ब्रेटी को भूल जाओ।" और ड्राइंग रूम की मेज से शराब की बोतल और पीने का सामान हटाती हुई वह बोली, "तुम यह देखकर चौंकना मत। देखो मेरी आंखों में ! बिना बोले ये सब-कुछ कह देंगी ?"

शकुन्तला सिहरकर सिमट गई और आंखों में एक प्रश्न लेकर ब्रेटी को इधर-उधर जाते देखती रही। उसकी चाल बदली हुई थी, उसके अंदाज बदले हुए थे और उसको लगा कि वह जैसे बिल्कुल बदल गई है। मेज पर रखा हुआ सामान साफ करते-करते वह फिर बोली, "माफ करना शिक्की, मैं तुमसे मिलने न आ सकी। कैसी बीती घर पर ? क्या दिवाकर की चिट्ठी आई ?"

"सब अच्छी ही बीतती है। अगर इन्सान भगवान पर भरोसा रखे, तो बिगड़ी भी बन जाती है।"

"कहीं बात इससे उल्टी ही तो नहीं है मेरी प्यारी !"

"शराब पीने से बुद्धि उलट जाती होगी। वैसे बात मेरी ठीक है। सदियों से आदमी भगवान पर भरोसा रखकर अपने रास्ते पर बढ़ता आया है।"

"क्या जिस रास्ते पर मैं बढ़ी हूं, वह भगवान का बनाया हुआ नहीं है ? नहीं शिक्की ! भगवान तो धोखा है। सारा जीवन धोखा है, शिक्की ! तुम भगवान की बातें मत करो। तुम्हारे भगवान की तस्वीर बिगड़ जाएगी, प्रिय ! इस घर में अब भगवान के लिए जगह नहीं है।"

"जो बुराई के रास्ते पर चलते हैं, उन्हें भगवान की बातें अच्छी नहीं लगतीं। उन्हें शैतान की ही बातें अच्छी लगती हैं ब्रेटी, पर याद रखना, प्रभु के [illegible]

[illegible]

और सत्पथ दिखाए। प्रभु की सेवा में अपने मन का पाप खोलकर रख दो। प्रभु तुम पर कृपा करेंगे।"

"बस एक शराब की सुनकर ही पाप चढ़ने लगा तुम पर ? अरे [illegible] तो क्या कहोगी, पर पाप का रास्ता आदमी स्वेच्छा में [illegible] शिक्की ! कोई कह भी कैसे सकता है कि मैंने पाप किया

का स्वयं क्या दोष, जिसे पाप करने पर मजबूर कर दिया जाता है ? मेरी सुनोगी तो तुम प्रार्थना-सभाओं में सुनी हुई सभी बातें भूल जाओगी !"

और ग्रेटी ने अपनी कहानी कहना शुरू कर दी।

तुम जानती हो जब तक सम्मानपूर्वक जीने का रास्ता खुला रहा, मैंने बहुत-से आकर्षणों पर विजय पाई और हंसती-खेलती दुनिया के झूठे भुलावों को अस्वीकार करती जंगली पक्षी की तरह तुम्हारे सामने जीती रही। पर एक दिन अकस्मात् सिर से पिता का साया उठ गया। उनकी विरासत तो मिली, पर उनके साथ दायित्व भी मिले। फादर का क्रिमेशन करके जब हम ने अपनी पूंजी को देखा तो हमारे पास केवल दो हज़ार रुपया था। फादर के मरने का समाचार सुनकर मि० फिडेन्सन ने विलियम का अपनी लड़की से मिलना-जुलना बंद कर दिया। एक दिन विलियम बहुत घबराया हुआ आया और कहने लगा, ग्रेटी, मुझे ५ हज़ार रुपए चाहिए। हम दोनों विलायत जा रहे हैं। मैंने कहा, 'कहां है रुपया ? अभी तो शोक के दिन भी पूरे नहीं हुए विलियम ! तुम्हें शर्म आनी चाहिए—ऐसा प्रस्ताव करते हुए ! —तो विलियम का मुंह सूख गया। जाते हुए, कहने लगा, 'भगवान ने सब तरह से बर्बाद कर डाला हमें !' उसकी हारी हुई बातें सुनकर मैंने भी तुम्हारी ही तरह उसे भगवान पर भरोसा रखने के लिए कहा था। पर उसके दिल में जैसे कोई आग सुलग रही थी, वह पागल की तरह बड़बड़ा रहा था, 'ओह, भगवान ने सब-कुछ एक प्रहार से समाप्त कर दिया। क्या है जीने में ग्रेटी, जब इन्सान अपनी खुशी से न जी सके ?' उसके मुंह पर मैंने इतनी गहरी उदासी कभी नहीं देखी थी। मुझे तरस आ गया उस पर। मैं ने कहा, 'विलियम, अगर पांच हज़ार रुपया मिल जाय तो ?' वह बोला, 'ग्रेटी, माई डीयर, मुझको ज़िंदगी मिल जाएगी। मेरी को लेकर मैं बाहर चला जाऊंगा। इसके बग़ैर मेरी को तुम्हारा विलियम नहीं पा सकता…कभी नहीं पा सकता। मैं यूरोप जाने का प्रबन्ध कर चुका था, ग्रेटी, पर सिर से बाप की सरपरस्ती उठ गई !' मेरा मन करुणा से भर गया। उस क्षण मुझे लगा कि मैं ही उसकी बाप हूं—मैं ही उसकी मां हूं। मैंने विलियम से कहा कहा कि शाम तक उसे रुपया मिल जाएगा। कह तो दिया, पर सोचती रही, रुपया कैसे मिल जाएगा। फिर सहसा याद आई कि एक बार बालकृष्ण ने भी मुझसे विलायत भाग चलने की बात कही थी। बालकृष्ण को तुमने देखा है जिसकी ! और बैंक-बैलेंस भी अच्छा-खासा बताता था। बालकृष्ण हालांकि

दूसरे दिलफेंक लोगों की तरह ही मेरे संपर्क में आया था, पर सोचा था कि अगर जब साहब ने अपने लड़के को विवाह करने की इजाज़त दे दी तो विवाह मैं बालकृष्ण से ही करूंगी। इसलिए नृत्य करते समय, तैरने समय या प्यानो सीखने समय कभी भी मैंने बालकृष्ण को चुंबन और आलिंगन से आगे नहीं बढ़ने दिया था। उसका प्रणय-निवेदन सुनकर मैं सिहर-सिहर जाती, पर मर्यादा कभी नहीं लांघी। आज उसी बालकृष्ण की मुझे याद आई और मन में हजार विकल्प उभरते-डूबते रहे, पर विलियम के संसार को उजड़ते देखना मेरे लिए मुश्किल था। बालकृष्ण ने रुपए देने का वायदा कर लिया, लेकिन उसी दिन शाम को क्लब में जब मैं उससे मिली तो उसके तौर-तरीके बदले नजर आए। उसने शराब पी रखी थी और चेक मुट्ठी में दबाए हुए था। सबके सामने, वह अजीब-सी हरकतें करता जाता था। हालांकि क्लब में उसकी ये हरकतें देखने की किसी को फुरसत नहीं थी, पर वह मेरी अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न था। मैंने कहा, 'चलो अन्दर बैठें।' वह अन्दर आ गया। वहां फिर वही भोंडा निवेदन था। मैंने कहा, 'कृष्ण आज इतनी व्यग्रता क्यों दिखा रहे हो? एक दिन जब विवाह-सूत्र में बंधकर हम एक होंगे, उस दिन के लिए कुछ भी बाकी नहीं छोड़ोगे?' तो वह ढिठाई के साथ मुस्कराने लगा, और बोला, 'अच्छा बेटी, तुम मेरे साथ आज पियो। बस, केवल पीयो।' मैं पीने लगी। पीती गई, मर्यादा भूल गई। शील भूल गई। सामने बालकृष्ण रह गया। पुरुष, प्रेमी, कामुक और शराब के नशे में झूमता हुआ और उस नशे में मैं डूब गई। चेक तो मिल गया, पर बालकृष्ण खो गया। विलियम विलायत चला गया। पर अब हर रोज़ बालकृष्ण का एक ही तकाज़ा रहने लगा। प्रारम्भ में सोचती रही कि जब एक दिन उससे विवाह ही करना है तो वह करे, जो उसकी मर्जी हो और मैं डूबती गई और एक दिन गहरे समुन्दर में डुबोकर बालकृष्ण ने मेरा साथ छोड़ दिया। फिर एक दिन मद्रास से उसकी चिट्ठी आई जिसमें पारिवारिक झंझटों को सामने रखते हुए उसने शादी के लिए असमर्थता प्रकट की थी। मैंने एक बहुत सख्त चिट्ठी उसे लिखी। अपने प्रेम की वकालत का उत्तर मिला, 'तुम बाज़ार-भाव से बहुत पुरस्कार पा चुकी हो, क्या उतना ही काफी नहीं है?' उस समय मन में आया कि अगर बालकृष्ण सामने पड़ जाय तो उसके सीने को चीरकर देखूं जिस पर लिटाकर उसने मुझे खूबसूरत भुलावे दिए थे और आज मुझे वेश्या बना-कर छोड़ दिया था कि वह दिल कैसा है। यह सदमा बाप के मरने से भी

बड़ा सदमा था, पर मेरे इस परिवर्तन का किसी को भी पता नहीं लगा। सबने समझा—बाप के मरने का ग़म है। उस घोर मानसिक पीड़ा को सहन करती हुई मैं सोचती—दुनिया के रंगों को। दोष बालकृष्ण का नहीं है—दोष मेरा है। मेरे दुर्भाग्य का दोष है। इस समाज-विधान का दोष है। उस भगवान का दोष है जो इसे एक दिन में गारत करके दूसरी दुनिया नहीं बसाता। इस तरह सोचते-सोचते मन से ग्लानि निकल गई। समय गहरे-से गहरे ज़ख्म को भी भर देता है। फिर तो कई बालकृष्ण आए। अपनी उजरत देकर उसी हिसाब से मिस ब्रेटी यंग का पतित्व ग्रहण करके चले गए। पहले मन को चुभता था। अब नहीं चुभता। कभी होश आता है, तो शराब सहायता कर देती है और आदमी में खुद क्या कम शराब है! जवानी में यूं भी पीने की जरूरत कहां होती है!"

शकुन्तला ने दिल पर सिल रखकर वह कहानी सुनी थी। सुनते-सुनते वह कई बार घृणा से सिहर उठी थी और कई बार उसके मन ने चाहा कि ब्रेटी का सिर अपनी गोद में लेकर उसे दुलारे। पर वह इतनी स्तंभित थी कि कुछ भी नहीं कर सकी। उसने पूछा, "यह सब कब हुआ ब्रेटी? तुमने कभी बताया भी नहीं!"

"उसी समय, जब मेरी शिक्की प्रेम के पालने में झूल रही थी।"

"ब्रेटी, लेकिन अपने दोस्तों से परामर्श लेकर क्या जीवन-पथ निर्धारित करने में कोई बुराई है? क्या जीवन-भर तुम इसी तरह का जीवन बिताने का फैसला कर चुकी हो?"

"नहीं, पर और क्या रास्ता है मेरी प्यारी। तुम मुझे अब घृणा करो शिक्की।"

"तुम्हें अब भी नशा हो रहा है ब्रेटी। अपने नहीं तो मेरे कुल-शील का ध्यान रख कर बातें करो। भूल किससे नहीं होती? पर भूल का सुधार हो सकता है।"

"किसके लिए अच्छी बनूं! मां पागल हो गई, प्रेमी विश्वासघाती निकला। भाई भगोड़ा और दुनिया क्रूर…आंखों में हिंसा भरे हुए निकली… किसके लिए…आखिर किसके लिए अच्छी बनूं?"

"अपने अंदर से प्रतिहिंसा निकाल दो। कितने गुण हैं तुममें। सम्मानपूर्ण जीवन बिताने भर के लिए क्या इतनी संपत्ति काफी नहीं है?"

"क्यों केवल मुझे ही क्यों कहती हो? ये तुम्हारे चारों तरफ जो रोज

लूटमार, हिंसा और शोषण होता है, क्या कभी किसी ज़ालिम से कुछ कहने का साहस हुआ है तुम्हारा ? दिन को रोशनी में एक गरीब को उसकी अस्मत, कुल-शील, मान-मर्यादा सहित कोई हड़प लेता है। कहीं पत्ता भी नहीं हिलता। बस, ज्यादा कहने पर मजबूर मत करो शिक्की ! अगर मुझ से नफरत हो गई है तो कभी तुम्हें मुंह नहीं दिखाऊंगी।"

शकुन्तला ने ग्रेटी का मुंह चूम लिया, "ग्रेटी, मेरी बहिन !" उस क्षण ग्रेटी फूट-फूटकर रो उठी थी। न जाने कितनी पीड़ा उसके अंतर में छिपी हुई थी। पति के मरने से मां प्रायः पागल हो गई थी और अच्छे-बुरे का विवेक उसमें नहीं था। आज पहली बार उसके ज़ख्म को सहलाया गया था। उसके आंसुओं का वेग रुकता ही नहीं था। वह सिसकती हुई बोली "ज़िन्दगी के कितने सुहावने सपने बनाए थे शिक्की, सब-कुछ बिस्मार हो गया।"

"अभी समय है ग्रेटी। अभी बहुत समय है ! हम-तुम मिलकर रास्ता निकालेंगे। अरे, मैं तो तुम्हीं से अपनी उलझन का कोई उपाय पूछने आई थी पगली !" शकुन्तला ने कहा।

"तुम मुझे बचा लो शिक्की बहिन ! नहीं तो दुनिया की आग मुझे भस्म कर देगी···मैं असमर्थ और असहाय एक गिरी हुई आत्मा हूं—बिलकुल बेसहारा !"

"नहीं तुम असमर्थ और असहाय नहीं हो ग्रेटी ! तुम अपनी वास्तविक शक्ति को भूल गई हो। तुम समस्त स्त्री-जाति की शक्ति को भूल गई हो ग्रेटी। तुम अकेली नहीं हो···तुम्हारी शिक्की तुम्हारे साथ है····"

शकुन्तला जब उठी तो उसकी शिराओं में करुणा और साहस—दोनों का अद्‌भुत संचार हो रहा था। दीवार में लगे आदम-कद आईने के सामने खड़े होकर उसने देखा कि उसके चेहरे पर एक अजीब भाव बन गया है। उसने अपनी साड़ी की चुन्नटें ठीक कीं और पल्ले को सीने पर सटाते हुए कमर में कसकर बांधने लगी। उसकी सारी देह कसमसा रही थी। एक अजीब भाव था जो उसके मन के लिए बिलकुल अजनबी था। वह ग्रेटी के साथ बाहर चली। विदा लेकर फिर शीघ्र आने के लिए और उस पथ पर एक भी कदम आगे न बढ़ने का वचन लेती हुई। बढ़ते-बढ़ते सहसा उसके कदम उस कमरे की ओर बढ़ गए जहां मिसेज़ यंग अभी तक बैठी थीं—दीवार पर नज़रें गड़ाए। शकुन्तला को देखकर उन्होंने वही नज़र

र घुमा दी। शकुन्तला चुपचाप खड़ी थी। एक अजीब-सी हिलोर उसके मन में उठी और उसकी आंखों से आंसुओं की धारा वह चली। मिसेज दंग कपकाकर खड़ी हो गई और उसके आंसुओं को पोंछती हुई बोलीं, "क्या हुआ मेरी बच्ची? रोती क्यों हो?" और उसी क्षण वे दोनों प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हो गईं। ग्रेटी खड़ी थी और आंखों में भरे हुए सुन्दर भाव को लेकर वह जीवन और मरण के इस महामिलन को देख रही थी।

अब शकुन्तला सड़क पर आ गई थी, पर उसके मन का भाव बदला नहीं था। उसे जैसे किसी ने मंत्र-शक्ति से मुग्ध करके छोड़ दिया था। काफी देर तक वह सड़क पर चलती रही और अपनी कमर में कसे हुए पल्ले को और भी कसती रही।

जब भीड़ बढ़ी, तब आंख खोलकर चलने की धृष्ट चेतावनी उसके कानों में पड़ी। जब चिलचिलाती धूप उसके सिर पर जलने लगी तो उसे पता चला कि वह शकुन्तला है—मि० जोज़ेफ की लड़की जो अपनी सहेली से मिलने आई थी—जिसका प्रेमी उसे असहाय छोड़कर चला गया था। उसे अपना रास्ता खोजना था और वह दूसरे का पथ-प्रदर्शन करनेका गुरु-गंभीर दायित्व अपने कंधों पर लेकर वापस आ रही है।

सचमुच आदमी कितना बेबस है! शकुन्तला सोचती जाती है। आदमी जान-बूझकर गुनाह के रास्ते पर नहीं चलता! और गुनाह से बचने का क्या रास्ता है? प्रभु ने बताया है कि मेरे सामने बिना झिझक के अपने सब पाप कह दो और निर्मल हृदय से प्रायश्चित्त करो। क्या उससे पाप समाप्त हो जाता है? पापी का उद्धार भले ही हो, पाप का परिहार उससे कैसे होगा? उसने देखा—चारों ओर की दुनिया किस तरह पाप में जकड़ी हुई है। गिरजाघरों और मंदिरों की सहस्रों घंटियां उसके मन में बज उठी थीं और उसे लगा कि पाप के अंदर-ही-अंदर जेहाद करने की आवाज उसमें डूब रही है! उसने देखा—बाजार में लोग विभिन्न प्रकार की दूकानें सजाकर बैठे हैं—मुनाफे के लिए! मुनाफे के लिए वे झूठ बोलते हैं, फरेब करते हैं, विश्वास-घात करते हैं। यह सब अपनी आत्मा को बेचकर ही तो होता है। फिर ग्रेटी ने भी अपनी कला बेची, शरीर बेचा। वह पापिन कैसे हुई! इस निष्कर्ष पर पहुंच वह स्वयं सिहर उठती है।

विचारों की तेज धार उमड़ती आ रही थी। उसे लगा कि वे सब ऊंची-ऊंची इमारतें इस तेज धार से विध्वस्त होती जा रही हैं। सारी दुनिया किस

तरह बेबस है, तड़प रही है, रौंदी जा रही है ! कोई आवाज उसके खिलाफ नहीं उठती । प्रभु किसी के हृदय में पवित्र अग्नि का संचार नहीं करते ।

अब उसकी पीड़ा केवल अपनी ही नहीं थी । उसमें कीर्ति की पीड़ा भी थी, ग्रेटी की, दिवाकर की और उन जैसे न जाने कितनों की पीड़ा थी ! अब उसमें भय नहीं था । साहस की एक उद्दाम लहर उसके दिल के कगारों को झकझोर रही थी ! उसकी सुकुमारता बीत रही थी, उसका यौवन निर्लिंग हो रहा था, वह अब नारी नहीं थी—वह शक्ति की प्रतीक थी—जो चमकना चाहती थी, जो फटना चाहती थी, जो किसी के चरणों पर न्यौछावर न होकर जीवन की परिपूर्णता के लिए भटकने वाली भेड़ नहीं थी, स्वयं उस विराट् शक्ति का एक अंग थी, जिसकी महिमा उसने प्रार्थनाओं में अपने मधुर कंठ से गाई थी—जो आज किसी अज्ञात दिशा से आने वाली विप्लवकारी शंख-ध्वनि के समान उसके कर्ण-कुहरों पर बज रही थी ।

शकुन्तला अब घर पहुंच गई थी। दोमंजिले पर उसका मंझला भाई खड़ा था। पूरी तेज़ी से सुबह का प्रखर सूरज उसके सिर पर चमक रहा था और वह उस फटी हुई पतंग को गौर से देख रहा था जिसकी डोर बिजली के तार में उलझ गई थी और खपरैल में अटक कर जो अजीब तरह से फड़फड़ा रही थी। शकुन्तला को आते देखकर भी वह वैसे-का-वैसा ही खड़ा रहा और जब सुनसान घर की खामोशी से वह बौखलाने लगी थी तो उसने पीड़ा-भरे स्वर से जार्ज को पुकार कर कहा "कहां चले गए सब-के-सब, जार्ज !"

जार्ज ने उत्तर दिया कि सभी लोग प्रवचन में गये हैं और शिकायत की कि कीर्ति जीजी हमेशा टिन्नी को उसके ऊपर छोड़कर चली जाती हैं। शकुन्तला ने ऊपर जाकर देखा कि नीली आंखों वाला टिन्नी पालने में सो रहा है। उसे कीर्ति पर क्रोध हो आया—उसकी सोई वासनाएं फिर जाग उठी हैं और कीर्ति को लेकर अनेक प्रकार के अनुमान लगाते हुए ही वह जार्ज से बोली, "तुम भी प्रवचन में जाना चाहते थे ?"

जार्ज ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप जंगले पर जाकर खड़ा हो गया। शकुन्तला के अन्दर जो विद्रोह का भाव उठा था, वह अभी विलीन नहीं हुआ था। वह बार-बार आवेश में आकर कमरे से बाहर निकलती और द्वार पर आकर फिर वापस लौट आती। उसका चेहरा तमतमा रहा था और ताह-सिकता के संचार से उसकी कोमल, चिकनी और कांवर की तरह लचकने वाली देह इस तरह तन गई थी कि जार्ज का साहस उसके सामने अपनी क्रोध-युक्त मुखाकृति को लेकर अधिक देर तक डटे रहने का न हुआ और वह चुप-चाप न जाने कब नीचे खिसक गया। अब वह अकेली थी। पालने में नीली आंखों वाला बेबी करवट बदल-बदलकर सो जाता था। सामने के मकान में खिड़की खुली पड़ी थी। शकुन्तला ने उठकर अपनी खिड़की बंद कर दी और पर्दे चढ़ा दिए। पालने से सिर टिकाकर वह बैठ गई। बहुत देर तक कीर्ति के बारे में और बेटी के जीवन के चमत्कारिक परिवर्तन पर विचार वह करती

रही और न जाने उसे कब ऊंघ आ गई।

कीर्ति ने जब आकर उसे उठाया तो दोपहर बीत चुकी थी। शिशु को वह पहले ही उठाकर ले गई थी लेकिन उसने स्वयं अभी तक कपड़े नहीं बदले थे। उसने धानी रंग की साड़ी पहनी हुई थी और उसके परिवेष्ठन में जो सौष्ठव और स्फूर्ति झलकती थी; उसने कीर्ति के व्यक्तित्व को आज से दस वर्ष पहले की ताजगी फिर से प्रदान कर दी थी। कीर्ति ने टिन्नी को गोद में रखा था और वह बार-बार उसे चूम रही थी। बच्चा उसकी लंबी वेणी को अपने गले में नागफांस बनाकर घबराने लगा था और कीर्ति खिल-खिला कर हंसती जाती थी। शकुन्तला को लगा कि जैसे किसी पहाड़ी झरने के निकट निर्जन में उगा हुआ चमेली का वृक्ष मानवी-रूप धारण करके उसके सामने खड़ा हो गया है। अपने विक्षोभ को कीर्ति पर उड़ेलकर उस छवि को भंग करने का साहस शकुन्तला को नहीं आ सका और उसके अंतर में घुमड़ता हुआ तूफान ज़ोरों के साथ उसके मानस को झकझोरने लगा।

ब्रेंटी की आंसुओं से भरी आंखें उसकी अपनी आंखों में उतर आई थीं और एक असमर्थता का भाव उसपर छाता जा रहा था। बाहर की इतनी विराट् दुनिया से जूझने के लिए चल खड़ी होने वाली ब्रेंटी और शकुन्तला उसके मानसिक क्षितिज के अनेक कोणों तक पहुंच कर वापस आ चुकी थी। दूसरी ओर सारा घर अपने नैत्यिक कार्यों में व्यस्त था, जीवन का समस्त व्यापार अपनी संपूर्ण उद्दामता के साथ ज्यों-का-त्यों गतिशील था।

पता चला है कि कोई उपदेशक बाहर से आए हैं और सारा घर शाम को फिर प्रवचन सुनने जाएगा। शकुन्तला के कानों में कोई इतनी बड़ी आवाज़ गूंज रही थी कि प्रवचन की आवाज़ वह सुन सकेगी, उसे विश्वास नहीं होता था। लेकिन प्रतिकूल निश्चय के बावजूद शकुन्तला घर से समय से बहुत पहले निकल पड़ी और ब्रेंटी को लेकर प्रार्थना-स्थल पर पहुंच गई।

विभिन्न प्रकार के लोगों की भीड़ में रहकर उसका स्वाभाविक आह्लाद एक बार फिर से लौट आया और ब्रेंटी के हाथ-में-हाथ डालकर वह उस आह्लाद की किरणें इधर-से-उधर बिखेरती रही। प्रवचन करने वाले सज्जन कोई विरक्त पादरी न थे वरन् वे एक युवक प्रवचनकर्त्ता थे जो बड़ी परि-मार्जित भाषा में शील और सौजन्य के साथ भावनाओं को चेहरे की प्रत्येक मांसपेशी में भरकर बोल रहे थे। प्रारंभ में उनकी आंखें सबको देखते हुए भी शायद किसी को नहीं देख पा रही थीं, लेकिन शकुन्तला को लगा कि

धीरे-धीरे उनकी नज़र कभी ब्रेटी पर, और कभी उसपर, मंडराने लगी है। आखिर में उसकी अपनी आंखों में आकर टिक गई है। शकुन्तला को बेचैनी होने लगी और जब युवक साधु ने समय से पूर्व ही प्रवचन समाप्त कर दिया तो श्रोता मुंह-बाये उनकी ओर देखते रह गए। ब्रेटी ने सार्थक दृष्टि से अपनी सहेली की ओर देखा और आंखों-ही-आंखों में इशारा किया। शकुन्तला का चेहरा लाल पड़ गया था और ब्रेटी से कल मिलने का वायदा करके वह भीड़ में बिजली की तरह गायब हो गई।

अब वह घर की राह पर आ गई थी—अकेली और अनेक अनजानी भावनाओं से आक्रांत। वह युवक कितनी भावना से देखता था। प्रभु के सभी भक्तों को छोड़कर वह उसीकी आत्मा में प्रकाश भरने के लिए क्यों अपना आत्मबल लगा रहा था। शकुन्तला को हंसी आ गई। सड़क के दोनों ओर खूबसूरत बंगले अपनी-अपनी दुनिया को अंतर में संजोये जीवन का झीना-झीना प्रकाश बाहर फेंक रहे थे। कहीं-कहीं संगीत की मधुर तान हवा के सुगंधित झोंके के साथ उनके मन में एक पुलक पैदा कर जाती थी। उसने सोचा, वह पादरी सिल्क की लंबी गाउन कितने संवार कर पहिने हुए था और उसके प्रत्येक आंदोलन में कितना मार्दव था। क्या वह वस्तुतः सत्य की खोज कर रहा है? फिर उसने उसके स्थान पर अपने-आपको रखकर देखा। उसकी निगाह जिज्ञासुओं की भीड़ में बैठे दिवाकर की ओर उठ गई। हां, उसने भी उसके चौड़े वक्ष को देखा था, उसकी आंखों के स्वप्न में वह उलझ गई थी। और इससे भी पहिले ब्रेटी के भाई को कार्निवाल में देखकर न जाने कैसा भाव था कि एक भाव उठा और दूसरे भाव के झोंके में आकर बह गया। 'आह, इस भाव में कितना उत्सर्ग है। और इस भाव के बिना किसी के वक्ष में अपना सिर टेक देना, अपने होंठ किसी के होंठों पर रख देना कितना अजीब काम है। और ब्रेटी ने यह किया है—गरीब ब्रेटी!"

एक सर्द आह उसके सीने से निकल गई।

अब वह घर पहुंच चुकी थी। दूसरे लोग बहुत पहले घर पहुंच चुके थे। शकुन्तला लज्जित थी कि पहले चलकर भी वह कितनी देर बाद अपने घर पहुंची है। आश्चर्य तब हुआ जब बड़े कमरे में मेजर कुमार को उसने नीचा मुंह करके बैठे देखा। कुमार ने खाकी रंग का यूनिफार्म पहना हुआ था उसका रोबदार व्यक्तित्व कहीं-से भी ढीला न हुआ था। पहले की अपेक्षा

बस अन्तर केवल इतना था कि उसके चेहरे पर खेलने वाला उन्मुक्त हास्य विषाद में बदल गया था। शकुन्तला को देखकर वह इतना भावुक हो उठा कि उसके मुह से एक भी शब्द नहीं निकला और वह पागलों की तरह उठकर खड़ा हो गया। उसके होंठ फड़ककर रह गए और आखों की कोरें भीग गईं।

शकुन्तला इस सब की कल्पना कर सकती थी, इसलिए मेजर कुमार की उद्विग्नता उसे छू नहीं सकी। शकुन्तला ने अभिवादन के उपरान्त पूछा, "आप कब आए? पीटर और मेरी कहां हैं?" कुमार ने टूटे-फूटे स्वर में कहा कि पीटर अन्दर है और मेरी का नाम लेते हुए उसकी आखों में छल-कता हुआ पानी घना हो गया। जिससे प्रकट था कि मेरी अब दुनिया में नहीं है। और मेजर कुमार इस पश्चात्ताप की आग में झुलस रहे हैं।

अन्दर जाकर शकुन्तला ने देखा कि कीर्ति कोने में पड़ी सुबक-सुबक कर रो रही है। नानी की गोद में एक ओर पीटर और दूसरी ओर नीली आखों वाला बेबी बैठा है'''सभी की आंखों में आंसू थे।

शकुन्तला को सूझ ही न पाया कि क्या कहकर कीर्ति को सांत्वना दे। उसका वह रुदन अपने पत्नीत्व के अपमान होने पर था, पुत्री के वियोग के दुःख में था या उस नारीत्व के अपमान के ऊपर, जिसकी उद्भावना आज सहसा कुमार को देखकर उसके मन में हुई होगी।

इस गुमसुम वातावरण में कोई किसी से बोल नहीं रहा था, लेकिन सभी पर वस्तुस्थिति प्रकट थी। आंसुओं की छाया में एक नए संस्कार का उदय हो रहा था।

सुबह होते-होते कीर्ति का पत्नीत्व फिर जाग उठा था। मेहमान के जाने की तैयारियां हो चुकी थीं। पीटर छोटे बेबी के साथ यात्रा के लिए तैयार हो चुका था और कीर्ति आंसों में आसू लिये विदा हो रही थी। जाते समय कीर्ति ने कहा था, कुछ खबर मिले तो लिखना!

एक ही रात में यह सब क्या हो गया! नीली आंखों वाला बेबी चला गया। घर सूना-सूना लगता था। कीर्ति चली गई, तो लगा, जैसे उसका सहारा उठ गया। उसके मन में जो आत्मविश्वास का उदय हुआ था—आज उसे लगा कि उसमें कीर्ति की ही अव्यक्त प्रेरणा थी। कई दिन तक शकुन्तला पागल-सी घूमती रही।

इन विविध धाराओं से बहकर आने वाले तूफानों से थककर आज जब शकुन्तला ने बहुत दिन से उपेक्षित अपने सितार को [illegible]

झंकार उसे इस तरह लगी कि जैसे तारों में सोई संगीत की आत्मा चीख उठी है। सितार के तारों में झंकार पैदा करके भी वह गा नहीं सकी, क्योंकि ग्रेटी उस युवक पादरी को लेकर उसकी ड्योढ़ी पर आ पहुंची थी। ग्रेटी ने बताया कि युवक पादरी एक नए मिशन की स्थापना करना चाहते हैं जहां कला और संस्कृति के माध्यम से धर्म की शिक्षा दी जा सकेगी। इतना रोमांचकारी समाचार सुनकर शकुन्तला ने तारों में ज़ोर की झंकार पैदा की और तत्काल ग्रेटी के साथ बड़े कमरे में आ गई। कोच पर वह युवक धर्म-पिता बैठे हुए थे। उनकी आंखों में शील संकोच और विनय था, ग्रेटी निस्संकोच उसी कोच पर बैठ गई जहां धर्मपिता बैठे हुए थे। उनकी आंखों में तरलता का भाव बढ़ने लगा। शकुन्तला ने कहा—"आपकी योजना बड़ी सुन्दर है। मेरी बड़ी बहिन कीर्ति, जो आज ही चली गई; यहां होतीं तो वे आपके मिशन की स्थापना में बहुत बड़ी सहायता करतीं। मैं माताजी को बुलाती हूं—आपसे मिलने की बड़ी इच्छुक थीं।"

लेकिन ग्रेटी ने बात काटते हुए कहा, "शिक्की, फादर अभी नागपुर में ही रहेंगे, उनका विचार है कि इस कलाकेन्द्र की स्थापना यहीं की जाए। पहले रूपरेखा पर विचार क्यों न कर लें! मेल-जोल तो स्वाभाविक रूप से होता ही रहेगा।"

तो फादर के चेहरे पर प्रकाश और बढ़ गया। चारों तरफ से बंद रहने पर कमरे में अंधेरा हो गया था। शकुन्तला को न जाने क्या सूझा कि उसे दूर करने के लिए उसने बिजली का स्विच खटका दिया। काफी देर तक युवक पादरी कला और जीवन का संबंध समझाते रहे। उन्होंने कहा, "कला जीवन में सत्य की उद्भावना करने का सबसे शक्तिशाली साधन है। धार्मिक निष्ठा से हम आदमी के मानस में जिस संस्कार का आविष्कार करते हैं—कला उसकी आत्मा है। ईसाई धर्म के प्रचार में हमारे मिशनरियों ने धन और सत्ता के वैभव को प्रमुखता दी। इस कारण धर्म-परिवर्तन की जड़ में आस्था और निष्ठा का जन्म नहीं हुआ। किन्तु लालच और स्वार्थों ने डेरा जमा लिया।"

ग्रेटी इस बात पर टमक उठी। बोली, "लेकिन धर्म तो शरीर है—आत्मा उसमें है ही कहां?"

फादर ने मुस्कराकर कहा, "शरीर में ही आत्मा का निवास होता है, इसलिए शरीर गौण वस्तु नहीं है।"

"इसीलिए मैं कहती हूं कि शरीर की मांग को झुठलाकर आत्मा की भूख के नाम पर हम जो हकीकत से आंखें मूंदते हैं और अपने को निषेधों की शृंखला में जकड़ लेते हैं—यह गलत है। शरीर-धर्म से अलग कोई भी धर्म मनुष्य का धर्म नहीं हो सकता। मैं आपकी अनेक बातों से असहमत होते हुए भी यह बात मान सकती हूं कि कला शरीर की आत्मा है!" ग्रेटी ने उत्साहपूर्वक कहा।

फादर फिर मुस्कराये। "आप जितना कुछ मान लेती हैं, उसे आपकी कृपा मान लेना चाहिए।"

ग्रेटी के चेहरे पर लज्जा उभर आई। शकुन्तला ने देखा कि युवक फादर चतुर हैं और धर्म के प्रति निष्ठा पैदा करने से अधिक आग्रह उनका मित्रभाव बनाये रखने पर है। लेकिन क्या ग्रेटी को इस तरह उन्हें परास्त करना चाहिये! किसी को परास्त करके प्राप्त हुई मैत्री क्या सचमुच मैत्री हो सकती है, लेकिन विचारों की वह शृंखला फादर ने फिर तोड़ दी। उन्होंने कहा, "मिस ग्रेटी यंग और आप यदि चाहें तो धर्म-प्रचार का काम कितने व्यापक रूप से हो सकता है; मैं इसकी कल्पना कर सकता हूं। मिस यंग की कला का परिचय मुझे मिल चुका है, क्या आपके संगीत को सुनने का सौभाग्य मिल सकेगा?"

"इन्हें तो मैं सितार पर से उठाकर ही लाई थी, आपने सुनी नहीं थी झंकार?" ग्रेटी ने तत्काल कहा।

"ठीक है, लेकिन अवसर भी तो हो न!" शकुन्तला सलज्ज बोली।

"सही बात है, मिस यंग समझती हैं कि मेरा आना भी एक अच्छा अवसर हो सकता है न?" फादर ने बात को बदलने के लिए कहा, "मेरे लिए कला की बात शोभा भी नहीं देती। प्रभु के राज्य में जिसका प्रवेश होता है उसे जीवन की हर वस्तु में आध्यात्मिकता के ही दर्शन होते हैं। ईसाई धर्म में सबसे बड़ी बात यही है कि वह बाह्य उपकरणों से प्रेरणा नहीं लेता। प्रभु का सच्चा सेवक अपने अंतर की आवाज को सुनता है। वे आत्माएं धन्य हैं जो अन्तरात्मा में बसे सत्य की साधना करती हैं। ऐंद्रिक वासनाओं की आवाज को सुनने वाला कभी स्वर्ग की सीमा में प्रवेश नहीं पा सकता। मेरे शरीर का धर्म इससे अधिक नहीं कि मैं प्रभु के लिए कष्ट सहूं। आत्म-प्रेम का मार्ग छोड़कर जिसने अपने को अकिंचन बना लिया और प्रभु के [illegible] गया, वही सच्चा साधु है। शरीर की भूख झूठी होती [illegible]

गुण और कर्म, जो प्रभु के लिए नहीं हैं, सुख का साधन नहीं बन सकता। मैं इसीलिए मिस यंग से कहता हूं, आप सत्य की आवाज़ उनके कानों तक पहुंचाएं, जहां वह अभी तक नहीं पहुंची है। मेरा कला-केंद्र केवल प्रभु-वाणी सुनाने का आश्रम होगा।"

जिस तीव्रता से ग्रेटी वातावरण को अभिभूत करना चाहती थी, उसे युवक फादर ने एक ही प्रवचन में झटका दे दिया।

ग्रेटी झिझकती हुई बोली, "कला का सच्चा साधक भी तो अपने को भूल जाता है। अपने को भूलकर प्रभु के लिए अर्पित होने वाली कला ही सच्ची आध्यात्मिक साधना है।"

"केवल कला ही नहीं, प्रभु को अर्पित होने वाला प्रत्येक कार्य आध्यात्मिक साधन है। बस उसे करते समय मनुष्य स्थान, कार्य और बाहरी दुनिया में किए गए आचरण में अंतर से मुक्त हो और अपना स्वामी स्वयं हो। ईसाई धर्म वैराग्य की दीक्षा नहीं देता। वह जीवन की प्रत्येक दिशा में प्रवेश करने की इजाज़त देता है और दुविधा के समय प्रभु से प्रकाश ग्रहण करने का परामर्श देता है। जिसने अपने सभी कार्य प्रभु के अर्पित कर दिये हैं, उसे मूसा की तरह सच्ची आवाज़ सुनाई देती है। इसीलिए मैं कहता हूं—जबकि दूसरे लोग नहीं मानते—कि कला भी प्रभु की उपासना का साधन बन सकती है।"

ग्रेटी की बुद्धि अब कुछ ठहर गई थी और इस युवक फादर को जितना सरल उसने समझा था—उससे कुछ अधिक का भास उसे होता जा रहा था। उसने शकुन्तला की ओर मुस्कराकर देखा और उसके उत्तर में एक गंभीर नज़र उसकी नज़रों में समा गई। शकुन्तला ने कहा, "मैं चाहती हूं, आपके अगले प्रवचन के पूर्व मैं एक भजन गाऊं। अगर आपको कोई एतराज़ न हो तो!"

फादर ने वह प्रस्ताव मान लिया। अगले दिन सत्संग-सभा हुई। शकुन्तला ने भजन गाया। उसके कंठ से निकलने वाली प्रभु-वाणी ने समस्त वायु-मंडल को इस तरह आच्छादित कर लिया कि युवक फादर प्रवचन न कर सके। इससे भी अधिक यह कि जब वह अपने अतिथिगृह में पहुंचे तो उनकी हालत काबू के बाहर थी। अपने मेजबान से उन्होंने प्रार्थना की कि वे मिस शकुन्तला जोज़ेफ से बहुत महत्त्वपूर्ण बातें करना चाहते हैं और उन्हें बुलवा दिया जाए।

शकुन्तला साधारण-से बुलावे पर आ गई थी। युवक फादर ने उससे कहा "मिस जोज़ेफ, अगर इजाज़त दें तो मैं आपसे एक प्रार्थना करूं।"

"आज्ञा कीजिये।"

"क्या आप मेरे साथ चलकर मेरी माताजी से मिलना कबूल करेंगी?"

"उनसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी होगी—अगर मेरे लिए मुमकिन हो सका। आपकी माताजी कहां हैं?"

"मैं आपसे कह दूं कि मेरी माताजी ने मुझे प्रारम्भ से धर्म-प्रचार के लिए तैयार नहीं किया था। भारतीय जीवन से मेरा अधिक संबंध नहीं है। आज से पांच वर्ष पहले हम लोग अमरीका के नागरिक थे। मेरे पिता यद्यपि भारतीय थे किन्तु मृत्यु से पहले ही उन्होंने अमरीका की नागरिकता प्राप्त कर ली थी। लेकिन सहसा घटनाएं कुछ इस तरह घटीं कि वह देश छूट गया··· और अब हम यहां हैं। अब माताजी स्वयं यहां से नहीं जाना चाहतीं। आप उनसे मिलेंगी तो देखेंगी कि अमरीकन होते हुए भी किस तरह उनके रोम-रोम में भारतीयता बस गई है। वह चाहती थीं कि एक इंजीनियर की हैसियत से मैं पितृ-धर्म निबाहूं और अगर संयोग ने हमें इस धरती पर ला पहुंचाया है तो भारत को ही अपना राष्ट्र समझकर सेवा करूं, पर मेरा दुर्भाग्य कि वह सब न करके मैंने उनको निराश किया···शायद प्रभु को यह स्वीकार न था।"

शकुन्तला की समझ में नहीं आ रहा था कि उस आकस्मिक आत्मीयता के भार को वह किस प्रकार वहन करे। युवक पादरी जो एक दिन पहले ही कला और धर्म का उत्साही प्रचारक था—किस प्रकार इतना भावुक, सौम्य, विनम्र और सामान्य बन गया है—उसके लिए यह सब एक अचरज था और इस अचरज में किस स्थान पर वह अपने व्यक्तित्व को जोड़ सकती थी? उसने उस आत्मीयता के दबाव से अपने को मुक्त करने के लिए कहा, "आपने मिस ब्रेटी यंग को भी क्या निमन्त्रित किया है?"

"किया नहीं है, परन्तु वे चलें तो मुझे प्रसन्नता होगी। ब्रेटी से चर्चा करते हुए पता चला कि आपने अभी तक निश्चय नहीं किया कि आप आगे क्या करेंगी?"

"मेरा कुछ करना या न करना अभी तक मेरे माता-पिता की इच्छा पर निर्भर है। वह चाहते हैं कि मैं शादी करके उनको उनके पैतृक दायित्व से मुक्त कर दूं।" शकुन्तला ने कहा।

"आपने इस बारे में स्वयं क्या निर्णय किया है?"

"यद्यपि मैंने अपना अन्तिम निर्णय नहीं किया है; किन्तु शादी का निर्णय करना क्या इतना आसान है कि चाहे कब किया जा सकता है?"

"यही तो ! मेरी माताजी भी शायद सोचती हैं कि शादी के लिए जब चाहे तब निर्णय किया जा सकता है। उनके बार-बार के तकाज़ों से तंग आ कर ही मैंने यह साधु व्रत धारण किया। यह भी पुण्य का काम है। पर अपने एकांत क्षणों में मैंने यह अनुभव किया है कि सच्चे मनुष्य का धर्म-निर्वाह करने के लिए आदमी को पहले आदमी बनना पड़ता है। वासनाओं का दमन करके प्रभु की कृपा को प्राप्त करना मुझे मृगतृष्णा से अधिक नहीं लगा। दिल की गहराइयों में स्पंदित होने वाली टीस बंद नहीं होती, लाख उसे कोई झुठलाए !"

"लेकिन इससे आपके शादी करने के मार्ग में किस प्रकार बाधा पड़ती है ? गार्हस्थिक जीवन में क्या आदमी साधु नहीं रह सकता"—शकुन्तला ने कहा।

"रह सकता है, अगर उसे जीवन में एक ऐसे साथी का सहयोग मिले, जिससे मन का मेल हो सके। मेरे जीवन में भी सौभाग्य की उस कृपा का जागरण हुआ, लेकिन और चीज़ों की तरह प्रभु ने उसमें भी अपनी अपनी इच्छा से ही काम लिया। आज पांच वर्ष हो गये, मार्ग्रेट इस दुनिया को छोड़कर चली गई। उसके जाने से जीवन में प्यार मेरे लिए उठ गया। लेकिन मां के लिए शायद यह समझना मुश्किल था।" युवक फादर जॉनसन आगे चुप हो गये।

"लेकिन इतने बड़े मानसिक संघर्ष को लेकर आप प्रभु की वाणी का संदेश कब तक सुना सकेंगे ?" शकुन्तला ने कहा।

"यह सही है; कल आपके संगीत की लय ने मेरे अंतर में उस सोये हुए अतीत को जगा दिया। जीवन का सच्चा संगीत खोज में नहीं, स्वयं जीवन में है···मिस जोज़ेफ, आपके संगीत में मुझे आत्मा के सच्चे दर्शन हुए। आपसे अपना छोटा-सा मंतव्य कहे बिना मैं रह नहीं सका—इसे मेरी धृष्टता कह लें !" कहते-कहते युवक फादर ने आंखें नीची कर लीं।

"लेकिन आपको शायद स्मरण नहीं कि आपने अभी तक अपना कोई मन्तव्य मेरे सामने प्रकट नहीं किया है, इसमें लज्जित होने की कौन-सी बात है ?" शकुन्तला ने परिस्थिति की जकड़ को ढीला कर दिया।

यह सुनकर युवक पादरी अपने खूबसूरत सोफे से उठ खड़ा हुआ। अपने हाथ मींड़ता हुआ मखमली फर्श पर इधर-से-उधर वह उस बेचैनी से घूमने लगा था कि जैसे उसका सारा व्यक्तित्व बिखर जाएगा। पहले दिन ही उसकी

नजर में उसका मंतव्य स्पष्ट था। यह मंतव्य उसे स्वीकार नहीं था, फिर भी वह उसके बुलाने पर चली आई थी। क्यों चली आई थी? क्या उस महान प्रश्न की गुत्थियों को सुलझाने के लिए जिसने उसकी समस्त चेतना को अपनी जकड़ में कस लिया था? जॉनसन की पीड़ा का दर्द वह अनुभव कर सकती थी। उस पीड़ा से उसका अपना दर्द उभरता आ रहा था और जॉनसन जिस बारीकी से अपना मंतव्य प्रकट कर रहा था, उतने ही अलक्ष्य-भाव से शकुन्तला उस स्थूल प्रश्न की प्रभाव-सीमा से बाहर निकलती जा रही थी। जॉनसन के दर्द के प्रति उसके मन में आदर का भाव था कि अपनी प्रेयसी की याद को वह पांच वर्ष से अपने मन में संजोये हुए है और आज शायद शकुन्तला को देख कर उसका वह अतीत का मोह, प्यार का मीठा सपना पहली बार सजीव हुआ है, पर···पर···!

जॉनसन को उस स्थिति में अधिक देर तक देखना उसके लिए सहज नहीं था। उसने खड़े होते हुए कहा—"फादर जॉनसन, आपकी सद्भावना के लिए मैं कृतज्ञ हूं, लेकिन मैं स्वयं किसी से वचन-बद्ध हूं और उसी तरह प्यार करती हूं जिस तरह आपकी मार्ग्रेट ने आपको किया होगा।"

अंतर्वेदना से तड़पता हुआ वह युवक फादर सहसा खड़ा हो गया। उसकी आंखों में पानी की एक हलकी-सी झलक दिखाई दी। पीठ फेरकर वह प्रभु ईसा मसीह के चित्र के सम्मुख नेत्र बंद करके नतमस्तक हो गया।

शकुन्तला उस कक्ष से बाहर निकल आई थी। विचारों का एक बड़ा तूफान उसके मस्तिष्क में घुमड़ रहा था। वह क्या था जो उसने अभी-अभी देखा है—प्रेम, वैराग्य, प्रभु-भक्ति या आसक्ति! आदमी क्यों उत्सर्ग किये बिना नहीं रह सकता। ग्रेटी ने कितने गलत ढंग से कितना सही निष्कर्ष निकाल लिया है। आत्मोत्सर्ग की यह पुनीत भावना किस तरह बदी बना ली गई है।

घर आकर उसे पता चला कि काफी देर से उसकी प्रतीक्षा की जा रही है। विल्किन्स की मां और बहिन काफी देर तक उसकी प्रतीक्षा में बैठी रह कर लौट गई हैं और वे कह गई हैं कि शकुन्तला का निर्णय लेकर ही वह घर लौटना चाहती हैं।

शकुन्तला उठकर मां के चरणों के निकट बैठ गई। मां की आंखों में स्नेह छलकने लगा। इसलिए वह अधिक देर लड़की के पास टिकना नहीं चाहती थी। बोली, "अच्छा तो उठो, अपने काम में लगो। कभी माइयों की

खबर भी ले लिया करो। दिन-भर आवारों की तरह सीटी बजाते घूमते फिरते हैं। घर का रंग-ढंग ही बिगड़ गया है। न जाने आज के बच्चे कैसे चौपट हो गए हैं!"

इतना कहकर मां बाहर निकल गई। उसी आवेग में वह कीर्ति का पत्र भी सुनना भूल गई। शकुन्तला के मन से बोझ हट गया था। उल्लसित मन से उसने कीर्ति का पत्र खोला। पत्र में लिखा था :

"मेरी प्यारी शिक्की,

कुशलतापूर्वक हम लोग झांसी पहुंच गए हैं। यहां से कल दिल्ली के लिए रवाना हो जाएंगे। मैं जानती हूं तुम मेरे पत्र की प्रतीक्षा करती रही होगी, पर मैं इससे पहले लिख ही नहीं सकी।

इन दिनों कुछ भी उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। नागपुर से चली थी तो यही सोचकर कि इन दो बच्चों की परवरिश में अपनी जिंदगी की सार्थकता समझूंगी। क्योंकि मैं निश्चय कर चुकी थी कि कुमार से पत्नीत्व के संबंध फिर कभी स्थापित नहीं करूंगी। वह निश्चय कायम नहीं रह सका।

तीन ही दिन में दुनिया बदल गई। कल ही रात की बात है। कुमार मेरे कमरे में आये। पैरों की आहट से मुझे पता चल गया कि वह आ गये हैं। मैंने नींद का बहाना करते हुए पीटर को छाती से लगा लिया। कुमार चुपचाप मेरे पैरों के पास बैठ गये। मैं चुप थी। थोड़ी देर में उनकी आंखों से आंसू मेरे पैरों पर टपकने लगे। मैं फिर भी न उठी। जिस तरह आये थे, उसी तरह चले गये। रात भर कमरे में बत्ती जलती रही। मुझे आश्चर्य होता था कि वे क्या कर रहे होंगे, परंतु सवेरे पता चला कि सारी रात बैठकर उन्होंने अपनी बेवफाई के लिए खूबसूरत भाषा में एक प्रायश्चित्त-नामा लिखा है जिसे सुबह होने से पहिले मेरे तकिये के पास रख दिया गया।

जब मैंने पत्र पढ़ा तो बहुत देर तक हंसती रही। मैं चाहती तो उससे अच्छी भाषा में अपना ऐमालनामा लिख सकती थी। लेकिन जानती हूं पुरुष स्वयं बेवफा होकर स्त्री से सच्चरित्रता की अपेक्षा रखता है। इसलिए अगले दिन उनसे समझौता कर लिया। उनके प्रेम में अब भी वैसी ही ऊष्मा है। उतना ही अधिकार है। सोचती हूं यह क्या है! क्या शरीर-धर्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है दुनिया में—जहां आदमी अपने अस्तित्व को टिका कर रख सके?

जो कुछ पिछले महीनों में अनुभव किया वह सब तुम्हें लिखकर तुम्हारे

मन को अशांत नहीं करना चाहती। दिल्ली जाकर तेरे परदेसी को खोजने का प्रयत्न करूंगी और अगर वह मिल गया तो उससे दो-दो बातें करूंगी।

दिल्ली पहुंचकर पत्र फिर लिखूंगी। दिवाकर का पता उसी पते पर लिख देना।

पीटर और टिम्नी का प्यार। पापा को मैंने अलग से पत्र लिख दिया है।

तुम्हारी—कीर्ति"

कीर्ति के पत्र में ऐसा कुछ भी नहीं था, जिसे उल्लेखनीय कहा जा सकता। पत्र खोलते समय न जाने क्या कुछ जानने का कुतूहल उसके मन में था और उसके स्थान पर मिला एक सीधा-सादा पत्र। सब कितनी जल्दी ठीक हो गया। आदमी कितनी जल्दी अपने से समझौता कर लेता है। जैसे समझौता करके शरीर की भूख को मिटाने के अतिरिक्त आदमी के सामने और कोई चारा ही न हो।

*बहुत देर तक वह उसी स्थान पर बैठी रही। टिम्नी की नीली आंखों को कल्पना में देखती रही। मेजर कुमार की आंसुओं से भीगी सिलहुट उसकी आंखों में तैरती रही। फिर तरुण फादर जॉनसन***। और सबसे अन्त में फिर वही परदेसी***खिड़की से झांकती हुई फिर वही दो आंखें***गहरी और विवेकशील***किस तरह पीड़ा के सरोवर में राजहंस की तरह वह तैरती थी***आह, कैसा स्वप्न था वह***!*

शकुन्तला जॉनसन के पास से जिस भाव को लेकर लौटी थी, उसे वह करुणा के अतिरिक्त कुछ कह नहीं सकती। लेकिन करुणा के पीछे न जाने कौन-सा स्वप्न छविमान होने लगा था। जॉनसन की उस तड़प से चौंक कर पुरुष और प्रकृति की सनातन परस्परता शायद आज पहली बार आंखें खोल रही थी। न जाने कौन-सा तार उसके अंतस्तल में चोट खा गया था, जिसकी मादक मींड़ को सुनकर उसकी पलकें झपकती आती थीं। होंठों पर एक अद्‌भुत मिठास उभरती आती जा रही थी। सहसा उसकी आंखें मुंद जातीं और प्रणय की विचित्र मूर्तियां पलकों में नाच उठतीं। कभी वह सोचती कि उद्दाम वेग से बहने वाला पवन क्षण भर के लिए रुक जाए और प्रियतम का रूप धारण कर ले और तभी चौंकी हुई मृगी के समान चारों ओर देखती वह कहती—नहीं***! इस लज्जामयी 'नहीं' की रसवती झंकार उसके रोम-रोम में भर उठती।

अपने अंतर में उठने वाले इन अजनबी भावों से मुक्ति पाने के लिए वह

सो जाना चाहती। चाहती कि कोई उसकी देह को थका कर चूर-चूर कर दे और वह एक मीठी नींद में भरकर सो जाए—अपने अस्तित्व की चेतना के भाव से सर्वथा रिक्त होकर।

उसे आश्चर्य यह था कि जॉनसन के प्रति करुण उदासीनता से भर कर भी वह जॉनसन का प्रतिरूप किस तरह बन गई! अपने इस परिकल्पित रूप की चर्चा वह किससे करे! किस तरह उसके अंतर का वह उमड़ता वेग शांत हो जाए, और खुली आंखों वह अपने भविष्य का निर्णय कर सके। अंतिम निर्णय का समय निकट आता जा रहा था। परीक्षा का परिणाम घोषित होने में अब अधिक विलंब नहीं था। और उसे विश्वास था कि मां के उस अस्थायी धैर्य के बावजूद स्थिति फिर उसके सामने भयानक रूप धारण कर सकती है।

कीर्ति के पत्र की प्रतीक्षा अब तीव्र व्यग्रता का रूप धारण करती जा रही थी। शकुन्तला सोचती कि वह ग्रेटी से मिलकर कोई ऐसा कार्यक्रम क्यों न बना ले जिसके आधार पर वह तात्कालिक निर्णय करने के संकट को टाल सके।

ग्रेटी की ओर जाते समय आज उसे फिर उस दिन की याद ताजा हो हो आई, जब एक अलौकिक उत्साह से भर कर वह वापस लौटी थी। गली के मोड़ पर अपनी एक सहपाठिन को आता देखकर वह झकझक से बचने के लिए पास की एक दूकान में चली गई और बिना आवश्यकता के उसे चाकलेट खरीदने पर मजबूर होना पड़ा, पर सहेली भी उसके पीछे ही दूकान में आ गई थी। कंधा पकड़कर हिलाती हुई सहपाठिन बोली, "मैं तो तुम्हें मुबारकबाद देने आ रही थी शिक्की! ओह, तुम मंगनी से पहले ही पूरी औरत मालूम पड़ने लगी हो मेरी प्यारी! शादी कब की है?"

शकुन्तला ने एक चाकलेट उसके मुंह में रख दिया। सहपाठिन की आंखों में उल्लास चमकने लगा। शकुन्तला दूकान से बाहर निकलती हुई बोली, "तू बता, तेरी शादी कब पक्की हुई? तेरे पति को तो अच्छा योद्धा होना चाहिए। मेरे कंधे ऐसे झकझोर दिए कि दर्द होने लगा है।"

"बस, पंद्रह दिन बाकी हैं। शिक्की, तुम भी जल्दी क्यों नहीं शादी करा लेतीं! मेरी शादी में एक गाना गाओगी न? देखो, मैं उनसे ज़िक्र कर चुकी हूं। मेरी बात छोटी न रह जाए?" सहपाठिन उसी उत्साह बहती गई और बहुत दूर तक उसके साथ चलती रही।

शकुन्तला ने एक टाफी उसके मुंह में देते हुए कहा, "मुबारकबाद बहिन, जरूर गाऊंगी। तुम्हारे सुख में मेरे गाने ने बढ़ोतरी होगी तो भला मैं क्यों न गाऊंगी ?"

फिर वह अनेक वायदे लेकर, अनेक मुस्कान बिखेर कर अपने प्रश्न का उत्तर बिना पाए ही चली गई। शकुन्तला ने टाफी नहीं खाई। मुंह में कुछ कड़वा-कड़वा-सा लग रहा था और पैर थक रहे थे।

ग्रेटी संयोग से पोर्टिको में ही खड़ी मिल गई। शकुन्तला को दूर से आता देखकर वह भागकर उससे लिपट गई। अभी-अभी जो आंसू शकुन्तला की आंखों में भर आए थे, ग्रेटी ने बावले चुम्बनों से स्वयं सोख लिए। ग्रेटी आज बड़ी फार्म में थी। बोली, "लो, तुम्हारा स्वप्न पूरा हो गया शिक्की ! उस मूजी ने ५ हजार देने का वायदा कर लिया है—जॉनसन ने ! ओह शिक्की ! सचमुच हममें बड़ी ताकत है बहिन ! दो पटखियों में फादर जॉनसन का केंचुल उतर गया। वह मुझसे प्रेम मांगने लगा—शिक्की ! मैंने कहा, 'लो चूम लो इन होंठों को।' मन में सोचती रही, क्या हर्ज है, समझूंगी मैंने अपने पपी को चूम लिया। अच्छा तो बताओ, क्लासों की घोषणा कब से कर दी जाए ? अरे, मैं तो कोठी खाली करने की सोच रही थी। छोड़ देती तो जगह मिलना मुश्किल हो जाती।"

ग्रेटी के इस उछाल में शकुन्तला बह न सकी। ग्रेटी की आंखों में देखती हुई कहने लगी, "ग्रेटी, वाकई क्या पुरुष के मन में कोई ऐसी बात नहीं होती जिसे एकनिष्ठता की संज्ञा दी जा सके।" जानसन की ग्रेटी से प्रेम मांगने की बात ने उसके मर्म को भेद दिया था।

"क्यों, क्या हुआ, जी तो अच्छा है तुम्हारा ?" ग्रेटी ने अकस्मात् गम्भीर होकर कहा—और वह शकुन्तला के मस्तक पर हाथ फेरने लगी।

"नहीं ग्रेटी, मैं बीमार नहीं हूं। आज मैं तुमसे कुछ पूछने आई हूं। ठीक-ठीक बता देना। क्या सचमुच प्रेम और वासना में कोई अंतर नहीं है ? जिसे देखो वही सड़क पर चलता-चलता आंखों में नशा लेकर देखने लगता है ? प्रेम हो या संयोग हो, शादी होती है और स्त्री और पुरुष दोनों यह अनुभव करने लगते हैं कि जैसे जंजीरों से जकड़ दिए गए हों। अनुरक्ति और विरक्ति का यह कैसा व्यापार है, मेरी समझ में नहीं आता।"

"मैंने कभी जानने के लिए नहीं सोचा," ग्रेटी बोली, "पर कभी-कभी सोचने पर मजबूर जरूर कर दी गई हूं, जिस आदमी को मैंने प्रेम किया आज

उसी को घृणा करती हूं। आज तक जितने और भी इस विलास के मंदिर में प्रेम की अर्चना लेकर आए हैं, उनसे मैंने घृणा की है। इसलिए मैं तो सोचती हूं, प्रेम और वासना को मैंने कभी एक साथ नहीं माना। वासना के सोपान से चढ़कर भी आदमी प्रेम तक पहुंच सकता है। प्रेम, मेरी समझ में, मानवीय आत्मा का वह संगीत है जिसकी मधुर ध्वनि हर सांस में गूंजती रहती है। प्रेम अभिव्यक्ति के लिए पात्र की भी अपेक्षा नहीं करता। हम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते !"

"वासना के घोर पंक में फंसी हुए आत्माएं प्रेम-साधना के सर्वोच्च पद पर बैठी हुई पाई जाती हैं। यहां तक की वेश्याओं तक के प्रेम संसार-प्रसिद्ध हैं।"

"लेकिन वेश्याओं को तुम घृणित कैसे कह सकती हो शिक्की ! पेशा तो उनके जीवन-यापन का अवलंब है। जिस तरह चमार चमड़ा निकाल कर पेट भरता है, जिस तरह मज़दूर फावड़ा चलाकर गुज़र करता है, उसी तरह वेश्या भी अपने शरीर से श्रम करती है। यह बुरा है, लेकिन यह बुराई उस समाज की है, जहां इतने विकृत ढंग से मज़दूरी करके आदमी को दो रोटी कमानी पड़ें। जो समाज जितना नीच और नाकारा होता है, उसके नागरिक उतनी ही शर्मनाक विधियों से गुज़र-बसर करने पर मजबूर किये जाते हैं, इसलिए सामाजिक संस्कारों के प्रभाव में रह कर हम सच्ची मानवीय वृत्तियों का मूल्यांकन नहीं कर सकते।"

"तुम तो हर बात को सामाजिक और राजनीतिक रंग देने लगती हो, ग्रेटी," शकुन्तला ने तुनक कर कहा।

"राजनीति तो हर बात में आ ही जाती है शिक्की। जहां एक आदमी का दूसरे आदमी से संबंध बना, समाज बीच में आ गया। मैं तो कहती हूं, आज जिस तरह का हमारा समाज है, उसमें वास्तविक प्रेम का उदय होना ही असंभव है। तुम कहोगी, मैं तो दिवाकर को आज भी प्रेम करती हूं, हालांकि वह मुझे छोड़कर चला गया। मेरी प्यारी, मैं तुम्हें कहती हूं कि तुम्हारी आत्मा निर्मल थी, वासना से मुक्त थी, इसीलिए प्रेम का बाण इतना गहरा बैठ गया तुम्हारे दिल में और शान्ता अपने सामाजिक अधिकार से उसे पंजों में दबाकर उड़ गई। लेकिन कौन कह सकता है कि आज दिवाकर तुम्हें पहले से भी अधिक प्यार नहीं करता होगा। उसका प्रेम उसकी वासना की वेदी पर चढ़ गया। शरीर का धर्म समाज के नियमों से स्वतन्त्र

होकर नहीं चल सकता। दिवाकर ने अपने निज का सुख सामाजिक मर्यादा के हाथों बेंच दिया।" ग्रेटी ने विचारक की मुद्रा में कहा।

"नहीं ग्रेटी, मैंने ही तो उस दुर्घटना का आविष्कार किया। श्याम कहता था कि वे जब जा रहे थे तो उनकी हालत पागलों-जैसी हो गई थी। शान्ता को छोड़ने के लिए ही तो वहां से चले थे।" शकुन्तला ने सफाई पेश की।

"शिक्की, धोखा खाओगी तुम। दिवाकर अच्छा है, ईमानदार है, पर उसके व्यक्तित्व में वैसी दुर्धर्षता नहीं जो अपनी रफ्तार को जमाने की रफ्तार बना दे। ऊंह, तुम्हारा दिवाकर! दीपक की टिमटिमाती लौ, शुतुर्मुर्ग, पलायनवादी, प्रतिक्रियावादी!"

"क्या कहती जा रही हो ग्रेटी," शकुन्तला ने सहसा चौंककर ग्रेटी का मुंह बंद कर दिया, "किस अधिकार से किसी अपरिचित के प्रति अपशब्द कहती हो?"

ग्रेटी चुप हो गई। एक घृणापूर्ण मुस्कान उसके चेहरे पर खेल गई। बोली, "ठीक है। अधिकार कोई नहीं है। एक दिन मेरे पवित्र कौमार्य को लांछित होते देखकर तुम्हारी आखों में आंसू आ गये थे। तुम्हारी शिराएं फड़क उठी थीं, तुम्हारी मुखाकृति ओज से दीप्त हो गई थी। तुम्हारे उस रूप ने मुझे प्रेरित किया था कि अपनी समस्त प्रतिभाओं की निर्व्याज साधना करूंगी। लेकिन समाज में चारों ओर जो वासना का पशु हुंकार रहा है, वह हमारे जैसी दो तुच्छ प्राणियों को कुचल कर रख देगा, इसे मैं आज भी भूल नहीं सकती। तुम्हें मालूम है, वह आध्यात्मिक साधना करने वाला प्रभु का अनन्य सेवक जॉनसन मेरे होंठों का रस-पान करके कला-केंद्र खोलने लगा है, और मुझे उसके मेजबान ने बताया कि उसने तुम्हें भी बुलाकर विवाह का प्रस्ताव रखा था। पुरुष का नाम है—विश्वासघात, दगा, फरेब और बलात्कार। मैं रूप की वह न बुझनेवाली शमा जलाऊंगी, जहां सब आकर झुलसेंगे और मरेंगे। यही मेरे प्रेम का प्रायश्चित्त होगा, शिक्की!" फिर लम्बी सांस खींचकर बोली, "सचमुच, अब मैं बहुत बुरी हो गई हूं!"

शकुन्तला चुप रह गई। आज पहली बार ग्रेटी के सामने उसे अपनी लघुता स्पष्ट हुई। वह सोचती रही: 'ग्रेटी आज जीवन के महासागर की लहरों से खेल रही है, जबकि शकुन्तला कगार पर खड़ी केवल बहार ले रही है। जो करता है, सहता है, कहने का अधिकार भी ~~~ है।

शकुन्तला चुप थी। मि० जोजेफ हुक्का पी रहे थे। बोले, "देखें तो तार !"

शकुन्तला ने तार उनके हाथ में पकड़ा दिया। तार पढ़कर उन्होंने कहा "तार तो शकून के नाम है।" और बीवी की ओर अभिमुख होते हुए बोले, "अरे, तुम्हें तो पता भी हाथ नहीं आयगा। अभी से इतनी घबराई लगती हो। फिर बच्चों को अस्पताल दाखिल करना है। घर पर क्या बनेगा ? सिर्फ घर संभालने के लिए ही तो आदमी चाहिए—लड़की चली जायगी।"

"हां-हां, लड़की चली जायगी ! जवान लड़की को इस तरह हजार मील पर अकेली भेज दूंगी, तुम्हारे कहने से ! मैं न जार्ज को लेकर चली जाऊंगी ? आह, न जाने कैसा पत्थर का दिल है इनका।"

जवान होने की चर्चा आज मां के मुंह से दुबारा सुन रही थी। पर लाज से आज उसके गाल सुर्ख नहीं हो गये। मां के सामने सीधे तनकर उसने कहा, "बार-बार एक ही बात को दोहराकर अपनी बेटी को अपमानित करने में जहां स्वयं मां ही न हिचकिचाए, वहां कोई दूसरा क्या न कह देगा ! मैं जवान हो गई हूं तो क्या कोई मक्खन की डली हूं कि जो आएगा, मुंह में उठाकर रख लेगा। दुनिया की बेटियां आज अपने भाइयों के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर दुनिया को बदल रही हैं, मनुष्यता का भाग्य बना रही हैं और एक मैं आपकी बेटी हूं कि शायद आपके मुंह पर कालिख पोतने के अतिरिक्त किसी और काम के लिए मेरा जन्म ही नहीं हुआ है !" इतना कहते-कहते शकुंतला का चेहरा तमतमा गया। आंखों में आंसू आने लगे तो वह वहां से हट गई।

इतने आवेश में भरकर शायद आज तक वह मां-बाप के सामने कभी न बोली थी। घर के सभी सदस्य स्तब्ध रह गए। जार्ज तमक कर बोला, "न जाने ममी अपने को क्या समझती हैं। जब देखो सबको रुलाती रहती हैं। अपने-आपको देखो तो दही और साग वाली से गप्पें ठोकने के सिवा कुछ भी करती नहीं !"

उधर से पड़ोस का गोरा लड़का पतंग हाथ में लेकर निकला और उसकी सीटी की आवाज सुनकर छोटे लड़के बाड़े से बाहर खिसक गये। मि० जोजेफ ने हुक्के की नली मोड़ते हुए पत्नी से कहा, "अभी आंखें खुलीं कि नहीं ?"

"मैंने कुछ कहा भी हो ?" और श्रीमती जोजेफ सिसकने लगीं।

"लीजिए, फिर ड्रामा करने लगी हैं," जोजेफ ने झुंझलाते हुए कहा, "अरे, यह लड़की कोई ऐसी-वैसी है कि कच्ची-पक्की बातें कहती रहती हो।

कल तक सारा मोहल्ला उससे सलाह मांगता था, तुमने उल्टी-सीधी चर्चा करके लड़की का बाहर निकलना बंद करा दिया !"

"मैं क्या उसका बुरा चाहती हूं ?"

"ज्यादा भला चाहना भी अच्छा नहीं होता। अब लड़की अपना भला-बुरा समझने लायक हो गई है—उसे चली क्यों नहीं जाने देती हो ? अपनी बड़ी बहिन के पास ही तो जा रही है ?" मि० जोज़ेफ ने हुक्का हाथ में उठा लिया और अंदर चले आये। बड़े कमरे में कोच पर पड़ी शकुन्तला सिसक रही थी। सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "लो जी, मां के प्यार का भी बुरा मानोगी तो इससे आगे क्या रहा। जार्ज को साथ लेकर चलने की तैयारी कर लो।"

प्यार के दो बोल सुनकर बेटी का मुंह खुशी से भर उठा और वह बाप के सीने से चिपट गई। उनके हाथ का हुक्का लड़खड़ा गया। श्रीमती जोज़ेफ ने तिरछी चितवन से देखते हुए हुक्का सभाल लिया और दूसरी तरफ चली गईं।

शकुन्तला खुश थी और जार्ज हाफ पेंट पहने हुए तैयार था। कंधे पर किट और सिर पर टोप धारण करके सामान की गिनती कर रहा था।

सामान शकुन्तला और मि० जोज़ेफ के बार-बार मना करने पर भी एक-एक करके बढ़ता गया था। मां का दिल मानता ही न था कि बच्चे सख्त बीमार हैं। वह कहती—"ओह, क्या प्रभु सारी मुसीबतें उस बेचारी के सिर पर ही डाल देगा !"

घर से जब तांगा चला था तो शहनाई के स्वर की तरह न जाने कौन सा स्वर शकुन्तला के कानों में गूंज रहा था। घर के सभी सदस्य स्टेशन पर विदा करने चले आ रहे थे। सबके बीच शकुन्तला न जाने क्यों घबरा रही थी कि जैसे यह उसकी अंतिम यात्रा है। बार-बार रोम-रोम को आकुल कर देने वाली सिहरन उसके शरीर में दौड़ जाती कि जैसे वह अपने मां-बाप के खिलाफ कोई बहुत बड़ा षड्यंत्र कर रही है। मां बराबर समझाती जा रही थी—"मेरा दिल जो नहीं मानता, इसलिए तुझे कहनी-अनकहनी सुना देती हूं। हमेशा ही सुनने के लिए तू मेरे पास थोड़े ही बैठी रहेगी !"

श्रीमती जोज़ेफ बार-बार सामान देखती और तरस खाकर कहतीं—"ओह, मैंने भी कितनी झंझट बच्चों के गले बांध दी है।"

मि० जोज़ेफ बोल उठे, "तुम तो वह हो, जो एक ख़ूबसूरत पत्थर किसी के गले में बांधकर कहे, संभलकर दरिया के पार जाना !"

श्रीमती जोज़ेफ कुछ बोलीं नहीं। तब से लेकर गाड़ी के छूटने तक वह चुप रहीं। वह कहना चाहती थीं, दिल्ली पहुंच कर सलामती का तार देना लेकिन कंठ भर गया। जार्ज ने कहा, "मां, अधिक चिंता न करो, हम पहुंच-कर तार दे देंगे।"

मि० जोज़ेफ इस प्रकार शान्त और गंभीर भाव से खड़े थे कि जैसे हुक्के का नैचा मुंह में लेकर इंजील की किसी आयत पर विचार करने में मशगूल हो गए हों। जार्ज पागलों की तरह रूमाल हिला रहा था। गाड़ी के तेज़ी पकड़ते ही वह खिड़की से बाहर झांकती हुई बहिन का कंधा पकड़ कर खामोश खड़ा रह गया।

आज से पहले भी शकुन्तला अपने मां-बाप से विदा हुई थी, लेकिन वे यात्राएं कितनी आह्लादकारी और सुखद प्रतीत होती थीं। आज की यात्रा में ज्यों-ज्यों गाड़ी की रफ्तार तेज़ होती जाती थी, उसके दिल में अजीब घब-राहट पैदा होती आती थी। डिब्बे में भीड़ थी और आज वह जीवन के इतने निकट थी कि सहयात्रियों के दिलों की प्रत्येक धड़कन उसे अपने दिल की धड़कन मालूम होती थी।

रेलगाड़ी में सहयात्री महिलाओं से परिचय हो रहा था। इस परिचय में एक विचित्र कुतूहल था। शकुन्तला की सीट के सामने जो महिला बैठी थीं, परिचय पूछे जाने पर उन्होंने अपने पति का काफी लंबा-चौड़ा परिचय दिया, अपने बड़े लड़के की शिक्षा-दीक्षा का देर तक ज़िक्र करती रहीं। अन्त में अपने नन्हे कोमल शिशु को चूमते हुए कहा कि वह उनकी सब से छोटी संतान है। आंखों के चारों तरफ पुती हुई स्याही में से झांकती हुई अपनी शर्माई हुई नज़र से वे कहना चाह रही थीं कि बस वह उनकी अंतिम संतान होगी। शकुन्तला ने उनसे कहा, "एक स्त्री का जीवन आम के उस वृक्ष के समान है जो पनपता है, फूलता है, फलता रहता है और एक दिन उसकी पत्तियां, डालें, शाखें और जड़ सूख जाते हैं। जिस मिट्टी से वृक्ष उठता है, फिर उसी मिट्टी में समा जाता है।" शकुन्तला ने ऐसा वक्तव्य शायद इस लिए दिया कि बुढ़ापे की दहलीज़ लांघ जाने के बाद भी वे पति-पुत्र में

उसकी उम्मीद से ज्यादा दिलचस्पी दिखा रही थी।

यह वाक्य सामान्य परिचय प्राप्त करने की भावना से कुछ हटा हुआ था। सामने बैठी हुई महिला इस चर्चा को अधिक पसन्द न कर सकी। उनके चेहरे पर अजीब परेशानी उभर आई और वह बच्चे के कपड़े ठीक करने लगी, लेकिन तत्काल पीछे की सीट से एक चश्मे वाली देवी बोलीं, "वाह, क्या खूब प्रतीक उपस्थित किया है आपने ! सचमुच स्त्री का जीवन अपने लिए होता ही कहां है ?"

सभी देवियां इस मार्मिक चर्चा में भाग लेने के लिए मचल उठीं। एक जो कुछ विलायती ढंग के कपड़े पहने थीं, बोलीं, "औरत के जीवन का ही क्या, समस्त चराचर के अस्तित्व का यही सनातन सिद्धांत है। जो जन्म लेता है, एक दिन—वह अपने अंत को भी प्राप्त होता है। पर जीवन सनातन है—अनवरत रूप से बहने वाला चश्मा है—लोग जो अनुमान लगाते हैं कि आदमी की उत्पत्ति आदम और हव्वा से हुई, इस देवता से या उस देवता से—हमारी समझ में नहीं आता।"

शकुन्तला ने कहा, "मैंने कहा था कि स्त्री का जीवन आम के वृक्ष के समान है। जब तक उसमें रस है, उसके बौर में भीनी-भीनी सुगंध है, न जाने कितने कोयल अपनी कू-कू से उसके अंतर की प्यास को जगाते हैं—पर अन्त उसका कहां है ?"

एक तीसरी स्त्री ने कहा, "बहिन, मालूम होता है, अभी तुमने शादी करने का इरादा नहीं किया है। अभी पढ़ती हो न ? तभी तो तुम्हें उस आम के वृक्ष की छाया में उगने वाले वे पपीहे दिखाई नहीं देते, जिन्हें उठाकर माली दूसरी जगह रोपता है और थोड़े ही समय में हरे-हरे पत्तों वाला पपीहा फिर वैसा ही वृक्ष बन जाता है।"

इस बात का उत्तर शकुन्तला से बना नहीं। वह चुप हो गई। मां-बाप, पति और संतान अपने इन तीनों युगों से सांस लेती हुई स्त्री कभी भी एक सांस अपने लिए नहीं लेती। यह प्रश्न बातचीत से उभर आया। इस थका देने वाले विचार के साथ ही उसे ग्रेटी का ध्यान आ गया—'ग्रेटी ने सब कुछ दे दिया। स्त्री की नियति सब-कुछ देने में ही है'—शकुंतला सोचती रही।

पथ के दोनों ओर पहाड़ियों पर फूलों से लदी हुई झाड़ियां खड़ी थीं। उन्हें देखती हुई अपने मन को उस प्रश्न से हटाने के लिए वह जार्ज के साथ

अनेक प्रकार के प्रश्न करती, "देखो जार्ज यह कितनी खुशनमा झाड़ी है।" और जार्ज कहता, "काश, इस झाड़ी को उठाके अपने बगीचे में लगाया जा सकता !"

"नहीं, जार्ज तुम नहीं जानते। बगीचे में पहुंचकर शायद इसमें कोई विशेषता ही न रह जाए। यह अनूठी प्राकृतिक वाटिका यहीं अच्छी लगती है।"

जार्ज बात बदल कर कहता, "क्यों बहिन, टिन्नी और पीटर अच्छे हो जायेंगे तो बस थोड़े दिन घूम-फिरकर हम लौट आयेंगे ? क्यों, है न ?"

"लौट आयेंगे ? कहां लौट आयेंगे ?" वह सोचती रही !

पहाड़ी घाटी से दौड़ती हुई गाड़ी जब अंधेरी घुप्प सुरंग में से गुज़रती तो शकुन्तला की छाती धड़कने लगती। सचमुच उसका जीवन इस अंधकारयुक्त सुरंग में दौड़ती हुई इस रेलगाड़ी के समान ही तो है। वह सोचती, 'मेरे जीवन की सार्थकता क्या है ! मैं किसकी तलाश में जा रही हूं ! उन्हों ने एक बार अलग होकर दोबारा झूठे भी याद नहीं किया। वह क्षमा-याचना करते हुए एक चिट्ठी ही लिख देते। इतने में ही इस यात्रा की सार्थकता बन जाती !"

जार्ज का कुतूहल टिन्नी और पीटर के लिए था तो क्या अपनी बहिन को लेकर नहीं हो सकता। अगर शकुन्तला उसे अपने जर्जर मन और उस विचित्र रोग से उत्पन्न होने वाली दयनीय दशा से परिचित करा दे, तो क्या वह उससे सहानुभूति रखेगा ! शकुन्तला ने अपने मन के रहस्य को प्रकट करने की ठान ली, "जार्ज, तुमसे एक बात कहूं !"

जीजी के इस विचित्र कंठ-स्वर से जार्ज चिंतित होकर बहिन की ओर देखने लगा, "क्या है जीजी ?"

"तुमसे एक बात कहूं—जार्ज !"

"हां-हां, तुम तो गुमसुम बाहर ताकती रहती हो, कुछ बोलतीं-सुनतीं ही नहीं हो। न जाने, जीजी, तुम्हारा स्वभाव कैसा होता जा रहा है।"

"मैं कह रही थी—तुम्हें याद है, जार्ज, वह जो कुछ दिन के लिए सामने वाले मकान में आकर रहने लगे थे—वे भी दिल्ली में ही रहते हैं। अगर मिल जाएं तो उनके साथ तुम कैसा व्यवहार करोगे ?"

जार्ज के मासूम चेहरे पर इस प्रश्न को सुनकर तत्काल अपनी जीजी को दुख देने वाली बात न कह सकने की असमर्थता उभर आई थी। शकुन्तला

ने देखा, और जीजी की आंखों में देखते-देखते वह भाव भाई की आंख में आंसू की बूंद बन गया। "जीजी !" वह भरे हुए कंठ से बोला, "क्या यह बात सच है जीजी ! वे तुम्हें इतना अधिक प्रेम करते थे ? और..."

"तुम से पूछती हूं जार्ज, अगर वह दिल्ली में मिल जाए तो तुम क्या करोगे ? उन्हें अपने घर आने दोगे ?" शकुन्तला ने पूछा।

"मैं तो उन्हें पसंद करता था जीजी। कई बार उनके निकट पहुंचने की कोशिश की, पर कुछ ऐसा गंभीर मुंह बनाकर रहते थे कि बोलने का साहस ही नहीं होता था। उस दिन जब वे बीमार हुए और न जाने क्या-क्या बकते रहे—मुझे बड़ा दुःख हुआ था। बाद में सारे मोहल्ले में बुरी चर्चाएं होने लगीं। मैं घर से निकला भी न था। फिर तो वह चले ही गए। मैं तो जाते समय उन्हें देख भी नहीं सका। अब तो अच्छे हो गए होंगे ?"

"अच्छे हुए होंगे ही। कोई चिट्ठी तो नहीं आई," शकुन्तला ने कहा और अपने अंचल से भाई का मुंह पोंछ दिया।

"मुझे मालूम है जीजी ! अच्छे हो गये हैं। श्याम मुझे एक दिन बाजार में मिला था—तो कहता था। पर मेरा उससे झगड़ा हो गया। कहता था—तेरी जीजी हमारे उन बाबूजी के साथ भागने वाली थी। मैंने तड़ से एक तमाचा दिया मुंह पर, तो बेटा गिरा दूर जाकर !"

"यह तो बुरा किया जार्ज, श्याम तो बड़ा अच्छा लड़का था। ऐसी गंदी बात क्यों कही उसने ! सारी दुनिया ही बुरी है जार्ज ! जो जिसके मुंह पर आता है, बिना सोचे-समझे कह डालता है।" उसे पहली बार पता चला कि उस आंधी की झपेट से उसका भाई भी अछूता नहीं रहा है।

रात को खा-पीकर सभी लोग सो गये। शकुन्तला जार्ज के मुंह को देखती रही और उसके द्वारा कही गई बातों पर विचार करती रही और हंसती रही, "हममें से कोई भी इतना बहादुर नहीं था जो श्याम की आशंका को सही कर देता।"

रेलगाड़ी के हिचकोलों पर झूलती शकुन्तला जार्ज के सिर पर हाथ रखे सोई हुई थी कि सहसा उसकी नींद खुल गई। सामने वाली महिला का शिशु खिसकता-खिसकता उसके सीने से आकर सट गया था। नींद में मुसकराता हुआ सुकुमार बालक इस तरह सटा हुआ था जैसे वह उसी की कोख से पैदा हुआ हो। शकुन्तला ने बच्चे को छाती से लगाकर उसके गोल-मटोल मुंह को, पलकों को, रेशम-से मुलायम बालों को चूम लिया। उसके मन में आया कि

बच्चे के मुंह में अपना दूध दे दे।

केवल मन की भावना थी जो सहसा पागल बन-बनकर फिर लज्जा में बदल गई। शकुन्तला ने बच्चा चुपचाप उसकी मां के पास खिसका दिया।

परंतु बाद में उसे नींद आई नहीं। रह-रहकर उस स्पर्श की सिहरन शरीर में अनुभव होती रही। प्रसव-पीड़ा से भरे हुए विभिन्न स्वर उसके कानों में गूंजते रहे और गाड़ी की चाल से निकलते संगीत में खोते रहे।

उसे पता नहीं था कि वह कब सोई थी, परन्तु अब जागी तो इतना ज़रूर सोचना चाहती थी कि रात जो हुआ था और जो कुछ शिशु को लेकर उसने सोचा—वह स्वप्न था—यथार्थ नहीं हो सकता। प्रातःकालीन ठंडी वायु, मंज़िल के निकट पहुंचने का अव्यक्त आह्लाद और परदेश में सर्वथा अपनी ही निष्ठा से सोचने, करने और रहने का स्वस्थ भाव—सब मिलाकर मन के उखड़े-उखड़े होने पर भी बहुत अच्छा लगता था। जार्ज नाश्ता करके बैठा तो चंबल की चित्र-विचित्र टांगें दिखाई देने लगीं। प्राकृतिक सौन्दर्य के वैभव के स्थान पर समतल प्रदेश की श्रमिक सभ्यता दिखाई देने लगी थी। आज का दिन प्रारंभ करते हुए जार्ज ने टिम्नी और पीटर को फिर से याद किया और घर पर सभी के किसी-न-किसी स्थान पर होने और कुछ-न-कुछ करने की कल्पना करके उसने अपने घर वालों को भी याद किया था।

शकुन्तला दुनिया में होते हुए भी जैसे उसमें नहीं थी। एक-एक करके स्टेशन निकलते जा रहे थे और उसके मन की अस्त-व्यस्तता बढ़ती जा रही थी। अंत में गाड़ी दिल्ली की सीमाओं में प्रविष्ट हुई तो शकुन्तला प्रायः हत-चेत हो गई। दिल्ली स्टेशन पर उतरते-उतरते उसे ऐसा लगता था, जैसे वह दिल्ली से वापस जा रही हो।

दिये हुए पते पर पहुंचने तक शकुन्तला ने यही सोचा था कि शायद टिम्नी और पीटर बीमार न हों! उसके बुलाये जाने का कारण शायद वही हो जिसकी कल्पना उसका मन करना चाहता था! घर पर ताला लटकते देखकर उसकी परेशानी इतनी अधिक बढ़ गई कि उसे सहसा सूझ न पड़ा कि वह क्या करे!

"अब क्या करें, जार्ज?" उसने भाई से कहा।

"करें क्या, सामान उतार लो। हां, ज़रा एक बार पता मिलाकर देखो तो? हां-हां, बस तुम पड़ोस में पूछो कि इस घर के लोग कहां गये हैं। जीजी ज़रूर कुछ कहकर गई होंगी। हमारे आने की उम्मीद तो होगी ही। ऐसा

कभी नहीं हो सकता कि कहकर न गई हो !"

भाई की आत्मविश्वास से भरी बातों से शकुन्तला को ढाढ़स हुआ। निकटवर्ती द्वार पर उसने दस्तक दी। एक महिला बाहर निकलीं। उन्होंने बताया कि उनकी प्रतीक्षा करती-करती ही श्रीमती कुमार बीमार बच्चों को लेकर अस्पताल चली गई हैं और उनका नौकर या तो अस्पताल गया होगा या किसी काम से बाजार चला गया होगा, और लौटनेवाला ही होगा।

वे अपने साथ ही जार्ज और शकुन्तला को अंदर ले गईं और बड़ी दिलचस्पी से कीर्ति के साथ अपने स्नेह सबन्धों की चर्चा करती रहीं। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बताया कि उनके पति भी सेना में हैं और कश्मीर में उनका पोस्टिंग मेजर कुमार के साथ ही हुआ है।

श्रीमती लता भारद्वाज ने परिचय में आत्मीयता का पुट देते हुए कहा कि उनके जीवन में बहुत कम अवसर ऐसे आते हैं कि वह अपने पति के साथ रह सकें। वे अजमेर के एक महिला कालेज में प्रिंसिपल हैं और श्रीमती कुमार की अतिशय अनुरोध होने पर भी वे कश्मीर-यात्रा नहीं कर सकेंगी।

शकुन्तला इतनी लंबी यात्रा के बाद द्वार पर पड़े हुए ताले को देखकर जिस तरह मुरझा गई थी, श्रीमती लता भारद्वाज के मधुर व्यक्तित्व से उसकी हो गई। श्रीमती लता सुशिक्षिता थीं, मन की कोमल थीं और उनकी मुखाकृति में, आधुनिक सज्जा के समस्त प्रलेपनों से ढके होने पर भी, एक निर्मल उत्साह की भावना साफ झलकती थी। शकुन्तला ने सोचा कि अगर श्रीमती लता अपनी मुखाकृति को अपनी स्वाभाविक स्थिति में रखतीं, तो कैसा होता ! शकुन्तला का सौंदर्य-शास्त्र अधिक काम नहीं कर सका क्योंकि श्रीमती भारद्वाज नजर उठाते ही उसे अपनी ओर ताकती मिलतीं और थोड़ी देर में तो उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे वे देखने के साथ कुछ हिसाब भी लगाती जा रही हैं।

शकुन्तला उनके सामने से उठ जाना चाहती थी। उसने जार्ज से कहा, "अगर बहुत थक गए हो, तो नहाकर आराम कर लो—मैं कपड़े निकाल देती हूं।"

जार्ज ने स्वीकार कर लिया।

जार्ज और शकुन्तला के स्नान करके फारिग होते-होते घर का नौकर आ पहुंचा था।

अपरिचित अतिथियों को देखकर नौकर सकपकाया नहीं।

"अरे खूब, बीबीजी तो रात-दिन आपका ज़िक्र करती थीं। कहती थीं, मैं अस्पताल नहीं जाऊंगी। शकुन्तला आ जावेगी ! बस, उसके हाथ छूते ही उनका रोग दूर हो जावेगा। सच बीबीजी, अगर वे बाबू इतनी ज़िद न करते तो बड़ी बीबीजी जातीं थोड़े ही अस्पताल।"

शकुन्तला उस नौकर की निश्छल और भावुक आत्मीयता देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उसका नाम पूछा, उसका ठौर-ठिकाना पूछा, उसके बच्चों के बारे में पूछा और कहा, "तो रामप्रसाद, हमें अस्पताल नहीं ले चलोगे ?"

"क्यों नहीं बीबीजी ! लेकिन कार्ड बनवाना होगा। अस्पताल में तो कोई भी कार्ड के बिना जा नहीं सकता। कार्ड बनवाने तो आपको ही चलना होगा। वह बाबू होता तो हम उससे बनवा लेते, पर वह लखनऊ चला गया। अजी, उसे सभी जानते हैं। मिस साहब भी सलाम करती हैं। हमारी बीबीजी तो इतना घबरा गई थीं कि साहब को तार देने लगीं। वह बाबू तारघर में ही तो मिला उन्हें—बड़ा अच्छा आदमी है !"

"कौन है वह बाबू ?"

"ये तो पूछा नहीं बीबीजी। घर में जो आता है—घर का ही आदमी होगा।"

"साहब के रहते हुए भी तो आता होगा ?"

"नहीं बीबीजी। साहब तो झांसी से आकर ठहरे ही कहां ! बस घूमते ही रहे और चले गये। कहते थे—रामप्रसाद, तुम सबको हम कश्मीर बुला लेंगे। अब तो आप भी चलेंगी न बीबीजी ?"

शकुन्तला के मन में आया कि वह उस बाबू की चाल-ढाल पूछकर यह पता लगा ले कि वह बाबू आखिर है कौन जो मि० कुमार का परिचित न हो कर भी जीजी के इतना निकट आ गया। लेकिन रामप्रसाद की वह मासूम लापरवाही इस तरह अभेद्य हो उठी कि उसका कुतूहल झक मार कर रह गया। शकुन्तला ने कहा, "रामप्रसाद, बच्चों की हालत कैसी है ?"

"अरे शाम को चलना बीबीजी। मिस साहब से कहेंगे, वे आपको मिलने देंगी। चेचक थी। बस तीन दिन ही ज़ोर रहता है। शीतला माता सब कृपा करेंगी। बस, छुट्टी होने में देर ही क्या है···कल का दिन बीच में है।"

"क्या बीबीजी ऐसा कहती थीं ?"

"बीबी तो नहीं, मिस साहब कहती थीं। वह तो इतनी घबरा गई थीं कि···अरे बाप रे बाप ! अच्छा, तो आप क्या खाएँगी ? हां, मिस्टर साहब से

पूछना चाहिए ! क्यों साहब ? बस, मिनटों में तैयार करता हूं।"

पंखे के नीचे को कोच पर पैर फैलाकर जार्ज जो लेटा तो ऐसा सोया कि रामप्रसाद का प्रश्न स्वयं में ही गूंजकर रह गया। जार्ज को गैर-आराम सोते देखकर रामप्रसाद के मन में वात्सल्य उमड़ आया और तौलिया कंधे पर डालता हुआ वह जार्ज की ओर बढ़ा, "सफर भी सजा है न ! साहब एक दिन कह रहे थे—रात-दिन का सफर है। तो फिर यहीं सोने दें बीबीजी ?"

"हर्ज क्या है। ये कुछ खायेंगे नहीं। उठेंगे तो थोड़ा नाश्ता कर लेंगे। चाहो तो वैसी कोई चीज़ तैयार कर लो। सुनो, क्या हम टेलिफोन से बीबीजी से बातचीत नहीं कर सकते ?"

"क्या मालूम बीबीजी ! पास वाले सहाब के यहां है तो फोन—करके देखें।"

कीर्ति के स्वर से खुशी छलकी पड़ती थी। उसने टेलीफोन पर ही चुम्बन अंकित कर दिया था। पीटर और टिन्नी के ठीक होने की बात कही और कहा कि कल तक पीटर की छुट्टी हो जाएगी और अंत में कहा, "एक बात और कहूं शिक्की !"

"हां कहो, सौ कहो !"

"तेरा दिल न फेल हो जाए शिक्की ! इसलिए सम्भलकर सुनना !"

"हां-हां, तुम निश्चिंत होकर कहो जीजी। इतना कमज़ोर दिल होता तो कब का फेल हो गया होता।"

"दिवाकर से मिलोगी ?"

"नहीं।"

"इतनी बेरहम न बनो शिक्की। दिवाकर बहुत बदल गया है। मुझे दिवाकर के प्रेम के नए स्वरूप के दर्शन हुए। मैं तुमसे मिलकर बताऊंगी प्रिय ! उसका टेलीफोन लिख लो—वह लखनऊ गया था। पूछना, वापस लौटकर आया या नहीं "

"हो जायगा जीजी। बताओ, बच्चों के चेहरे तो ठीक हैं न ?" पर अंदर ही वह भरी जा रही थी।

"हां, ज्यादा-से-ज्यादा ठीक हैं। ओफ, अगर उस दिन टेलीग्राफ आफिस में दिवाकर संयोग से न मिला होता तो मेरा क्या होता—कौन जाने ! अच्छा शाम को आना। जार्ज को प्यार कर देना। कहना, टिन्नी बहुत जल्दी अच्छा हो जाएगा।"

टेलीफोन फिर बंद हो गया। शकुन्तला प्रसन्न थी। बस, उसके लिए शायद इतना ही काफी था कि दिवाकर वहां था। नहीं था, तो भी बहुत जल्द आ जाएगा। शायद उसका अनुमान ठीक ही था कि दिवाकर से मिलकर ही कीर्ति ने उसके नाम से तार किया है। टेलीफोन करके शकुन्तला जाने लगी तो श्रीमती लता ने पूछा, "बहुत बातें हुईं बहिन से ?"

"आप सुन तो रही थीं !"

"बच्चों की तबीयत बिगड़ गई है क्या ? आप कहती थीं कि दिल मज़बूत है। क्या चेहरे बहुत बिगड़ गए हैं ?"

शकुन्तला मुस्करा उठी।

"जी नहीं, वह तो कुछ और ही बात थी, बच्चों के चेहरे तो प्रभु की दया से ठीक हैं।"

लौट आने पर भी शकुन्तला की मुखाकृति हास्य में डूबी हुई थी। जार्ज सोकर उठ गया था। शकुन्तला ने दोनों बांहें भाई के गले में डाल दीं और इतने ज़ोर से घुमाया कि उसकी चीख निकल गई।

"क्या हो गया जीजी ?"

"अरे मुन्ने, जीजी से बातें हुई हैं। कल पीटर को छुट्टी मिल जाएगी। थोड़ी देर में जीजी के पास चलेंगे। यह खुश होने की बात नहीं है ?"

जार्ज का चेहरा खिल उठा।

शाम दूर नहीं थी, पर शकुन्तला बार-बार घड़ी की ओर देखकर अंदर ही अंदर उद्विग्न हो उठती थी और शाम को जब सब लोग अस्पताल पहुंचे, तो कीर्ति जैसे पागल हो उठी। रामप्रसाद मुंह पर एक भूली हुई मुस्कान लिये इस प्रेम-प्रसंग में इस तरह खो गया था जैसे उसने आज तक प्रेम देखा ही नहीं था। जिस समय कीर्ति ने कहा कि वह बाहर ठहरे तो सहसा चौंक उठा और क्षमा मांगता हुआ बाहर चला गया। जार्ज टिन्नी को देखना चाहता था, लेकिन इजाज़त न होने से मन मारकर वह अस्पताल के लॉन में चला गया और रामप्रसाद को फूलों की किस्में बताता हुआ कालिज के बगीचे से उसकी तुलना करने लगा।

कीर्ति प्रतीक्षालय के कोने में बैठकर अपनी बहिन को कह रही थी, "दिवाकर का मिलना मेरे जीवन की एक अजीब घटना है शिकी, जिसे मैं जीवन-भर भूल नहीं सकती। तार देने के लिए जब मैंने हाथ आगे बढ़ाया तो उसकी बांह से छू गया। चौंककर उसने पीछे देखा और देखता ही रह

गया। मैं पहले तो सकपका गई, पर पीछे सूझने लगा कि चेहरा परिचित है —बहुत परिचित है! मैं उस ऊहापोह में तार देना भी भूल गई। दिवाकर ने कहा, "आप यहां कैसे?" मैंने नमस्कार किया। तो उसने तार मेरे हाथ से ले लिया। पढ़कर बोला, "बच्चे बीमार हैं?" मैंने परेशानी बयान करते हुए कहा, "मुझे खेद है कि मि० कुमार अभी कश्मीर पहुंचकर संतोष की सांस भी न ले पाए होंगे कि तार देकर बुलाना पड़ रहा है।" तो बोले, "मेरे यहां रहते आप इस जगह को परदेस नहीं मान सकतीं—हर्गिज नहीं। तार देने की जरूरत नहीं है। मि० कुमार की बेचैनी की कल्पना तो कीजिए!" फिर दो-तीन दिन तक इस तरह खिदमत की कि मि० कुमार शायद कभी न कर पाते। मेरी आत्मा में एक अजीब आत्म-विश्वास पैदा होने लगा। तभी तो तुझे तार दिया शिवकी। परसों ही तो मुझ से आज्ञा लेकर लखनऊ गए हैं हज़रत! मैं तो कहती हूं—हर पत्नी को ऐसा पति मिले।"

"शान्ता के साथ ही रहते हैं?" शकुन्तला ने पूछा।

"नहीं तो। कहते थे कि शान्ता के साथ नहीं रहते।"

"तो फिर यह कोई मजाक है कि आज एक, कल दूसरा। पूछा नहीं—कोई उसूल भी है जीवन का?"

"शिवकी, तू पूछ सकेगी? हां जी, तू क्यों न पूछ सकेगी! मुझे अधिकार भी क्या था, जो मैं पूछती। जितना मेरे हाथ में था—कर दिया। तार देकर बुला लिया तुम्हें। अब तुम जानो!"

"अच्छा देखा जाएगा। एक बात बताओ—बच्चों की सूरत भी देखने को मिलेगी कि नहीं?"

"नहीं, मैं ही सिर्फ एक बार देख पाती हूं।"

"तो फिर कल से मैं रहूं—तुम बहुत थक भी गई होगी।" शकुन्तला ने कहा।

"नहीं, कुछ भी करना नहीं होता। थकान तो तुम लोगों को देखते ही मिट गई!" फिर बाहर निकलकर जार्ज को सम्बोधन करती हुई बोली, "ओ बाबू साहब, सारी बागबानी आज ही सिखा दीजिएगा इस गरीब को।"

शकुन्तला भी उठकर बाहर आ गई। कीर्ति ने कई-एक बक्सों की चाबियां भी शकुन्तला को दे दीं। निश्चित होकर रहने और रामप्रसाद को फ़िक्र के साथ मकान बंद करके सोने की ताकीद कर दी।

सब लोग फिर घर पर ही आ पहुंचे। शकुन्तला सोचती थी, ऐ[illegible]

ाया जाय कि उद्विग्नता छिपी रहे और दिवाकर के मन का पता भी चल
ाए। कीर्ति के दिए हुए नम्बर पर उसने टेलीफोन करने की ठान ली। पर
न में असमंजस था कि टेलीफोन तो वह कर लेगी लेकिन अगर वे हुए तो
ीमती लता की उपस्थिति में वह क्या बातें कर सकेगी! न सही बातें,
नका स्वर ही सुनने को मिल जाएगा!

टेलीफोन की घंटी बजती थी और उस की पेशानी पर पसीना आता
हा था। श्रीमती लता ने उठकर पंखा खोल दिया तो वह और भी अचकचा
ई। थोड़ी ही देर में उसने टेलीफोन रख दिया। श्रीमती लता ने पूछा,
'क्यों, मिला नहीं?"

"मिला तो, कोई बोलता ही नहीं है।"

"ठहरिए, मैं देखती हूं क्या नम्बर है, बुलाना किसे है?"

"मि० दिवाकर!"

"कौन दिवाकर—वह जो एकाध बार यहां भी आए हैं।"

"जीजी कहती थीं कि आए हैं।"

"आप कैसे जानती हैं उन्हें? आप की दिलचस्पी भी राजनीति में है
क्या? आप भी कामरेड हैं?"

"मैं तो जो कुछ दिखाई देती हूं वही हूं। क्या कामरेड होना ठीक नहीं
आप की नजर में?"

"आप ऐसा क्यों समझती हैं? हम सभी कामरेड हैं। मैंने इसलिए पूछा
कि दिवाकर तो बड़े कामरेड हैं। आप उन्हें राजनीतिक कार्यकर्ता की हैसि-
यत से जानती हैं?"

"जानती ही हूं—अपनी हैसियत तो कुछ है नहीं।"

इतना कहकर शकुन्तला ने बात तो टाल दी, पर उसकी आंखें नीची
हो गईं।

श्रीमती लता भारद्वाज ने डायल घुमाते हुए कहा, "आप बताने में
झिझकती क्यों हैं—किसी को जानना कोई ऐसी बात नहीं कि बताई न जा
सके। शायद इस जानने में कोई विशेष कोमलता है तो हम पूछें भी क्यों?
सिर्फ सिदनत करके ही संतोष क्यों न कर लें?" फिर चेहरे पर शरारत
भरकर वह टेलीफोन के उत्तर में बोलीं—

—जी, मैं मिस शकुन्तला बोल रही हूं!

—मैं नागपुर से आई हूं। कुछ बहुत जरूरी परामर्श करने हैं मि०

दिवाकर से !

—आज लौटेंगे ?

—किस समय लौटेंगे ?

—अगर नामुनासिब न समझें तो कह दीजिएगा कि मिस शकुन्तला जोज़ेफ का टेलीफोन आया था।

—जी हां, मैं जल्दी ही लौट जाऊंगी। जी, हो सका तो आपके दर्शन करूंगी।''''''जी, अपनी संस्था लोकप्रिय हो रही है'''मैं आप का नाम जान सकती हूं ?'''बड़ी खुशी हुई आपका परिचय प्राप्त करके। माफ कीजिए ! मैंने आप का नाम नहीं सुना—मि० दिवाकर ने ज़िक्र ही नहीं किया—और श्रीमती लता भारद्वाज ने टेलीफोन रख दिया। शकुन्तला ने पूछा, "कौन बोलता था ?"

"कोई कामरेड थी श्रीमती कपूर ?"

"गजब कर दिया आपने श्रीमती जी," शकुन्तला ने डायल घुमाते हुए कहा, "आपको पता नहीं कि आप किससे बोल रही थीं; और इतनी बातें मेरी ओर से कर डालीं।"

श्रीमती लता अपनी कुशलता पर प्रसन्न न हो सकी।

—हलो, बहिन। देखिए, मैं शकुन्तला बोल रही हूं। अभी-अभी मेरी बड़ी बहिन की सहेली मेरी ओर से बोल रही थीं। क्षमा कीजिएगा—आप जानती हैं—मेरा राजनीति से कोई भी संबंध नहीं। आपसे मिलने की बहुत बड़ी साध थी।

—जी हां, सोचा यहां आई हूं तो आप लोगों के दर्शन भी हो जाएं। '''तब तो आप दोनों ही पधारें।"

शकुन्तला वापस आकर सोचती रही—यह भी क्या भाग्य का विधान है।

भाई-बहिन खाना खाकर सोने की तैयारी में ही थे कि बाहर से घंटी बजी। शकुन्तला इतनी रात को किसी विशेष व्यक्ति के आने की कल्पना न करके इस प्रतीक्षा में थी कि रामप्रसाद जाए और आने वाले को विदा कर दे तो निश्चिंत होकर सोने जाये। पर रामप्रसाद विदा करने की अपेक्षा दौड़कर आया और बोला—बीबी जी, आप को पूछते हैं !"

शकुन्तला उठकर बरांडे में पहुंची—जहां वह आने वाला खड़ा हुआ था। शकुन्तला के सामने आते ही वह बोला, "आप का समाचार मि०

दिवाकर को मिल गया है। उन्होंने बच्चों की हालत पूछी है और कहा है कि इस समय बहुत अधिक थके होने के कारण वे नहीं आ सके। सवेरे आप उनकी प्रतीक्षा करें।"

संवादवाहक अत्यंत सभ्य और संयत स्वर में बोल रहा था। शकुन्तला के लिए उसके जीवन का एक बहुत महत्त्वपूर्ण समाचार सुना रहा था। उसने उचित समझा कि उसे बैठाकर सब बातें सुने और अपनी कहे।

बातचीत में एक उड़ती हुई दिलचस्पी लेता हुआ—वह सुनता रहा और संवाद ले कर चला गया। शकुन्तला ने रामप्रसाद से कहा, "देखो, जिन बाबू की तुम तारीफ करते थे, वह कल चाय यहीं पियेंगे !"

रामप्रसाद कृतज्ञ भाव से आदेश स्वीकार करता हुआ सोने के लिए चला गया। सवेरे उठते ही उसने याद दिलाया कि वह अस्पताल में आवश्यक सामान जुटाने के लिए लगभग दो घंटे के लिए वहां व्यस्त है और आठ बजे से पहले नहीं लौट सकता।

लेकिन शकुन्तला को उससे कोई असुविधा न होते देख कर रामप्रसाद बहुत ही प्रसन्न हुआ और दोनों जगहों के लिए कलेवे का सामान जुटाने लगा। अपना सामान साथ लेकर रामप्रसाद जाने ही वाला था कि दिवाकर आ पहुंचा।

रामप्रसाद को ठिठकते देखकर दिवाकर ने कहा, "कोई तकल्लुफ़ नहीं है रामप्रसाद। तुम अस्पताल जाओ। बीबीजी से हमारा नमस्कार कहना।" और उसने अंदर कदम रखा, तो पाया कि चार आंखें, उसकी प्रतीक्षा में थीं। जार्ज प्रातःकालीन अभ्यर्थना करता हुआ दिवाकर के समीप आया। शकुन्तला ने कहा, "जार्ज का आपसे परिचय नहीं हुआ है। यह मेरा मंझला भाई है।"

जार्ज से हाथ मिलाते हुए दिवाकर ने कहा, "मैं जार्ज को अच्छी तरह जानता हूं। उसका व्यक्तित्व ही ऐसा है कि खामखां उसे जानने की बात मन में आती है।" जार्ज बहुत लजा गया।

दिवाकर बोलता ही जा रहा था, "कहो जार्ज, कब चले घर से ? मां कैसी हैं ? पतंग उड़ती है तुम्हारी ? अरे, आधा वक्त मेरा तुम्हारी पतंग के देखने में नष्ट होता था।" इतने जार्ज उत्तर दे रहा था, दिवाकर ने शकुंतला से कहा, "मिस ग्रेटी यंग कैसी हैं ?"

शकुन्तला ने कहा, "सब अच्छे हैं···आप को याद करते हैं।"

आवाज़ कुछ सर्द थी। दिवाकर ने शकुन्तला की आंखों में देखा—वही उज्ज्वल प्रकाश उनमें छाया था, पर उनमें विराग था, उलहना था, संभ्रान्त उपेक्षा थी और एक आत्मीयता भी थी—जो शायद अब तक उसने कभी भी न देखी थी। उन आंखों का जादू जो समय के व्यवधान से हट गया था, अब दोबारा उस पर सवार होने को था। वह क्षमा-याचना करता हुआ बोला, "मेरा पत्र मिला आपको ?"

"नहीं !" और वह उठ कर दूसरे कमरे में चली गई—जहां जार्ज फलों की टोकरी की अभ्यर्थना कर रहा था। शकुन्तला के आने की आहट सुनकर ही वह बोला, "जीजी, मैं एक सेब लेता हूं—फिर चाहे चाय जब बने।" और आप पीछे के दरवाज़े से बाहर जाने लगा। शकुन्तला ने दुर्घटना को भांपते हुए उसका हाथ पकड़ लिया, "इधर कहां—जाना है तो सीधे रास्ते से जाओ। कुछ अक्ल है सिर में ?"

जार्ज अपराधी बन गया। हाथ में कुछ पुरानी पत्रिकाएं उठाईं और खिड़की खोलकर वह उन्हें उलटने-पुलटने लगा। शकुन्तला ड्राइंग-रूम में पहुंची तो देखा, दिवाकर रसोई में पहुंच गया है और चाय के तीन प्याले ट्रे में रखे हुए हैं।

"यह क्या हरकत है ?" शकुन्तला ने सख्त आवाज़ में कहा।

"जब एक भी पत्र तुम्हें नहीं मिला तो मुझे कल्पना कर लेनी चाहिए थी कि चाय स्वयं बनाकर पीनी पड़ेगी।" दिवाकर ने कहा।

"ऐसा क्या लिखा था पत्र में कि उसके पीछे इतनी बड़ी निर्ममता को छिपाने की कल्पना करते हो। मैं तो तार की सूचना पाकर ही समझ गई थी कि दूरी हो गई है। स्वाभाविक भी है। दोष मेरा है कि मृग-मरीचिका में फसी डोलती हूं। आप अगर इस तरह नागपुर पहुंचते तो शायद मैं मौत के बिस्तर पर से भी तड़पकर उठ बैठती। पर वह मेरा पागलपन होता —जानती हूं···" आगे उसकी आवाज़ भर्रा गई।

"शकुन्तला···मेरा पत्र तुम्हें नहीं मिला है—इसी से मन भारी कर रही हो। यह साथ तो जीवन-भर के लिए हुआ था···उसे कोई छुड़ा नहीं सकता।"

"क्या भरोसा है···आप का ! शान्ता से भी तो ऐसा ही नाता जोड़ा था। पर दुनिया में सभी शान्ता नहीं हैं कि उन्हें जैसा दिवाकर वैसी दुनिया !"

"मैं कहता हूं तुम जल्दी में निर्णय कर रही हो शकुन्तला। अगर धैर्य के साथ बैठकर मेरी बातें सुनोगी—तो शायद तुम्हारे मन में मेरे लिए सहानुभूति पैदा हो। प्रेम बड़ी चीज़ है मानता हूं—पर प्रेम के समान ही दूसरी चीज़ें भी हैं जो कभी-कभी इस पवित्र संकल्प को भी कुर्बान कर देने पर बाध्य कर देती हैं। अब तुम आ गई हो तो अपनी बात कहूंगा। अगर मेरे दुर्भाग्य ने पीछा छोड़ दिया तो तुम्हारी समझ में सब-कुछ आ जायेगा। तुम तुम नहीं जानतीं मैंने कितना सहा है—बस फर्क इतना ही है कि चौराहे पर खड़ा होकर रोया नहीं गया।"

"सही है। यह तो सूरत से ही अच्छी तरह दीख रहा है। लेकिन यह सूरत क्या बनाई है। पतलून की किनारियां फटी हुई हैं, कमीज़ की आस्तीन गल गई हैं। आंखों पर स्याही पुत गई है। क्या शान्ता ने बहुत दिन पहले शादी कर ली थी।"

"शादी ? किससे ?"

दिवाकर के गंभीर चेहरे पर हास्य खिल उठा। वह बोला, "वह तो नीना कपूर है। किसे उसका पति बना दिया ! उसका पति तो विलायत गया हुआ है।"

"यही तो हुआ, मैं कहना चाहती थी कि क्या आपके पति लखनऊ गए हुए हैं, आप क्या कपूर नहीं हैं ? अच्छा हुआ, नहीं कहा।"

दोनों मिलकर देर तक हंसते रहे। दिवाकर ने चाय की चुस्की भरते हुए कहा, "किसी दूसरे को अगर किसी का पति समझ लिया जाए तो कैसा लगता होगा ? किसी गैर को किसी का पति बना दिया जाना निश्चय ही किसी को भी अच्छा तो लग नहीं सकता। कोई-कोई तो बुरा भी मान सकती हैं। रिश्ते का बड़ा महत्त्व होता है और फिर रिश्ते से तो मानसिक संबंधों की स्थापना हो जाती है। श्रीमती नीना कपूर बड़ी सहनशील हैं कि दूसरे पुरुष से पति का रिश्ता बना दिए जाने पर भी अविचलित रह सकीं। वह बड़ी शानदार लड़की है। बड़ी भयानक बातें करती है। मुझ में तो साहस नहीं कि उससे बातें कर सकूं, तुम मिलोगी तो बड़ी खुश होगी !"

"मुझे तो बिना मिले ही खुशी है। साहस की बात कहकर कितनी भूली हुई बात याद करा दी। छोटी कहती थी कि आप बड़े ही कापुरुष हैं। आदमियों-जैसा साहस तो है ही नहीं ! न जाने लोगों ने इतना बड़ा कामरेड कैसे बना दिया है !"

"मिस ग्रेटी ठीक कहती हैं। मुझे कापुरुष होने से पहले यह भी विश्वास नहीं होता कि मैं पुरुष भी हूं। कभी-कभी आप लोगों को देखकर ही विश्वास होने लगता है कि शायद पुरुष हूं ही। वरना...पर तुमने बताया नहीं, उनके हाल-चाल कैसे हैं !"

शकुन्तला की आंखों में जैसे शरबत घुल गया। आंखों में आई तरुण शरारत के भाव को छिपाती हुई वह बोली, "चाय और बनाती हूं। ग्रेटी का हाल पूछ कर क्या करेंगे ! औरतों की कौम ही सताई जाने के लिए है ! किसी से प्रेम किया...प्रेमी महोदय विश्वासघात कर गए। पर ग्रेटी मेरे-जैसी फूहड़ नहीं है। दुनिया से टकराना जानती है। सुनिए, आपको एक बात जानकर बहुत आश्चर्य होगा !"

"क्या ?"

"मैं ग्रेटी से हमेशा के लिए लड़ बैठी हूं। कितना कोमल हृदय पाया है उसने। और बात भी क्या थी ? कहने लगी, 'तेरा दिवाकर ऐसा है, वैसा है।' और जो कुछ उसने कहा था उसमें गलत भी कुछ नहीं था। मैं ही नासमझ झगड़ बैठी। आते हुए उससे मिलकर भी तो आई नहीं। क्या सोचती होगी ?"

"देखो, उन्हें चिट्ठी लिखो, फौरन। और मेरी तरफ से लिखना कि मैं वाकई बहुत निकम्मा आदमी हूं—चाहता हूं कि उनकी शिष्यता ग्रहण करके कुछ साहस पैदा कर सकूं।"

दिवाकर ने व्यग्र होकर शकुन्तला के हाथ पर अपना मस्तक रख दिया। शकुन्तला के मस्तिष्क में से अभी ग्रेटी हटी नहीं थी। वह स्नेहपूर्वक दिवाकर का मस्तक ऊपर उठाती हुई बोली, "मैं आपसे पूछती हूं—क्या पुरुष केवल प्रेम का अभिनय ही करना जानते हैं। उनमें सचाई क्यों नहीं होती ? ग्रेटी बर्बाद हो गई। आजकल एक पादरी साहब उसके पीछे पड़े हुए हैं। जब वक्त अच्छा था शादी करने योग्य आयु नहीं थी, और अब रास्ता-चलते तो मिलते हैं पर उम्र-भर का साथी कोई नहीं मिलता।"

"इस तरह तीर न बींधो शकुन्तला। मैं रास्ते-चलता आदमी नहीं हूं। मैं विश्वासघाती नहीं हूं। मैं क्या हूं—यह तो आज तक जान नहीं सका। हां, इतना जानता हूं कि मैंने जीवन का एक क्षण कभी अपने लिए बिताने की कोशिश नहीं की। मैं हमेशा से मानता आया हूं कि कुछ लोग दुनिया में ऐसे जरूर होने चाहिए जो अपने लिए जीना भूल जाएं !"

आगे दिवाकर की भावुकता जाग उठी, और वह चाय पीकर मेज़ से उठकर खिड़की में चला गया और फिर आंखें नीची करके दीवार के सहारे-सहारे घूमने लगा। बोला, "मेरा विचार है अगर आदमी अपने बारे में कुछ न कहकर, व्यवहार से, यथार्थ आदर्श से यह प्रकट करे कि वह क्या है तो बेहतर होता है। यों दुनिया में ऐसे नेक-दिल भी हैं—जो अपने प्रेमास्पदों के झूठ में भी उत्साहपूर्वक विश्वास करना चाहते हैं।···सच शकुन्तला, मिस ग्रेटी यंग ठीक कहती थीं कि मैं बड़ा कापुरुष हूं!"

शकुन्तला का चाय पीना बंद हो गया। हालांकि दिवाकर ने शब्दों से ऐसा कुछ भी न कहा था जिस पर घबराहट उसके मन में आती, पर चेहरे से लगता था कि अभी-अभी जो दिवाकर उसकी गोद में आ गया था, उछल कर फिर एक ऊंची चट्टान पर बैठ गया है, जहां वह उसे छू भी नहीं सकती। शकुन्तला भी उठकर खिड़की में आ गई। बोली, "आप यह भी तो विश्वास करें कि दुनिया में और लोग भी इस सिद्धांत को मान सकते हैं। कई बार आदमी का विवेक उसके मन पर काबू नहीं पा सकता। आप नहीं जानते—मेरे पिछले दिन कितनी बेचैनी से बीते हैं! आप चले आये! और मैं उस याद को भयानक-से-भयानक स्थिति में भी सहेजकर न रख पाती तो क्या आप कभी मेरी याद करते! मैं कहती हूं—इस तरह तो जीवन क्या हुआ, एक अनिश्चित सफर हुआ। और प्रेम! मेरी समझ में ही नहीं आता—क्यों यह सनक आदमी के सिर पर चढ़ जाती है। जबकि लोग स्त्री और पुरुष के संबंधों को केवल यौन-आकर्षण के गुरुत्व से बंधा मानते हैं। प्रेम के लिए अपने को बलिदान करना निरी मूर्खता है। मूर्खता ही क्यों, अपराध भी है! अपनी उस वृत्ति के प्रति जो विकासोन्मुख है, और प्रकृति के संपर्क-व्यापार से नित-नवीन रूप धारण करती रहती है। इस सिद्धांत के मातहत प्रेम और प्रेमास्पद, बदलने में बड़ी सुगमता होती है—इसमें संदेह नहीं!"

दिवाकर टहलता-टहलता रुक गया। शकुन्तला के निकट आकर बोला, "यह क्या कहने लगी हो?"

"क्यों, कुछ न कहूं। बस, रोती रहूं?" उसकी आंखों में आंसू छलक आये।

"इस तरह आंखों में आंसू कोई देखे तो? रामप्रसाद ही आ जाये अगर, जार्ज या पड़ोसिन ही किसी काम से आ निकलें। कहें तो अहतियात के लिए फाटक बंद कर दूं—जब तूफान उतर जाय—तो फिर···!"

दिवाकर इस विचार को कार्यरूप में बदलने लगा था कि शकुन्तला ने बांह पकड़ ली, "देखिए मिस्टर'''आप बहुत बेरहम आदमी हैं। सचमुच यह मेरी भूल हुई कि मैं दिवाकुसुम पाने चल पड़ी हुई।"

"तुम्हारे मन से बातें निकलती नहीं।" दिवाकर ने व्यग्रतापूर्वक कहा, "मैं सब समझाकर कहूंगा। मैंने तुम्हारे सिवा कभी किसी का स्वप्न नहीं लिया—कैसे बताऊं तुम्हें ?"

शकुन्तला की ओर एक कदम बढ़कर दिवाकर फिर रुक गया। बाहर आहट हो गई थी। शकुन्तला अपना आंसुओं से भरा मुंह धोने गुसलखाने में चली गई। जार्ज आ पहुंचा था। अपने खूबसूरत बालों को ऊपर टास करता हुआ और उसके पीछे श्रीमती लता भारद्वाज आ पहुंची थीं। शायद वह नहाकर आई थी, और काफी लापरवाही से उन्होंने अपनी साड़ी कंधे पर फेंकी हुई थी। उनकी मांग में सिंदूर की लाली और माथे पर टिकुली—ऐसी लगती थी जैसे चांदनी रात के घर ऊषा मेहमान बनकर आ पहुंची है। शकुन्तला अंदर से आई तो उन्हें देखकर ठगी रह गई। श्रीमती लता भारद्वाज बोली, "आप तो कुमारीजी, बड़ी बेमुरव्वत मालूम पड़ती हैं। अच्छा होता, पहले ही दिन आपसे कह देती कि यहां कोई कुमार'''"

अपनी बेतकुल्लफी के उस दौर में वह कहां तक जाती, कौन जाने—अगर शकुन्तला ने दिवाकर की ओर संकेत करके श्रीमती लता भारद्वाज का परिचय कराना प्रारंभ न कर दिया होता।

दिवाकर, ठीक दाईं ओर, कोच पर इस तरह उपस्थित था जैसे फूल पर तितली—और अब तो उसके चेहरे पर एक रस्मी किस्म की मुस्कराहट भी उभर आई थी। इसलिए कहना चाहिए कि वह गिरगिट की तरह उस कोच के रंग में अंतर्धान हो जाना चाहता था। श्रीमती लता अचानक लजा कर चुप हो गईं।

सब लोग मेज के नजदीक आ गये और चाय की खुशबू फिर महक उठी और श्रीमती लता के पीछे-पीछे बहुत-सा कलेवा भी मेज पर आ उपस्थित हुआ, जिसकी अगवानी करती हुई वे इतनी बेतकल्लुफ हो उठी थीं।

कुछ दो-चार बातें लोक-व्यवहार के नाते हुईं। फिर मजलिस उखड़ गई। शकुन्तला जाते समय दिवाकर से कुछ भी न कह सकी। श्रीमती लता का वह रूप आज उसके कलेजे में बिंध गया।

लगभग ग्यारह बजे पीटर को लेकर रामप्रसाद लौटा। दूर से ही उसकी

क्षमा-याचना जारी थी। वह बहुत-सी बातें कहता रहा, लेकिन शकुन्तला और जार्ज ने कुछ भी नहीं सुना। वे पीटर में उलझ गये। शकुन्तला ने पीटर को छाती से ऐसा चिपकाया कि उसकी आंखें बंद हो गईं। एक साथ अनेक प्रश्न—टिन्नी कैसा है, ममी कब आयेंगी और ऊपर से चुंबन। बालक चुप-चाप मुंह छिपाकर गोद में लेट गया।

उस दिन दिवाकर गया तो दो दिन तक नहीं आया। नीना कपूर का टेलीफोन आया था। उन्होंने दिवाकर के बहुत व्यस्त होने की बात कही थी और अपने आने के वायदे के साथ-साथ शकुन्तला से भी आने का इसरार किया था।

इसी बीच कीर्ति टिन्नी को लेकर आ गई। टिन्नी कुछ बड़ा हो गया था। चेचक निकलने से उसके चेहरे पर हल्के-हल्के दाग पड़ गये थे। मि० कुमार का पत्र आया था और उस पत्र के साथ कश्मीर की सुषमा जैसे उस घर में आ बसी थी। श्रीमती लता के पास भी उसी दिन पत्र आया उसमें यहां तक लिखा था कि लता अपना काम-काज छोड़कर श्रीमती कुमार के साथ रहे। कुछ फख्र और कुछ अपनी महत्ता जताने के लिए श्रीमती लता अपना पत्र भी लेकर कीर्ति के पास आ गईं और इस तरह पूरा परि-वार देर तक आनंद-सागर में डूबता-उतराता रहा।

शाम को एक अजीब घटना घटी। खा-पीकर सब लोग घूमने गए तो रामप्रसाद ने बिस्तर लगाये तीन। उसने सोचा, पीटर छोटा बालक है—बीमारी से उठा है—उसके लिए अकेले सोना ठीक नहीं। घूमकर लौटते-लौटते टिन्नी सो चुका था और पीटर भी उनींदा हो रहा था। बिस्तर पर लेटते ही वह भी नींद में घुप्प हो रहा। कीर्ति ने कहा, "शिक्की, एक को तू अपने पास सुला लेना!"

इतना कहकर कीर्ति अपने काम में लग गई। पर न जाने क्यों शकुन्तला के लिए वह बात समस्या बन गई कि वह कौन-से बालक को अपने पास सुलाए और पलंग की पाटी पर बैठकर वह अंदर-ही-अंदर खो गई। कीर्ति की निगाह उधर गई। उसने तड़पकर पुकारा, "शिक्की, क्या बात है?"

शकुन्तला चौंक कर उठ बैठी।

"इतनी देर बाद भी तुम निर्णय नहीं कर सकीं कि कौन-से बच्चे को अपने पास सुला सकोगी…न जाने तुम्हारे दिमाग में क्या भूसा भरा हुआ है!"

बड़बड़ाती हुई कीर्ति कमरे में घूमती रही। "न जाने लोगों के पास

कौन से नैतिक मान हैं पाप और पुण्य को नापने के लिए ? कानून, कानून की कसौटी पर मनुष्यता को कसते हैं ! मेरे लिए दोनों ही मेरे अपने रक्त के टुकड़े हैं—मैंने उन्हें अपने शरीर से बनाया है !" और फिर शकुन्तला के निकट आकर बोली, "जाओ, अपने पलग पर। कोई भी तुम्हारे पास नहीं सोयेगा।"

शकुन्तला के आश्चर्य की सीमा न थी। कैसे कीर्ति ने उसके मन की बात पहचान ली। आंखों में आंसू आ गये। सचमुच अगर उसके आचरण से कीर्ति जीजी के मन मे वैसी बात आ गई है, तो उन्हें कितना दुःख होगा, पर वैसी बात तो बिल्कुल नहीं थी। आज सवेरे श्रीमती लता के माथे पर की टिकुली और उनकी माग में झलकने वाला सिंदूर उसकी आखों के सामने आ गए थे। गाड़ी में संयोग से खिसककर अपनी छाती से आ लगनेवाले शिशु के प्रति अपने आचरण की बात सोचती-सोचती वह कल्पना में खो गई थी।

बड़ी अपराधिनी-सी वह उठी और जीजी के कंधे पकड़ कर बोली, "तुम्हें जो अपराधी माने, उसको सात पुश्तों में भी कोई स्वर्ग का द्वार न दीखे। जीजी, बच्चों को देखकर गाड़ी की एक घटना याद आ गई थी। उसकी याद करके ही मेरा कलेजा काप उठता है। सोचती हूं, मैं कैसी हो गई हूं!"

फिर उसने वह घटना सुनाई। श्रीमती लता को देखकर अपने अन्दर में उठने वाली भावनाओं की बात कही और फिर दिवाकर के चरित्र की पहेली पर रोती रही। कीर्ति ने उसे अपने सीने से चिपका लिया। बोली, "मुझे दुःख है, [illegible], मेरे ही मन का चोर था। देखो न, परिस्थिति किस तरह अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा करती रहती है। कुमार जब विमुख थे—किसी के लिए क्या था ! कुमार अब फिर ठीक होना है तो वह [illegible] है ! अच्छाई-बुराई की बात आज तक मेरी समझ में नहीं आई। [illegible] की भी यही बात है। वह बहुत अच्छा है। [illegible], पर उसे अभी बहुत सीखना है—[illegible]। वह अंग्रेजी की कहावत याद है, '[illegible] के लिए है, [illegible] के लिए नहीं।' अगर दिवाकर [illegible] जितना प्रसन्न हो ले, पर एक को [illegible] सकता। मैं जानती हूं—कुछ लोग बहुत [illegible] हैं। [illegible], [illegible] बेवकूफ होते हैं।"

शकुन्तला चुपचाप आंसू बहाती रही।

बातें करती-करती कीर्ति झुंझला उठी थी। अपने अंदर ही कुछ निर्णय करती हुई वह बोली, "पर शिक्की, तू देख ले। दिवाकर के साथ विवाह करना फ़क़ीरी का हमसाया होना है। दुनिया की हर तकलीफ को सहने के लिए तैयार होना पड़ेगा।"

शकुन्तला चुप थी। कीर्ति ने फिर पूछा, "बोलती क्यों नहीं? यह जीवन भर का प्रश्न है। मैं जानती हूं, एक दिन की भावुकता, सारी उम्र रुला सकती है।"

"जिसे एक बार मन में वरण कर लिया, वह दिल से कैसे निकल जाता है—यह सोच ही नहीं पाती। मुझे अमीरी से प्रेम नहीं है जीजी! मैं बस, एक बार अपने अंतर के संगीत को समझ लेना चाहती हूं। वरना मैं पागल हो जाऊंगी जीजी!"

"पागल तो तू हो चुकी है—अच्छा, अब सो जाओ। मन में जो आए, कहकर जी हल्का कर लेना चाहिए!"

मि० कुमार ने अपने पत्र में कीर्ति से बच्चों समेत कश्मीर आने के बारे में उसकी राय मांगी थी। पर कीर्ति ने बच्चों की बीमारी और शकुन्तला और जार्ज के आ जाने की सूचना देते हुए यह सुझाव दिया कि अगर निकट-भविष्य में अवकाश प्राप्त होने की सुविधा हो तो स्वयं कुमार दिल्ली आकर सबसे मिल जायें।

व्यस्तता कम होते ही दिवाकर शकुन्तला से मिलने फिर आया। आज उस के स्वागत में अधिक औपचारिकता थी। दिवाकर जल्दी ही चला आया था और कीर्ति या शकुन्तला कोई भी नहा-धोकर फारिग नहीं हो पाई थीं। कीर्ति ने शकुन्तला को तोषकखाने की चाबी देते हुए कहा, "अपने और मेरे लिए कपड़े निकाल लो। आज बाज़ार चलने का इरादा है। मैं दिवाकर के लिए कुछ नाश्ता तैयार कराती हूं।"

जब सब लोग नाश्ते पर आकर बैठे, तो दिवाकर को आज सारा वातावरण एक नवीनता से भरा प्रतीत हुआ। शकुन्तला ने फ़ालसई रंग की साड़ी पहनी है, जूड़े के नीचे कानों में मोती चमक रहे हैं। इकहरा शरीर और समानुपातिक उतार-चढ़ाव कुछ इस तरह आकर्षक बन बैठा है कि उसे रूपसी कहा जा सकता था। शकुन्तला के व्यक्तित्व में लज्जा थी, शील और संकोच था, गोपनीयता भी थी और ये सब बातें बराबर दिवाकर के मस्तिष्क में

रह-रहकर उभर रही थी।

कीर्ति ने प्रस्ताव रखा कि उन्हें बाज़ार में कुछ खरीदारी करने जाना है और दिवाकर को साथ जाना होगा। दिवाकर ने कुछ संशोधन के साथ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। व्यवस्था इस प्रकार बनी कि पहले सब लोग कम्यून जाएंगे और बाद में बाज़ार।

कम्यून पहुंचकर महलों का आकार-प्रकार कुछ बदल गया। नीना कपूर, डा० कमलकान्त और विश्वनाथन तीन ही साथी वहां थे। कुछ अपने काम पर जा चुके थे और शेष दिवाकर से परामर्श करने के लिए रुके हुए थे। नीना कपूर, पार्टी के नाट्य संघ की प्रमुख कार्यकर्ता थी, स्वयं कुशल अभिनेत्री और नर्तकी थीं। विश्वनाथन अर्थशास्त्र के प्रकांड पंडित थे और ट्रेड-यूनियन का जुझारू जीवन व्यतीत करते-करते वे ऊपर से बहुत कठिन दिखाई देते थे लेकिन अंदर से बहुत कोमल हैं, यह बात भी कम नुमायां न थी। डॉ० कमलकान्त बंगला साहित्य के बहुत अच्छे लेखक थे। कानून की परीक्षा उन्होंने विलायत से पास की थी और वे पार्टी के सांस्कृतिक विभाग के मुख्य [illegible] थे। दिवाकर ने सब की योग्यताओं का संक्षिप्त परिचय दिया [illegible] शेष साथियों के उपस्थित न रहने पर खेद प्रकट किया था। [illegible] दिवाकर राजहंस की तरह मस्त और अपने प्रति सम्पूर्ण निर्लिप्त [illegible] और निस्संग था कि जैसे उसे किसी विशेषण की आवश्यकता [illegible] जिस कमरे में उसका निवास था, वहां बेंत की एक रैक [illegible] तख्त था, उस पर सुरुचिपूर्ण लेकिन घिसा हुआ वस्त्र [illegible] वक्स नहीं था। कोई साजो-सामान नहीं था। सभी [illegible] पर जीते थे और नीना कपूर तो नितांत [illegible] मालूम पड़ती थी—खिली हुई मौलिश्री के समान [illegible] की आभा बिखेर रही थी।

प्रथम परिचय में बहुत बातें नहीं हुईं। पर [illegible] अन्तर्विरोध ज़रूर उपस्थित हो गया था। एक [illegible] भाव उभर आया कि वह किस तरह [illegible] अपने को उस वातावरण में खपा ले। [illegible] होश ही न आया कि उसे बाज़ार भी जाना है। [illegible] तो उसे यह प्रस्ताव बहुत ही निरर्थक और [illegible] अन्त में तै यह हुआ कि कीर्ति लौट [illegible]

कपूर के साथ रहेगी।

लौटते समय कीर्ति के चेहरे पर खुशी नहीं थी। शकुन्तला ने कहा, "मैं जल्दी ही लौट आऊंगी जीजी, फिक्र मत करना।"

इसके बाद दिवाकर अपने साथियों से मंत्रणा करने लगा। शकुन्तला और नीना कपूर दूसरी ओर चले गए। श्रीमती कपूर के कमरे में एक बहुत बड़ा चित्र लगा हुआ था। चित्र का लिबास सादा था और मुखाकृति पर कुछ वैसी ही छाया थी जैसी दूसरे साथियों के चेहरों पर उसने अभी-अभी देखी थी। अपने अनुमान की परीक्षा करने के लिए उसने कहा, "ये आपके कामरेड हैं?"

"कामरेड नहीं, मेरे पति हैं। कामरेड तो सभी हैं!"

"क्यों, कामरेड पति नहीं होता?"

"होता है, पर इसके अतिरिक्त भी तो कुछ होता है, पर आपको किस तरह समझाऊं मिस जोजेफ, आप क्या समझेंगी अभी, पति क्या होता है।" और फिर अभिनय करते हुए कहा, "लीजिए, आपके चेहरे पर तो गुलाब खिलने लगे। अच्छा भाई, छोड़ो, हम ऐसी-वैसी बातें नहीं करेंगे। आपके क्या-क्या शौक हैं? ये बातें तो पूछ लेना अनुचित न होगा?"

"अनुचित क्या है, नीना जी! मेरे शौक ही क्या हैं। थोड़ी-सी कोशिश की थी कि संगीत से कुछ परिचय हो जाए, पर मेरा अभ्यास प्रार्थना-सभाओं से आगे गया ही नहीं।"

"अगर आपकी बहिन व्यवस्था कर दें तो आप यहां रहकर सीखें। इस तरह के नीरस वातावरण में आप ठहरना पसंद करें तो हम और आप साथ रो-गा लिया करें।"

"कैसी बातें करती हैं आप बहिन। आपके साथियों के जीवन को देखकर ही मेरी बहुत-सी बेवकूफियां दिमाग से काफ़ूर हो गईं। वह खुश-किस्मत ही होगा जिसे इस गोष्ठी में स्वीकार किया जा सके!"

"यहां सब के लिए दरवाज़े खुले हैं शकुन्तला जी। कोई भी आए और एक दिन में महान बन जाए। क्योंकि इस घर की दहलीज़ पर वही कदम रखेगा जो अपना सर्वस्व खुशी-खुशी दूसरों की खुशी के लिए कुर्बान कर देगा और अपना व्यक्तित्व दूसरों के व्यक्तित्व में मिला देगा। खैर, जाने भी दें इन बातों को। आपके लिए ये बातें बहुत नई तो न होनी चाहिए!"

दो बेंत की आरामकुर्सियां पड़ी हुई थीं और सामने मेज़ पर चाय के

वर्तन करीने से सजे हुए थे। नीना कपूर ने चाय के लिए शकुन्तला से पूछा और चाय से भी सुन्दर बातचीत के रस को पीने रहने का आग्रह स्वीकार करते हुए शकुन्तला से कहा, "अच्छा आपसे व्यक्तिगत बात पूछ सकती हूं ?"

"क्यों नहीं ? जब आपके यहां कुछ व्यक्तिगत होता ही नहीं तो आपको पूछने से पहले प्रश्न करने की भी जरूरत नहीं होनी चाहिए !"

नीना हंस पड़ी।

शकुन्तला के चेहरे पर भी मुस्कान उभर आई।

नीना ने पूछा, "आपका मि० दिवाकर से कैसे परिचय हुआ ?"

"संयोग से।" शकुन्तला ने कहा

"अच्छा संयोग हुआ, आपने तो हमारे हीरो को बदल डाला—सिर से पैर तक। जहां पहले सार्वजनिक सभाओं में उनके स्वर से चिनगारियां निकला करती थीं, वहां अब वे गीता पर प्रवचन करते-से नज़र आते हैं !"

"मैंने तो उन्हें गौ की तरह सीधा ही पाया। यह परिवर्तन उनकी कामरेड शान्ता ने किया होगा।"

"ओहो, कितना तूफानी दौर आया था—पार्टी में। वह लड़की तूफान की तरह दिवाकर के जीवन में आई और फिर पार्टी का व्यक्तित्व बन गई। बेचारी दौलत के नशे में थी। सोचा होगा—सब उसके हाथ के खिलौने बन जायेंगे। दिवाकर को कम्यून से उड़ाकर ले गई—बिन ब्याही। उनकी पत्नी बन गई। और आप जानती हैं एक ईमानदार आदमी कब तक बच सकता है। चुनांचे उन्होंने उनसे विवाह करने का फैसला कर लिया। इस फैसले के साथ ही उनके तौर-तरीके बदल गए। दिवाकर परेशान थे। एक दिन इस बात पर फिर तूफान उठा। जो साथी अंदर-ही-अंदर इस संबंध के विरुद्ध थे वे भी अब खुलेआम कहने लगे, विवाह ज़रूर होना चाहिए। मेरे पति और साथी हरिकिशन ही केवल इनके साथ थे। अंत में तै यह हुआ कि अगर शान्ता पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ले तो बात बन सकती है। उस कम्बख्त ने सब कुछ स्वीकार कर लिया और इस तरह काम करने लगी कि जहां दिवाकर था, वहां वह स्वयं आ बैठी। अब तो सभी साथी यह सोचने लगे कि यह देवीजी निश्चय ही बहुत बड़ी देश-सेविका बनेंगी, और सभी उन के पीछे लगे रहने लगे। दिवाकर को अवसर मिल गया। वे अपने घर चले गए। यह शायद उनका शान्ता से बच भागने का तरीका था, पर नागपुर जाकर न जाने क्या हुआ उन्हें कि फिर उसके साथ चले आए। इस

बिल्कुल कायाकल्प हो चुका था। कई बार पार्टी से इस्तीफा दे दिया। कहते थे, शान्ता से विवाह वे कर सकते हैं, पर वैसा करने पर वे पार्टी के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सकेंगे। शायद इस खींचतान और फजीहत से तंग आकर वे विदेश चली गईं। आजकल अपने किसी सरमाएदार मित्र के साथ अमरीका में हैं।"

नीना कपूर बात कहकर चुप हुई तो देखा कि शकुन्तला गहरी चिंता में डूब गई है। नीना ने टोकते हुए कहा, "आप क्या नागपुर पहुंच गई हैं मिस जोज़ेफ ?"

"नहीं तो। अमरीका के सौभाग्यशाली प्रदेश को अपनी आंखों के सामने मूर्त करने की कोशिश कर रही हूं, जहां आपकी साथिन अपने प्रेमी के साथ विहार कर रही होंगी ?" शकुन्तला ने कहा।

"अजी, गनीमत हुई कि वे अमरीका चली गईं। अगर इंग्लैंड गई होतीं तो शायद मेरा पत्नीत्व ही खतरे में पड़ जाता। क्या भरोसा है ऐसी देवियों का !"

नीना ने यह बात कहकर वातावरण को फिर हल्का कर दिया। अब वह साथियों की भोजन-व्यवस्था के लिए उठ गई थी। शकुन्तला सोचती रही, "इतनी लंबी कहानी—जिसकी बुनियाद में कितनी हसरतें सरसब्ज हुईं—कितनी उम्मीदों का खून हुआ, हो सकता है कि उसका एक-एक क्षण किसी के लिए एक पूरी उम्र के समान भी बीता हो, वही सारी दास्तान नीना ने तोते की तरह सुना दी—और एक बार भी गहरी सांस उनके दिल से नहीं निकली। न जाने कौन-से पैमाने से लोग दूसरों की जिन्दगी को नापते हैं। हो सकता था शान्ता दिवाकर के मन की बन पाती, और अपने नैतिक मूल्यों को छाती से चिपकाए वे बैठे ही रहते। अगर कीर्ति के साथ वह आश्चर्य-जनक संयोग घटित न हुआ होता तो उसका क्या होता ! तो क्या विल्किन्स और जानसन जैसे लोगों के हाथ में खेलकर वह अपनी आकांक्षाओं का दम न घोंटती रहती। ओह, भगवान ! समय की गुत्थियां कितनी पेचीदा होती हैं और समय जब बीत जाता है—तो हर बात कितनी सुलझी हुई लगती है !"

इतने में नीना कपूर लौटकर आईं। शकुन्तला का सिर संकल्प-विकल्प में उलझ कर झन्ना उठा था। नीना को आया देख कर वह अकस्मात् खड़ी हो गई और जाने की आज्ञा मांगने लगी। उसने कहा, "क्या यह मुमकिन हो सकता है कि कोई मेरे साथ चल सके ?"

"नहीं-नहीं, आप किसी सूरत में अभी नहीं जा सकतीं। खाना यहीं खाना है। पहुंचाने तो दिवाकर चले ही जायेंगे। वे कह चुके हैं!" नीना ने कहा।

"मैं उनके बिना भी जा सकती हूं। नागपुर से यहां आ ही पहुंची हूं, अब मैं जाऊंगी। आज मेरी चिंता करता होगा। मेरी तबीयत न जाने क्यों घबरा रही है!"

नीना दिवाकर से पूछने गई थी कि वे शकुन्तला के जाने के बारे में क्या कहते हैं। दिवाकर अपने कमरे पर बैठे कुछ लिख रहे थे। शायद कोई वक्तव्य था और अत्यंत महत्त्वपूर्ण होने से वह कमरा बंद करके लिख रहे थे। शकुन्तला को उस स्थान पर सांस लेना भी मुश्किल लग रहा था। उसी बेचैनी में वह नीचे उतर आई और एक टैक्सी को इशारा देकर रोक लिया।

टैक्सी में बैठकर शकुन्तला बिना सूचना दिये उसी व्यक्ति के पास से जा रही थी जहां आने के लिए कुछ दिन पहले वह भयानक दुस्साहस कर सकती थी।

टैक्सी की गति तेज थी, लेकिन शकुन्तला के मस्तिष्क की गति उससे भी तेज थी। वह सोच रही थी, "उन्हें मेरी जरूरत नहीं है। उन्हें शायद किसी की भी जरूरत नहीं है। अब मैं किसी भी ऐसी जरूरत को महसूस न करूंगी—जिसकी पूर्ति अपने अंदर से ही न की जा सके। मैं नागपुर लौट जाऊंगी और जीवन-भर दिवाकर को याद नहीं करूंगी।"

घर आ गया। रामप्रसाद ने अंदर से लाकर टैक्सी के पैसे दिये। घबराई हुई कीर्ति बाहर आई। शकुन्तला का मुंह देखा, बोली, "शिवकी, क्या हुआ तुम्हें?"

शकुन्तला का शरीर तप रहा था।

अंदर जाकर वह बिस्तर पर लेट गई। भय से वह घबरा उठी थी। मन तरह-तरह की उल्टी-सीधी बातें सोच रहा था, किसी भी तरह उसके काबू में नहीं आता था!

कीर्ति ने माथे पर हाथ रखकर पूछा, "किसी ने कुछ कहा है?"

"नहीं, कहना कोई क्या?" और आगे उसका गला रुंध गया। उसने मुंह ढक लिया और करवट बदलकर रोने लगी।

"उनसे यह भी न हुआ कि तुम्हें कोई यहां पहुंचा जाता। दिवाकर घर नहीं थे?"

"मैं विना सूचना दिए चली आई हूं। क्यों उन्हें मैं अपने लिए कुछ करने को कहती ? क्या अधिकार है उन पर हमारा !"

वह बहुत कहना चाहती थी, पर हर बार अनेक चित्र-विचित्र कल्पनाओं में डूबकर वह अपनी असमर्थताओं पर तड़प कर रह जाती। वह सोचती—जब भगवान ने मनुष्य को पृथ्वी पर उतारा, तो उसे आत्मनिर्भर क्यों न बनाया ! और ऐसे सोचती-सोचती वह अनेक ऊल-जलूल प्रश्नों में फंस जाती। नहीं, मनुष्य तत्वों के समानुपातिक संयोग से नहीं बना है। उसे बनाया गया है'''किसी ने हर बात का बहुत बारीकी से ध्यान रखकर उसे बनाया है !

शकुन्तला इस भयानक उलझन में फंसी-फंसी ही सो गई और शाम को जब उसकी आंखें खुलीं तो बगल में टिन्नी सोया हुआ मिला। जार्ज बड़ा चिंतित-सा अखबार के पन्ने उलट रहा था। वह उठी और ड्राइंगरूम की ओर चली जहां से धीमी-धीमी आवाज़ आ रही थी और उसने देखा कि ड्राइंगरूम में कई लोग बैठे हैं। पर्दे पड़े होने से कमरे में हल्का अंधेरा था। इसलिए कीर्ति ने उठकर बत्ती जला दी।

शकुन्तला अभियुक्त की तरह बैठ गई।

एक मिनट दोनों ओर सन्नाटा था।

तब सहसा नीना कपूर शकुन्तला की ओर आमुख होकर बोलीं, "आपने तो गज़ब कर दिया आज ! कितने घबरा गए थे हम लोग !"

"जी हां, आपकी घबराहट का यही सबूत है कि आप छह घंटे बाद अता-पता पूछती आ पहुंची हैं !"

कीर्ति ने बात काटकर कहा, "मैंने टेलीफोन कर दिया था कि तुम पहुंच गई हो।"

फिर सन्नाटा हो गया और अब की बार उसकी रिक्तता और भी भारी थी। वह बात ज़ाहिर होती जा रही थी जिसे छिपाने के लिए वह चोर की तरह भाग आई थी।

कीर्ति ने कहा, "शिक्की तो घर जा रही है। चिट्ठी आई है और मैं भी सोचती हूं कि अब कश्मीर चली जाऊं। मिस्टर कुमार ने ऐसा ही लिखा है। आप भी चलिए नीना जी, कश्मीर चलिए।"

"चलने में कोई हर्ज़ नहीं, अगर शकुन्तला जी चलें तो मैं तैयार हूं।"

"शकुन्तला अभी इतनी समर्थ कहां है कि बिना मां-बाप से आज्ञा लिये

कहीं आ-जा सके। उनकी इतनी ही क्या कम कृपा है जो बच्चों की बीमारी को सुनकर उसे यहां आने दिया। फिर अभी उनने सोचा भी नहीं है कि आगे क्या करेगी।"

"क्यों, यहीं रहकर पढ़े आगे?" दिवाकर ने कहा।

"जी नहीं, घर से दूर रहकर कुछ ऐसी बीमारियां लग जाती हैं लोगों को, जो बड़ी मुश्किल से छूटती हैं। मैं ज़िम्मेदारी नहीं ले सकती।"

दिवाकर और शकुन्तला की नज़रें एक-दूसरे से जा मिलीं। जो भी अविश्वास और भय था, वह दृष्टि का प्रकाश पाकर स्पष्ट हो गया। शकुन्तला दिवाकर की दृष्टि के नवीन उन्मेष की आतुरता को सहन नहीं कर सकी। उठकर दूसरे कमरे में चली गई। वहां जार्ज बैठा था। उससे बोली, "क्यों जी, तुम कैसे खोये-खोये रहते हो? बाहर कोई आए, कोई जाए, तुम्हें अखबारों की तस्वीरें उलटने से फुर्सत ही नहीं। जाओ देखो, बाहर कौन आया है।"

जार्ज उठ गया और शकुन्तला बिस्तर में लेट गई। पर वह सो नहीं सकी। मीना कपूर ने आकर उसका मुंह उघार दिया। कहा, "दिल की बात आंखें कह देती हैं। जो-जो समझी हूं...उसे प्रकट करने का साहस अगर जुटा सकूं और आप अगर माफ भी कर दें तो आपसे दो शब्द कहना चाहती हूं।"

शकुन्तला उठकर बैठने लगी, पर मीना ने उठने नहीं दिया। वह उसकी अलकों से खेलने लगी और कहती रही, "आपको मालूम है—जिसे आप प्यार करती हैं, वह कम्यूनिस्ट है।"

"आपने बता तो दिया!"

"उनके साथ रहना—कष्टों को वरण करना है। अगर और कठोर शब्दों में कहूं तो आजीवन वैधव्य के दारुण और दुस्सह कष्टों को वरण करना है। अपने धर्म, विश्वास और मान्यताओं को लेकर आप उस व्यक्ति के साथ रह सकेंगी जो ठीक उनका विरोधी है और जिसके सहारे पर मुतलक कोई भरोसा नहीं किया जा सकता?"

शकुन्तला की आंखों का रंग बदल गया। वह उठकर बैठ गई और बोली, "मीना बहिन, भरोसा किस चीज़ का है दुनिया में? मुझे लगता है कि आदमी की असलियत उसके धर्म, विश्वास और उसकी मान्यता में नहीं है। वे तो बदलने वाली चीज़ें हैं बहिन। जो नहीं बदलता, उसीपर भरोसा किया जाए तो किसी के साथ भी चल सकता है।"

"क्या नहीं बदलता ?" नीना ने पूछा।

"तुम तो जानती हो। जानती न होतीं तो अपने उन्हें विलायत न भेज देतीं और सब तरह से योग्य होती हुई भी यह फ़क़ीरी चोला धारण न करतीं।"

"शायद जानती भी होऊं, पर तुम्हारे खूबसूरत होंठों से वह मंत्र उच्चरित होगा तो उसका सौंदर्य और बढ़ जायेगा।"

"वह सत्य ही तो है—जिसे प्रभु ईशूमसीह ने अपनी पवित्र वाणी में कहा। दुनिया के सभी धर्मों में अगर कोई बात एक-समान है तो वह सत्य है। मेरे विचार में सभी सिद्धांतों, मान्यताओं और विश्वासों का उद्‌गम सत्य से होता है। मेरे विचार से सत्य की परिभाषा देना काया को परिधान देने के ही समान है। फिर भी अगर आज मैं साड़ी पसंद करूं और कल साया, तो क्या मैं, मैं न रहूंगी ? छोटे मुंह बड़ी बात नहीं कहूंगी, पर मुझे लगता है कि सत्य को लोग सापेक्ष कहते हों भले, पर सत्य अपने अस्तित्व को सिद्ध करने में वातावरण का मुहताज नहीं होता।"

"बात बहुत-कुछ उलझ गई लगती है मुझे। मैं आपसे बहस भी करना नहीं चाहती। बहस से मुझे चिढ़ भी है। जब सब कामरेड किसी गंभीर मसले पर बहस करते होते हैं—तो मैं किसी एकांत कोने में अपना सितार लेकर बैठ जाती हूं और इस बात की प्रतीक्षा करती रहती हूं कि सब लोग बहस से फ़ारिग होकर मतलब की बातें कब करते हैं। आप जानती हैं, जो काम करना चाहता है, बहस में उसे समय नष्ट करने की फुर्सत कहां होती है ?"

"मैं लज्जित हूं," शकुन्तला ने कहा, "मैंने आपको मानसिक कष्ट पहुंचाया।"

उक्ति की निश्छलता से दोनों युवतियां सहसा खिलखिलाकर हंस पड़ीं। इतने ज़ोर से कि बाहर से कीर्ति, दिवाकर और जार्ज भी उठकर अंदर आ गये।

आत्मीयता के संस्कार गोष्ठियों में पहुंच कर सामाजिक सिद्धांत बनने लगते हैं—इसलिए नीना ने गोष्ठी विसर्जन करते हुए, और फिर मिलने का वायदा करते हुए विदा ली।

दिवाकर और नीना कपूर, कीर्ति और शकुन्तला से जिस समय विदा हुए तो सहसा दिवाकर का मन उदास हो उठा। उसी समय नीना ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "किधर से चलेंगे ?"

चाहते हैं। दिवाकर ने सोचा, नीना ने अगर उसके कंधे पर हाथ रख ही लिया था तो कौन-सी बात थी ? सारा जीवन इस फौलादी आत्मानुशासन में व्यतीत हो गया ! कहीं कोई एक क्षण भी याद आता है—जहां अपने अंतर की वाणी को सुना हो !"

उसके कदम भारी-भारी से हो गये। उसने अपना हाथ नीना के कंधे पर रख दिया। नीना ने वज़न महसूस करते हुए कहा, "क्या हुआ ? तबीयत तो ठीक है ?"

"तुझे कपूर की याद नहीं आती, नीना ! तू भी कितनी पत्थर है ?"

दिवाकर की सांस उखड़ रही थी। और नीना के कंधों पर वज़न निरंतर बढ़ता जा रहा था। सहसा नीना को समझ में न आया कि दिवाकर को क्या हो गया है। वह देख रही थी कि वह लड़खड़ा रहा है। उसने दिवाकर के बगल में हाथ डाल लिया और दूसरे हाथ का सहारा देती हुई वह उसे पानी से भरे तालाब तक ले गई। दोनों ने घुटनों तक पैर उघार कर पानी में डाल दिये। दो बूंदें पानी की उसने दिवाकर के मुंह पर छपक दीं। ठंडे पानी की चोट खाकर दिवाकर जैसे फिर ज़मीन पर उतर आया। नीना ने उसकी आंखों के बदलते हुए रंग को देखते हुए कहा, "आज शकुन्तला कह रही थी कि सत्य ऐसी वस्तु है जो कभी नहीं बदलती। क्या तुम मुझे बता सकते हो, सत्य क्या है ?"

"आज मैं तुम्हें केवल यह बता सकता हूं कि कपूर को हिन्दुस्तान से गये कितने दिन हो गये।" दिवाकर ने कहा।

"और ये नहीं कि शकुन्तला को नागपुर से आये कितने दिन हो गये हैं ? मैं तुमसे कहती हूं तुम अपने मन की बात को समझते क्यों नहीं ? शकुन्तला से आज मेरी बातें हो चुकी हैं—शकुन्तला विवाह करने के लिए तैयार है।"

"विवाह !" दिवाकर बोला, "और फिर बच्चे ! बच्चों के साथ एक नई दुनिया का उदय, जिसके अलग कानून हैं—जिसके अलग बंधन हैं—जो कदम-कदम पर आदमी को सोचने पर मजबूर करते हैं। जो शायद व्यामोह और दुर्बलता को दुनिया में कायम रखने वाली सबसे बलवान संस्था है—जो प्रेम को घृणा में बदल देती है—जो मानवीय प्रगति का प्रबलतम अवरोध है। लेकिन यह जानते हुए भी आदमी विवाह करता है। उस दुनिया का रहस्य समझ में नहीं आता !"

"तो तुम्हें ऐसा विवाह चाहिए—जहां कोई उत्तरदायित्व न हो, जहां

बंधन न हो ! किसी विवाहित स्त्री से प्रेम करोगे ? तुम्हारे-जैसे क्रांतिकारी तो शायद दूसरों के कंधों पर बंदूक रख कर शिकार खेलने के लिए ही पैदा होते हैं !"

"कभी ज़बान पर लगाम भी रखा करो नीना ! तू कितने दिन से कम्यून में रहती है। विवाहिता और अविवाहिता कितनी स्त्रियां संपर्क में आती हैं—कभी देखा-सुना है कुछ ?"

"जानती हूं। पर मुझे लगता है कि अब तुम्हें किसी नौका में सवार हो जाना ही चाहिए, वरना घुटनों तक पानी में डूब रहने का अंदेशा बढ़ रहा है।"

"तू नहीं जानती नीना, मैं अपनी दुर्बलता पर कितना लज्जित हूं। बस, अब मेरे जीवन का अंत हो गया। जिस महान स्वप्न को लेकर मैंने अपना हर सांस लिया—यह इतने छोटे दायरे में सिमट कर रह जायेगा—यह कल्पना कभी स्वप्न भी में नहीं की थी !"

"मुझे लगता है उस नादान छोकरी ने जो बात कही थी, वह ठीक थी। 'आदमी की असलियत उसके धर्म, विश्वास और मान्यता में नहीं है।' पर वह कौन-सा निर्णायक सत्य कहना चाहती थी, शायद उसे स्वयं भी पता नहीं था।"

"नीना, सत्य वह है जो अनुभूत है, जिसे अपना मन स्वीकार करना चाहता है—आज तक जिसे मैंने बुद्धि से पकड़ना चाहा। पर बुद्धि से सत्य नहीं जाना जाता, बुद्धि से सत्य को अभिहित करने का अभिमान भर किया जा सकता है। सत्य अंदर भी है। बाहर भी है। सभी कुछ सत्य है। बहते हुए जल की तरह नित्य-नवीन कूल-कगारों, नित्य-नवीन वनस्पतियों को धारण करता हुआ उस पारावार में विलीन होकर भी जीवन यथार्थ होता है जिसके क्षितिज कोई स्थूल नेत्रों से देखे तो नहीं दीख सकते। उन्हें देखने के लिए आंखें बंद करनी होती हैं। नीना, इस सत्य के अनुसंधान करने का बहाना आदमी कब से कर रहा है—जो उसके चारों ओर कठोर यथार्थ बनकर खड़ा है !"

"अच्छा, तुम फिर बहकने लगे हो। अच्छा होता अगर तुम राजनीतिक न होकर कवि या दार्शनिक होते। एक बात बताओगे ? बहुत कठोर सत्य है !"

"पूछो, कुछ भी पूछो ! बताऊंगा—आज बुद्धि के द्वार खुल गये हैं।"

"अभी उधर जब तुम्हारी आंखें झपकती जा रही थीं—तुम्हारे मन में

क्या था ?"

"कुछ भी था—यह बात पूछने की नहीं है—यहां इस निर्जन एकांत में। नीना, मुझे निरा मिट्टी का ढेला न समझ। निरा हंसिया या हथौड़ा नहीं हूं कि दुनिया पत्थरों पर पटकती रहे। चल, उठ यहां से।"

"नहीं उठती हूं।" और उठते हुए दिवाकर की बांह पकड़कर अपनी गोद में खींचती हुई वह बोली, "तुम किस धातु के बने हुए हो—बेरहम, बेदर्द, मूर्ति की तरह बेदिल—क्या तुम्हें औरतों से जन्मजात नफरत है ?"

दिवाकर झटका देकर अपना हाथ छुड़ा नहीं सका। वह नीना की गोद में चुपचाप लेट गया। मस्त हाथी के गंडस्थल से निकलने वाले मद की तरह उसका मस्तक नीना के शरीर की गंध से भर उठा। वह चुपचाप शिशु की तरह उसकी मजबूत जंघाओं पर आंचल में मुंह छिपा कर लेट गया। बेहोश, अपने से बेखबर, और जब उसका विवेक जागा तो आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह चली थी।

जब नीना की साड़ी उसके गर्म आंसुओं से भीग गई तो उसने बरबस उसका मुंह ऊपर उठाया और चकित होकर पूछा, "क्यों क्या है ?" और जब उसने अपने सुर्ख होठों से उसकी आंखों के आंसू सोख लिये तो दिवाकर ने कहा, "तुम्हारा दोष नहीं है नीना ! तुम हिमालय की चोटी पर चमकने वाले बर्फ की तरह पवित्र और उज्ज्वल हो। मेरी दुर्बलता ने तुम्हारे विवेक को भी ढक लिया। नीना, तुझे अपनी आंखों में चमकते हुए प्रेम के इन आंसुओं की सौगंद, जो तूने इन क्षणों की स्मृति अपने अंतर में रहने दी ! समझ लेना, एक भटके हुए आदमी को रास्ते पर लाने के लिए तूने बलिदान किया !"

कहते-कहते अजीब-सी पुलक उसके अंतर में उमड़ने लगी। उसने नीना का मस्तक चूम लिया। उसके बाल फर्र-फर्र करके हवा में उड़ा दिये और उसकी बांह-में-बांह डालकर एक स्फूर्तिवान सैनिक की तरह कम्यून की ओर कदम बढ़ा कर चलने लगा। नीना चकित थी, स्तंभित और गलाए हुए उस लोहे के समान थी, जिस पर कोई भी सांचा चढ़ाया नहीं गया था। उस पुरुष के साथ घिसटती चली गई। पर उसके मन में कहीं कोई ग्लानि नहीं थी। क्या भूल जाने के लिए दिवाकर कह रहा है—उसकी समझ में नहीं आया।

इस बीच दिवाकर ने एक बार भी नीना की आंखों में नहीं देखा था।

यह जैसे कल्पना-लोक में विचरण कर रहा था, या जैसे स्वगत-संलाप कर रहा था। वासना के गर्त में आपाद-मस्तक स्नान करके उसका मन, प्रसूति-गृह से निकलने वाली मां के अंतर् की तरह हल्का और आनंदित हो उठा था।

रात को खा-पीकर जब वह सोने लगे, तो मीना के कदम अनायास दिवाकर के कमरे की ओर बढ़ गए। बंद कपाटों पर उसका मस्तक टिक गया और उसका अंतर् सहसा पुकार उठा, 'हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूं !' ड्योढ़ी पर की धूल को माथे पर लगाकर वह अपने कमरे की ओर लौट गई।

पिछली शाम जो हुआ, उसके लिए मीना के पास कोई तर्क नहीं था। वह इतने दिनों दिवाकर को प्रेम करती रही है ? नहीं, वह दिवाकर की अस्तव्यस्तता का निराकरण उसके विवाहित जीवन में खोज लेना चाहती थी और शायद विवाह के लिए उसकी अंतर्वृत्तियों को उद्दीप्त करना चाहती थी। एक बंधु की तरह उसके लिए बस सहानुभूति ही उसके मन में पैदा हुई थी। पर वैसा करते-करते सहसा उसके मन में वह हिलोर कहां से उठ आई जिसका वेग शत-सहस्र झंझावातों से भी दुर्धर्ष था। अगर उस हिलोर में वह बहा ली गई होती तो !

मीना कपूर के लिए उस अज्ञात भविष्य की कल्पना करना कठिन नहीं था। ऐसे संयोगों को अत्यंत स्वाभाविक सिद्ध करने के लिए एक विलक्षण तर्क-बुद्धि और उच्छृंखलता हमेशा से उसमें रही है, पर इस हल्के-से अर्क ने साबित कर दिया कि अपने अवचेतन व्यक्तित्व को झुठलाने के लिए ह' आदमी में आकुलता होती है।

इस अनुभूति ने मीना को इस तरह अभिभूत कर लिया कि कई दि॰ वह दिवाकर के सामने न पड़ सकी। उसकी अनुपस्थिति से ह॰
भटक गई थी। जो नई और सुखद संभावना उसके मन
फिर मुरझाने लगी। कई दिन से जाने कहता
जोशी के साथ कश्मीर नहीं जाना है तो न:
से मि॰ जोज़ेफ का पत्र भी आ गया था—।
अगर बच्चे स्वस्थ और प्रसन्न हैं तो शकुन्तल
वर्ष के लिए अपना कार्यक्रम बनाना चाहिए
थी। कोनि भलीभांति देख रही थी पर वह देख

विलक्षण व्यापार जीवन में कभी नहीं देखा था। कीर्ति सोचती, वे दोनों एक-दूसरे को प्यार करते हैं—और शायद एक-दूसरे के बिना जीवन में सुख की सांस नहीं ले सकते, लेकिन फिर भी वे एक-दूसरे से कितनी दूर हैं। वह दूरी स्वाभाविक नहीं है, उसमें भय है, अविश्वास है—वह भी शायद दूसरे के प्रति उतना नहीं जितना स्वयं अपने प्रति ! शकुन्तला से अपनी यह धारणा वह संकेत में व्यक्त कर चुकी है, परन्तु इससे आगे शील और मर्यादा उसे बढ़ने नहीं देते और इस विषम-विरोध पर उसे अंदर ही अंदर प्रसन्नता है। इस विलक्षण प्रेम-कहानी को संदर्भ में रख कर वह अपने आचरण की मीमांसा करती और परिणाम की प्रतीक्षा करती रहती थी, परंतु शकुन्तला की करुण मूर्ति देखकर उसका ममत्व फिर उभरने लगता था और वह उस असमर्थ स्थिति का अंत कर देना चाहती थी।

इस असमर्थता की स्थिति तक आते-आते कीर्ति लड़ने की मनःस्थिति में आ गई। उसने शकुन्तला को बुलाकर कहा, "क्या सोच रही हो तुम ? एक न-एक दिन नागपुर लौट जाना होगा। तुम्हें किसी-न-किसी की शरण चाहिए, यह बात इतने दिन में देख चुकी हूं। औरत शायद किसी की शरण पाए बिना खड़ी नहीं हो सकती।"

शकुन्तला सहानुभूति की जगह यह प्रतारणा पाकर चकित रह गई। कीर्ति ने फिर कहा, "मुझे यह भी संदेह होने लगा है कि तुम में से कोई भी एक-दूसरे को प्रेम नहीं करता है। आदर्शों का मेल होना, या शक्ल-सूरत का पसंद आ जाना—इसे प्रेम नहीं कहा जा सकता। मैं समझती थी, प्रेम अनंत रूप से सुलगने वाली वह आग है—जो बाहरी व्यवधानों को भस्म करके दो आत्माओं को अनावृत और एक कर देती है, एक-तत्त्व, एकाकार—जहां द्वित्व नहीं रहता। तुम लोग व्यापार कर रहे हो। और अगर यह व्यापार भी है तो सीधे-सीधे बातचीत करके फैसला कर लो। इस तरह घुटने से क्या लाभ होता है ?"

कीर्ति आज वाकई लड़ने के मूड में थी। उसने शकुन्तला के चेहरे की ओर देखा नहीं और बिना कोई बात कहे तैयार होकर बाहर चली गई। वह निर्णय करके ही सांस लेना चाहती थी।

कम्यून में कीर्ति जिस समय पहुंची, दिवाकर अपने साथियों के साथ बाहर निकल रहा था। कीर्ति को देखकर सभी ने अभिवादन किया और कीर्ति की संकल्प-मुद्रा को लक्ष्य करके दिवाकर को रुक जाना पड़ा।

साथियों से अवकाश मांग कर वह पुनः उसे साथ लेकर अन्दर चला आया। दिवाकर के कमरे में प्रवेश करते-करते कीर्ति ने कहा, "मैं आज आप से एक बहुत जरूरी बात कहने आई हूं। अब आपको निर्णय कर लेना है कि आप शकुन्तला से विवाह कर सकेंगे अथवा नहीं। घर से पत्र आया है और अब किसी प्रकार भी उसको अनिश्चित काल तक रोक सकना मेरे वश में नहीं है।"

दिवाकर इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार नहीं था। मीना ने यद्यपि यह बात बताई थी, उसके अंतर् में भी यह बात स्पष्ट होती जा रही थी कि उसके जीवन का तार जहां कहीं भी उलझ गया है उसे सुलझाने वाला कोई दूसरा ही बनेगा; पर इतना जल्दी, आमने-सामने उसे उत्तर देना पड़ेगा इसके लिए वह तैयार नहीं था। उसने हिचकिचाते हुए कहा, "आप समझती हैं कि यह टूटा-फूटा, अभावों से भरा हुआ घर किसी नवविवाहित दम्पती के रहने योग्य है?"

"आप शायद यह नहीं जानते कि स्त्रियां पुरुषों की तरह साधन और सुविधा को पहली शर्त मानकर नाता नहीं जोड़तीं। अगर इस स्थिति में एक रह सकता है तो दो भी रह सकते हैं"—कीर्ति ने कहा।

"फिर शहर की सियासी जिन्दगी में इतना नाजुक वक्त पैदा हो चुका है कि हमारे आदर्श और कार्यक्षमता कसौटी पर कसे जा रहे हैं। ऐसे वक्त में तत्काल विवाह की चर्चा साथियों से करना कितना हास्यास्पद होगा। हो सकता है मैं आने वाले संघर्ष में गिरफ्तार हो जाऊं। शहर में एक जबर्दस्त हड़ताल का संगठन हम लोग करना चाह रहे हैं—और कोई भी सरकार जोर-आजमाई करना अपना धर्म मानती है—आप जानती हैं। ऐसी स्थिति में किसी के दिल पर क्या बीत सकती है—क्यों न हम अच्छे समय की प्रतीक्षा करें!" दिवाकर ने कहा।

"लेकिन इन चीजों का आपकी व्यक्तिगत जिन्दगी से क्या संबंध है—मेरी समझ में नहीं आता। सच तो यह है कि इस जिम्मेदारी को कंधों पर लेने का साहस आप में नहीं है, और अपनी इस दुर्बलता को आप मंजूर भी करना नहीं चाहते। इस देश में स्त्रियों ने ऐसे भी उदाहरण रखे हैं कि उन के विवाह की हल्दी भी हाथों से नहीं छूटी और उन्होंने अपने पतियों को हंसते-हंसते समर-क्षेत्रों में भेज दिया। आप अपनी साहसहीनता की बातें क्यों नहीं करते?"

"साहस न होने की बात कैसे कहती हैं," दिवाकर ने इस वक्तव्य का

विनम्र विरोध करते हुए कहा, "ये इतनी उथल-पुथल का राजनीतिक जीवन कोई बिना साहस के कैसे बिता सकता है—सोचने की बात है। परंतु हर चीज़ का समय होता है। उसकी गरिमा बेवक्त काम करने से नष्ट होती है।"

"मैं जानती हूं इस गरिमा और साहस के मर्म को! राजनीतिक साहस में बलिदान दूसरों का होता है। भीड़ पर चलने वाली गोली भी नेताओं को न छूकर गरीब, पीछे चलने वालों के सीनों को ही बींधती है। पर हां, विवाह करके दूसरे का सहारा आदमी नहीं मांग सकता। यहां स्वयं ही नेता और स्वयं ही सिपाही बनना होता है। इसलिए बहुधा नेता लोग जीवन की हकीकी लड़ाई से बचते हैं। वह लड़की मूर्ख है—आपका संदेश मैं उसे कह दूंगी।"

कीर्ति ने जाने के लिए औपचारिक अनुमति भी न मांगी और उत्तर की बिना प्रतीक्षा किए ही चली गई। दिवाकर सन्न रह गया। इस तरह वह कभी अपमानित नहीं हुआ था! इतनी खरी बातें भी उसने कहां सुनी थीं! एक-एक वाक्य उसके रोम-रोम में समाता जा रहा था। आज तक नारी वर्ग से उसे जो मान और प्रतिष्ठा मिली थी—उसके आधार पर जो कुछ आत्म-विश्वास उसके मन में बना था—आज वह इस अत्यंत तेजस्वी नारी के सम्मुख हिल उठा था। वह अनुभव करने लगा था कि वस्तुतः वह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से भागने का अभ्यस्त हो चुका है। उसे लगा कि जैसे उसके अवचेतन मन में कोई भाव कहीं है, जो सदा से समाज-विरोधी आचरण करने पर मजबूर करता है।

दिवाकर कई दिन नीना से मिल नहीं सका था। यहां तक कि खाने के अवसर पर भी वह दिखाई नहीं दी थी। वह जानता था कि नीना उसे उचित परामर्श देगी, परंतु मालूम करने पर पता चला कि पिछले कई दिन से वह इतनी व्यस्त रही है कि उसने भोजन भी प्रायः बाहर ही किया है।

दिवाकर हारकर काम पर चला गया। पर उसका मन किसी भी प्रकार शांत नहीं होता था। कीर्ति के तीखे वाक्य रह-रहकर उसके अंतर को भेद रहे थे।

कपड़ा मिल का वह रोमांचकारी वातावरण, जहां उसके सिंह-गर्जन से दीवारें कंपित होती थीं, आज उसे फीका लगता था। मशीनों की खटखट और उनसे प्रतिध्वनित होने वाला संगीत, जिसे वह जीवन का वास्तविक संगीत मानता था, आज उसे श्मशान में चटखनेवाली हड्डियों के समान घिनौना

कि दूसरों की भलाई के लिए मैं अपना शीश भी उतार कर उनकी नज़र कर दूं…!'

पर अपना शीश उतार कर वह किसको नज़र करे? क्यों करे? इतने दिनों तक बराबर इस धरती के रोम-रोम में आज़ादी, समानता और बंधुता की पुकार भरती आ रही है, पर इंसान नहीं जागता! क्या सचमुच वह आज़ादी चाहता है। एक का बलिदान होता है कि दूसरों का जीवन सरसब्ज़ हो, पर दूसरों को मार कर अपना सुख बढ़ाने की बात अगर दूसरा सोचता है तो क्यों?

यह बात उसकी समझ में आती नहीं थी। हड़ताल का निर्णय करने के लिए दिवाकर कमर कसकर बैठता और चोटी तक उलझनों में फंस जाता। सभी साथियों के चेहरों पर जिज्ञासा थी—कुतूहल था। दिवाकर बेचैनी के साथ सोचता, 'क्या वह इतना कायर हो गया है कि कोई भी निर्णय करके उसके परिणाम का दायित्व अपने ऊपर लेना नहीं चाहता!' लेकिन पूरी ईमानदारी से अपनी अंतरात्मा की आवाज़ सुनकर भी उसे वैसा उत्तर नहीं मिलता।

ऊपर से देखने में आदमी जैसा मालूम होता है—अगर अंदर से उसके विपरीत निकले तो श्रद्धा करने वालों का उत्साह फीका पड़ जाता है। दिवाकर को देखकर आज तक कीर्ति ने यही समझा था कि वह ईमानदार, दयालु, स्वाभिमानी और बहादुर आदमी है। डाकघर में तार देते समय उसकी चमकती हुई आंखों में कीर्ति ने अपनी कल्पना के पूर्णपुरुष की तस्वीर देखी थी। उसी दिन से उसने सामाजिक मर्यादा को नज़र-अंदाज़ करके उसे शकुन्तला के लिए प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प मन में कर लिया था। शकुन्तला के लिए दिवाकर को प्राप्त करना जैसे उसके अपने अंतर में छिपी हुई आकांक्षा की परितुष्टि करना था। कुमार के रूप में उसने पति पाया, लेकिन कुमार में एक दिन भी उसे अपने स्वप्नों का साथी नहीं मिला। वह उसके पदकों की चमक में आ गई थी, वह उसकी सुदृढ़ मांसपेशियों के प्रभाव में आ गई थी। प्रेम-विवाह करके भी वह जैसे अपने जीवन की सबसे बड़ी बाज़ी हार चुकी थी और अब तो जैसे अनेक प्रकार से अपने ऊपर बलात्कार सहती जाती थी कि उसके मन से ईमानदारी का बीज सदैव के लिए निर्जीव हो जाए, कि उसके मन में दूसरे के विश्वासघात पर पागल कर देने वाली आत्मग्लानि और आक्रोश कभी पैदा न होने पायें, पर निष्प्रयोजन प्यार करने और दूसरे

अपना मन स्वस्थ करो। अब मैं चली जाऊंगी!"

कीर्ति को शिक्की की उस अगाध सहनशीलता पर आश्चर्य था, क्योंकि वह जानती थी कि नागपुर लौट कर उसे किन परिस्थितियों का सामना करना है। आज तक जिस एक प्रकाश-किरण की ओर उसकी आंख थी, वह भी बुझ गई। शकुन्तला फिर भी बोलती गई, "अच्छा ही हुआ। इस विवाह का स्वागत हमारे मां-बाप न करते। जीवन भर उनका मुंह देखने को तरस जाती। प्रेम के लिए इतना बड़ा बलिदान तो सोच-समझ कर ही करना होता है। बस, अपना एक बच्चा मुझे दे देना। शायद जीवन-पर्यंत विवाह करने की बात मेरे मन में कभी नहीं आयेगी।"

कीर्ति की आंखों में आंसू की बरसात उमड़ आई थी, पर शकुन्तला के चेहरे पर लेशमात्र भी मैल नहीं आया था। जार्ज ने पूछा, "कीर्ति जीजी क्यों रोती हैं?" तो उसने कहा, "फिजूल रोती हैं!"

"फिजूल कैसे रोती हैं? तुम छिपा रही हो!" जार्ज का मुंह उतर गया था।

"तू पूछ कर क्या करेगा? अब वह पहले का जमाना गया जब भाई अपनी बहिनों के लिए युद्ध रोप लेते थे।" और वह खिलखिला कर हंसती हुई बोली, "ले, उदास मत हो। बता देती हूं। आज दिवाकर ने हम से रिश्ता करने से इन्कार कर दिया। अच्छा बता, अगर वह तैयार हो जाते, तो तू क्या करता? जानता है—वह काम मां की मर्ज़ी के विपरीत होता!"

जार्ज कुछ भी नहीं बोला। वह यह जानता था कि जीजी की वह हंसी उसके अपने कंठ से नहीं निकली है। उसे जीजी के उस प्रश्न का भाव आज भी याद था जो उसने गाड़ी में उससे पूछा था।

'काश, अगर वह बड़ा होता तो इस तरह अपनी जीजी को मायूस होने से किसी प्रकार बचा सकता!'—जार्ज सोचता रहा।

जार्ज चुप हो गया। सदैव की तरह नेकर की जेब में हाथ डाले अपने खूबसूरत वालों को टास करता हुआ वह घरमें घूमता रहा। किसीने भी देखा नहीं कि वह किशोर किसलिए इतना गंभीर हो उठा है। फिर वह अकस्मात् गायब हो गया। पीटर और टिन्नी ने अंकिल जार्ज के बारे में कई बार पूछा, पर सभी जानते थे, जार्ज कहीं एक जगह टिकने वाला नहीं है—समय पर आ जायेगा। चाय के समय उसकी मेज को खाली देखकर बहिनों का माथा ठनका भी—और जब सूरज डूब गया, बत्तियां चमक उठीं और चारों तरफ

का माहौल जादूगर की माया की तरह उलझनपूर्ण मालूम पड़ने लगा, तो दोनों बहिनें बेतहाशा घबरा उठीं और घर से बाहर आकर भाई की प्रतीक्षा करने लगीं। शकुन्तला को सन्देह था कि सम्भवतः वह दिवाकर के पास गया हो, पर इतना छोटा जार्ज उसकी पीड़ा से इतना द्रवित हो उठेगा—उसे विश्वास नहीं होता था। फिर भी उसने कम्पूल को टेलीफोन किया, पर टेलीफोन घरघराकर रह गया। मन को संभाल कर भवितव्य को स्वीकार करने के अतिरिक्त वे क्या करतीं?

आदमी के नाम पर उस समय सहायता करने वाला केवल रामप्रसाद था जो आँखों में आँसू लेकर चुपचाप गर्दन झुकाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता था। रह-रहकर दुर्घटना की आशंका जबान पर आ-आकर रुक जाती थी।

सहसा श्रीमती लता ने सूचना दी कि जार्ज का टेलीफोन आया है। कीर्ति ने दौड़कर सुना। जार्ज कह रहा था कि उसके लिए खाने की प्रतीक्षा न करें। उसने खाना खा लिया है। और वह जरा देर से पहुँचेगा। दिवाकर उसके साथ ही आयेंगे, अभी बहुत व्यस्त हैं। कहते हैं, कीर्ति जीजी से मेरी ओर से माफी माँग लेना। उसने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। टेलीफोन रख दिया। कीर्ति सिर पर हाथ मार कर कहती रही, "उसे क्या मालूम, इतनी देर में हमारे दिल पर क्या बीत गई है! जैसे उसके खाने की प्रतीक्षा में झुलसाने के अतिरिक्त हम और कुछ भी उसके लिए नहीं सोचते···ओफ, मर्दों का दिल कितना पत्थर होता है!"

शकुन्तला ने सुना, एक नयी समस्या उसके सामने आ गई है। क्या जार्ज ने वह सब-कुछ कर दिया जो कोई भी न कर सका। वह कौन-सा तर्क उसने पेश किया होगा—जिसकी कोई काट ही नहीं हो सकती थी। उसके हाथ-पैरों में एक हल्का-सा कम्पन दौड़ गया। "क्या अब यह सच होकर ही रहेगा?"

रात काफी बीत चुकी थी। बाहर सड़क पर एक टैक्सी आकर रुकी। सभी जान गये थे कि जार्ज आया होगा और साथ ही दिवाकर भी होगा। इस समाचार ने घर में एक अजीब पसोपेश पैदा कर दी। रामप्रसाद ने बाहर निकल कर उन का स्वागत किया। दिवाकर को आश्चर्य था कि उसका स्वागत करने कीर्ति या शकुन्तला कोई भी नहीं आई। कीर्ति के प्रति अपने आचरण को याद करते ही उसके कदम भारी पड़ गए, पर जार्ज की विजय

के सम्मुख उसका आत्म-सम्मान फीका साबित हो चुका था।

दरवाज़े के अंदर पैर रखते ही जार्ज ने पुकार कर कहा, "जीजी!" बिस्तर में मुंह ढके हुए ही कीर्ति ने पूछा, "किसके साथ आये हो?"

जार्ज नहीं बोला, पर शकुन्तला अपने कमरे में लेटी-लेटी निर्निमेष बाहर की ओर ताकती रही थी। कार की आहट सुनते ही वह दरवाज़े की ओट में आ गई थी। वह सहसा दिवाकर के इतने निकट आकर खड़ी हो गई कि उसका मन अंदर-ही-अंदर धक्-धक् करने लगा।

जब बाहर कार के लौट जाने की घरघराहट शांत हो गई, तो शकुन्तला ने कीर्ति का मुंह उघाड़ दिया। हकबका कर वह उठ बैठी। जार्ज ने कहा, "खाना दो आदमियों के लिए लाना है!"

एक क्षण सबने सबकी ओर देखा। सबके दिलों में एक हल्की सिहरन फिर दौड़ने लगी थी, लेकिन वातावरण के उस तनाव का ढीला होना केवल कीर्ति के व्यवहार पर निर्भर था। शकुन्तला एक क्षण प्रतीक्षा करके अपने कमरे में लौट गई। उसे विश्वास था कि सब ठीक हो कर रहेगा। उसका निश्चय था कि जाने से पहले वह दिवाकर से एक बार मिलेगी और वही होगा जो वह चाहेगी, उसने अभी तक अपनी परीक्षा नहीं लेनी चाही है। पर यह अच्छा ही हुआ। जार्ज ने उसके मान की रक्षा कर ली है। पर अब वह मान को सहेज कर नहीं रखेगी। आज वह अपने कमरे को दिवाकर के सोने के लिए ठीक कर रही थी···उसकी सारी देह में कंप था—एक-एक काम को अनेक बार करके भी वह बिगाड़ती जा रही थी।

कीर्ति ने रामप्रसाद को विदा कर दिया। पर खाना दो के लिए नहीं था—भले ही एक से अधिक के लिए था। दिवाकर ने कहा, "भूख इतनी लगी है कि अब नया खाना बनाने तक की प्रतीक्षा नहीं हो सकेगी। जो कुछ है उसे ही बांटकर खाने से काम चल जायेगा।"

कीर्ति निरस्त्र होती जा रही थी। दिन में उसने दिवाकर को लेकर जो कुछ सोचा था—उसके लिए मन में वितृष्णा उभरती आ रही थी। मेज़ पर जब खाना आ गया—तो वह भी साथ छोड़ कर हट न सकी। मन में आता था कि क्षमा मांग ले, पर ज़बान जैसे सिल गई थी। कक्ष में इतनी नीरवता थी कि पास के कमरे में शकुन्तला के कपड़े बदलने की खरखराहट तक साफ सुनाई पड़ रही थी।

दिवाकर ने ही आखिर मौन भंग किया, "आज पहली बार मुझे यह

दिखाई दे रहा है कि मैं किसी अजनबी घर में आ गया हूं।"

इस बात को सुनकर कीर्ति का सारा मुखमंडल निर्मल हास्य से विभोर हो उठा। कीर्ति ने कहा, "आप अपनी सफाई देने आए हैं। आवेश में मेरे मुंह से जो कुछ निकल गया है, मैं उसके लिए क्षमा मांगती हूं।"

"मुझे न क्रोध आता है, और न क्षमा को जानता हूं। पर लगता है कि अब क्षमा को भी जानना होगा। लौट सकूंगा नहीं—इसलिए शरणागत भी होना पड़ेगा।"

शकुन्तला यह सुन रही थी। न जाने किस तरह की लाज उसके मन में भरती आ रही थी। इससे काफी अधिक आत्मीयता की बातें उसने उसके मुंह से सुनी हैं और एकांत स्थानों में बैठकर संयुक्त जीवन के स्वप्न देखे हैं। अब न जाने क्यों उधर जाने का साहस नहीं होता। निगाह जमीन से उठती ही नहीं है।

कीर्ति दिवाकर के पास बैठी रही। जाजे सो गया। रात भीगने लगी।

जब शकुन्तला अपने ही बोझ के नीचे दबी जाने लगी, तो वह उठकर बाहर लॉन में चली गई।

कीर्ति ने कहा, "अब आप का कमरा खाली हो गया है। आप चाहें तो जाकर सो सकते हैं और चाहें तो बाहर जाकर तारों की छांह में रात बिता सकते हैं।"

दिवाकर जानता था—यह सब क्या है? आज सारे दिन उसने मजदूर यूनियन के दफ्तर में सख्त मेहनत की थी, पर जब वह विश्राम के लिए निगाह उठाता था, विवाहित जीवन की अनेक रंग-बिरंगी झांकियां उसकी आंखों में तैरने लगती थीं। उस कल्पना से ही एक अनिर्वचनीय आनन्द उस के सारे शरीर में दौड़ जाता था। आज वह अपने जीवन के नए प्रांत में प्रवेश कर चुका था और कीर्ति अगर न भी कहती, तो क्या यही नहीं होता। सब की जानकारी में यह इतना एकांत और निजी निर्णय करेगा, इसीसे उत्साह फीका पड़ता जा रहा था। इसलिए वह बाहर नहीं गया। सोने चला गया।

कीर्ति भी उठ गई। फाटकों के धमाके ने बताया कि उन्हें अंदर से बंद कर लिया गया है और उस तरफ से निर्बाध एकांत की संभावना घोषित हो चुकी है।

कमरे की बत्ती बुझी थी। दिवाकर को स्विच का पता नहीं चला। एकाध क्षण रोशनी करने के उपक्रम के उपरांत उसने अनुभव किया

रात के अवगुंठन को हटायेगा नहीं।

दूसरे कमरे में हल्की नीली बत्ती जल रही थी। उसका बस चलता तो वह उसे भी बुझा देता। और बाहर से वह जो अभी-अभी आनेवाली हैं, उनके सामने जितनी अधिक बाधाएं खड़ी कर सकता, उतना ही उसे अधिक आनन्द मिलता। पर उसकी वह आकांक्षा पूरी हुई नहीं। उसके पास जो कपड़े थे, उन्हीं को पहिने सो रहने से अगला दिन वह किस प्रकार शुरू कर सकता था, इस ऊहापोह में उलझ कर रह गया। उसे कुछ भी अतिरिक्त चाहिए था। वह अधीरता से शकुन्तला के आ जाने की कामना करने लगा।

पर वह आई नहीं। दिवाकर ने खिड़की से झांक कर देखा—वह बहुत तेज़ी के साथ इधर-से-उधर घूम रही थी। दिवाकर उठा, आहिस्ता से चलता हुआ वह बरांडे में आया। पर शकुन्तला ने देखकर भी नहीं देखा। दिवाकर के शरीर में रक्त की गति और उसके सिर में गनूदगी बढ़ रही थी।

आगे बढ़ कर उसने शकुन्तला का रास्ता रोक लिया और उस की पीठ पर हाथ रख कर उसकी दिशा बदल दी। शकुन्तला उस स्पर्श को सहन नहीं कर सकी। उसके कंधे से लग गई। भर्राए हुए कंठ से बोली, "तुमने मुझे कितना सताया है! तुम्हें इतना निर्मोही समझती तो तुम्हारी तरफ आंख भी नहीं उठाती!"

दिवाकर के पास आज उत्तर नहीं था। बरांडे को पार करने के उपरांत प्रायः शकुन्तला का सारा भार दिवाकर के हाथों पर था। कमरे में प्रवेश करते ही वह छटपटाकर संभल गई और बत्ती जला दी।

दिवाकर के चेहरे का रंग तांबे की तरह दमदमा रहा था। ऐसा आज तक कभी उसने नहीं देखा था—वह रंग की मदहोशी से भयभीत हो उठी और अपनी आंखों पर हाथ रखकर ज़मीन पर बैठ गई।

दिवाकर ने कहा, "दूर रहने से बेगानापन बढ़ता है, अत्यधिक नैतिकतावादी होने से कापुरुषता बढ़ती है—एक-दूसरे के इतने निकट आकर भी आज हम कितने दूर हैं—केवल इसीलिए—केवल इसीलिए! आज यह दूरी सदैव के लिए तोड़ देनी होगी।" और उसने हाथों के बंधन से शकुन्तला के मुख-मंडल को मुक्त कर दिया। शकुन्तला की आंखें भीग आई थीं। तड़पकर वह दिवाकर के अंक में समा गई।

उस क्षण की वेदना अपार थी—जो धीरे-धीरे शांत हो रही थी—एकलय हो रही थी। शकुन्तला की जकड़ इतनी व्यथित थी। दिवाकर ने उसके

सिर को अपने वक्ष से हटाकर हाथों में ले लिया और उसके फड़कते हुए होंठों पर अपने होंठ रख दिए। दोनों में धड़कते हुए प्राणों की गति निस्पंद होकर क्षण भर के लिए एक हो गई थी। न जाने वह कैसी अनुभूति थी, जो लहर की तरह मस्तक से उठती थी और समस्त अंतर-प्रदेश को प्लावित करती जाती थी।

शकुन्तला को चेतना आई तो बलपूर्वक उसने अपनी देह को दिवाकर के मोहपाश से मुक्त करते हुए कहा, "मालूम होता है, आज नशा करके आए हैं। द्वार मुक्त है, रोशनी सिर पर दमक रही है और…।"

उस नज़र में प्यार था और उस कंठ में शहद की मिठास भरी थी। शकुन्तला ने खिड़कियों पर पर्दे डाल दिए। फाटक को सायपानी से बंद कर दिया और कहा, "आज तक हम एक-दूसरे को बिलकुल ही नहीं जानते थे। एक-दूसरे के विचारों, आदर्शों और चरित्र को जानते थे—आज से वे सब भूल जाएंगे—आज से हम जिज्ञासा से परे हो जाएंगे।"

दिवाकर ने कहा, "मुझे लगता है—मेरे अंदर का सोया हुआ शौर्य जाग रहा है। आज मैं आसमान के सितारे तोड़ सकता हूं।" वह उठकर खिड़की में खड़ी हुई शकुन्तला के निकट पहुंच गया और उसकी हथेलियों को गुदगुदाता हुआ बोला, "आज तुम्हें अपने जीवन की कहानी सुनाता हूं—मेरी मां बचपन में छोड़कर चली गई थीं। मेरी रिश्ते की एक जीजी थीं उन्होंने ही पालकर बड़ा किया। फिर उनकी भी शादी हो गई। मैं फिर बेसहारा हो गया। मुझे सभी प्यार करते थे, बचपन में मैं गंभीर हो गया था—लोग मेरा आदर करते थे। मेरा मन किसी की गोद में सोने को तड़पता था—पर लोग मेरी प्रशंसा करते थे। मुझे आसन देते थे, मेरे बहुत बड़ा आदमी होने की कल्पनाएं करते थे। उस सम्मान की पीड़ा मुझसे सही नहीं गई और एक रात सारे घर को सोता छोड़कर मैं चला आया…"

शकुन्तला ने एक गहरी सांस ली और उसके बहुत निकट आती हुई बोली, "कहां चले गए?"

"गांव के सीमांत से बाहर निकल कर मेरी चेतना लौटी। चारों तरफ सुनसान था, और चांदनी खिल रही थी। रात के अंचल में लू की तरह लहरें महक रही थीं। मेरे कदम श्मशान की ओर उठ गए। मैंने एक छोटे-से बुर्ज पर अपना मस्तक टेक दिया और वहीं सो गया। प्रातःकाल पिताजी ने कई परिजनों के साथ मुझे जगाया और सीने से लगाकर देर तक रोते रहे…

"उस दिन से वे हर समय मुझे अपने साथ रखते, परन्तु उनका साया भी सिर पर अधिक दिन तक नहीं टिक सका···" दिवाकर का कंठ भर आया था और उसने देखा कि शकुन्तला की आंखों से आंसुओं की एक लंबी धार बह रही है।

"फिर क्या हुआ?" शकुन्तला ने पूछा।

"दुनिया की किसी चीज़ में मेरा मन नहीं लगता था। मेरी तरफ से सबकी निगाहें हट गईं। भरे-पूरे कुनबे में मुझे वीरानी नज़र आती थी। मुझे बाहर स्कूल में पढ़ने भेज दिया गया, लेकिन कभी भी वक्त पर खर्च न मिलता। जीवन में उदासी भरती जा रही थी और अपनी बेबसी से मुक्त होने के लिए एक दिन मैं शहर के तालाब में कूद पड़ा।"

"अच्छा···फिर किसने बचाया?" शकुन्तला ने पूछा।

"बचाने वाले की मुझे याद नहीं—जब मुझे होश आया, तो मैं अस्पताल में था। अच्छा हो गया, तो अस्पताल वालों ने मेरे घर का पता पूछा। मैंने कहा—मेरा कोई नहीं! डाक्टर ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'मेरे एक प्रोफेसर मित्र हैं, उनके पास रहोगे?' मैंने स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया। प्रोफेसर चक्रवर्ती की तस्वीर आज भी भूलती नहीं है। उनकी बड़ी-बड़ी आंखों में स्नेह किस तरह छलकता था। उनके सफेद केश कानों पर झूलते रहते थे। डाक्टर की बात सुनकर प्रोफेसर चक्रवर्ती बोले, 'अरे, तुम मेरा बेटा फिर कहां से वापस ले आये हो। देखते नहीं हो—वह तस्वीर' मैंने भी वह तस्वीर देखी। मुझे पहली बार [illegible]भव हुआ—मैं अब क्या हूं। प्रोफेसर वेदान्ती थे—मुझे जीव, आत्मा [illegible] के रहस्[illegible]समझाया करते। शायद वह अपने स्वयं को वे रहस्[illegible] थे [illegible] जानते थे

करता हुआ मैं यहां पहुंचा हूं। पर ज्यों-ज्यों सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती गई, मेरा मन मेरी पकड़ से भागता गया। शान्ता को लेकर जो अप्रिय प्रसंग पैदा हुआ, उसे देखकर मैं घबरा उठा था। लगता था सारे जीवन का कर्तव्य मैंने पोटली में बांधकर वासना के गर्त में डुबो दिया है…

"उन दिनों मुझे अपने धर्मपिता की वे बहकी हुई बातें याद आती थीं और मैंने सोचा था कि मैं साहित्य में चला जाऊंगा, राजनीति से हट जाऊंगा—पर वे सब अपने से भागने के लक्षण थे। आदमी अपने से भाग नहीं सकता।"

"अपने से भागता है तो किसी दूसरे की पकड़ में आ जाता है—क्यों?" शकुन्तला ने मुसकराते हुए कहा और खिड़की बंद कर दी।

दिवाकर फिर बोला, "मैंने तुम्हें अपनी कहानी इसलिए सुनाई है कि तुम यह जान लो कि मेरी कोई पैतृक सम्पत्ति नहीं है।"

"तुम ही मेरी एकमात्र सम्पत्ति हो और मुझे प्रभु की कृपा पर भरोसा है।" शकुन्तला ने कहा।

"हां, यह भी जान लो कि मुझे प्रभु पर उतना भरोसा नहीं है जितने की तुम अपेक्षा कर सकती हो!"

"तुम्हें मालूम नहीं है…प्रभु पर तुम्हारा कितना भरोसा है—यह जानने या न जानने से प्रभु जी के कार्य-विधान में कोई अन्तर कभी नहीं आता!" दिवाकर को उत्तर मिला।

"और यह भी जान लो कि मुझे प्यार करना नहीं आता। मुझे जीवन-पर्यन्त प्यार नहीं मिला। रोटी से ज्यादा प्यार की भूख मेरे अन्दर जाग उठी है।"

"मैं तुम्हारे लिए प्यार का सरोवर उपस्थित कर दूंगी…तुम राजहंस की तरह निर्द्वंद्व होकर उसमें विहार करोगे…"

"सोचता हूं अगर बचपन से ही हम एक दूसरे को प्यार करते होते, तो आज तक प्यार की प्यास कितनी बुझ चुकी होती। आज मेरा जीवन कितना अनिश्चित है…कब हो कर्तव्य की पुकार मुझे तुमसे छीनकर दूर ले जा सकती है…उसकी कल्पना भी कितनी भीषण है!"

"आत्मा में बसने वाला प्यार कभी कोई छीन नहीं सकता। तुमसे अलग होकर भी मैं सदा तुम्हारे साथ रही हूं। तुम जहां रहोगे मैं तुम्हारे साथ रहूंगी। पर तुम कैसे सिपाही हो? प्यार करते समय दुख की ओर दृष्टि कर-

समय प्यार की बातें सोचते हो !" शकुन्तला ने एक झिड़की दी ।

"यही तो रोग है प्रिय ! कभी मेरा मस्तिष्क विरोधी विचारों की उलझन से फटता-सा अनुभव होने लगता है।"

"जितना आदमी अपने को मारता है, उतना ही उसका बल घटता है। विकार बढ़ते हैं—मैंने कभी इन बातों पर सोचा नहीं—तुम्हें देखकर यही कह सकती हूं।" दिवाकर सुन रहा था ।

"तुम्हारे अनुशासन में रहकर मैं अपने स्खलित व्यक्तित्व को फिर पा जाऊँगा—विश्वास होता है !"

रात के उस स्वर्णिम प्रहर में वे एक-दूसरे में डूब गए ! झंझावात में जिस प्रकार काठ-से-काठ टकराकर आग उगलता है, जिस प्रकार पंच तत्वों के परस्पर टकराने से प्रलय और सृष्टि होती है, उसी प्रकार वे दोनों प्रलय और सृष्टि के उस महानर्तन में तल्लीन थे। वहां समाज नहीं था, सामाजिकता को समर्थन देने वाला कानून नहीं था। प्राची से प्रस्फुटित होने वाला अरुणिम प्रकाश ही उनके विवाह की वेदी था, और वे दोनों परिणय-सूत्र में बंध गए थे ।

शकुन्तला ने अनुभव किया था कि जैसे उसकी देह से कोई अव्यक्त शक्ति निकलकर दिवाकर की देह में चली गई है और वह उससे एकाकार हो गई है, वह अब अलग नहीं है, अलग नहीं हो सकती। दिवाकर जैसे शरद्-कालीन वर्षा से धोए शिलाखंड के समान दमकने लगा था, उसकी मुखाकृति मरकत-मणि के समान प्रकाशमान हो उठी थी और शकुन्तला उस विभा को देखकर ठगी-सी रह गई थी।

कितने ही क्षण वे दोनों मौन होकर एक-दूसरे को देखते रहे ।

उनके सुख का अन्त नहीं था। उनके आश्वासनों की कोई सीमा नहीं थी। सारी रात इसी तरह आंखों में निकल गई थी। सड़क पर फेरी वालों की घंटियां घनघनाने लगीं। छोटे-छोटे वृक्षों पर पक्षी कूजने लगे। पर वे जुदा होना नहीं चाहते थे। छोटे बच्चे जाग गये थे और जार्ज किसी क्षण उधर आ सकता था। इसलिए शकुन्तला बाहर आ गई। साथ वाले कमरे में पहुंचकर वह अभी-अभी बीते हुए क्षणों की याद करती-करती गहरी नींद में सो गई।

दिवाकर अपने कक्ष से बाहर निकला, तो सूरज कई बांस ऊपर चढ़ आया था। और पहली बात कीर्ति के सामने पड़ने पर दिवाकर ने जो कही

"मुझे कुछ भी नहीं सूझता जीजी, आप चाहे जो करें। मैं कुछ न हूंगी।" शकुन्तला ने उदास मन से कहा।

"तो मैं आज ही तार दे दूंगी। आज ही कुमार को तार दे दो। मैं पापा पैरों पड़ूंगी···मैं उन्हें इस रिश्ते के लिए तैयार कर लूंगी···"

कीर्ति ने अपना निश्चय सुना दिया। लेकिन शकुन्तला को विश्वास नहीं होता था कि मां पिता जी को मान जाने की सुविधा कभी देंगी। उसने घबरा कर कहा, "कहीं भी तार देने की जरूरत नहीं है, जीजी। बात बिगड़ जायेगी। वे लोग शादी के लिए तैयार नहीं होंगे। उनके सामने दिक्कतें अनेक होंगी। धर्म के बाहर, जाति के बाहर, जिसका घर नहीं, नाते-रिश्तेदार नहीं, ऐसे पात्र के लिए मां अपने प्राण रहते राजी नहीं हो सकतीं। इन अड़चनों का सामना करने के लिए बस तुम्हारी और मेरी आंखों में आंसू ही तो होंगे—जिन्हें मां अपने आंचल से सहज ही पोंछ देंगी। जीजी, आपके पैरों पड़ती हूं किसी को कानोंकान खबर मत होने देना। यह मेरा अपना मामला है, इसके लाभ और हानि का उत्तरदायित्व मेरा है। आप चाहें तो जिम्मेदारी से बच सकती हैं—मैं चली जाऊंगी।"

इतना कहते-कहते उसकी आंखें डबडबा आईं।

"जाने प्रभु की क्या इच्छा है।" कीर्ति ने गहरी सांस ली, और कहा "जायेगी कहां ? मैं तेरी कुछ नहीं हूं ?"

शकुन्तला को उत्तर कुछ नहीं सूझा। वह बहिन के सीने से लिपट गई। कीर्ति के लिए बस उतना ही काफी था। उसका मातृत्व जाग उठा था और वह समाज के सब बंधन भूल गई थी। बोली, "यह शादी किसी भुलावे के कारण नहीं हो रही। हमने फौलाद को सांचे में ढाल कर जीवन की यह तस्वीर बनाई है···इस सप्ताह के अंदर ही रजिस्ट्रेशन हो जाना चाहिए।"

दिवाकर के लिए भी समस्या उतनी सरल नहीं थी। उसके कंधे पर एक उत्तरदायित्व सौंपा गया था। कपड़ा मिल का यह संघर्ष नगर के मजदूर आंदोलन में एक नया अध्याय प्रारंभ करने वाला था। साथी लोग उसके कुशल और दूरदर्शी नेतृत्व पर भरोसा रखते थे। उसके निर्णय की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे और उस निर्णय के स्थान पर जब शादी का प्रस्ताव सुनेंगे तो इस बाधा को पार करने में—जो उसकी अपनी बनाई हुई थी—कितनी कठिनता अनुभव होती थी।

उसने शादी का निर्णय करके ही अपने मस्तिष्क की टीस को समाप्त किया

था। पर दुःख उसका अपना था। किसी के दुःख से कोई ईर्ष्या नहीं करता, पर शादी तो सुख की चीज़ है। ईर्ष्या होना स्वाभाविक है! पर वह अपने वचन का पालन करेगा। यह निश्चय टल नहीं सकता!

यह यही सोचता हुआ, आकर बस में खड़ा हो गया था। चारों ओर की दुनिया घूम रही थी और वह सोचता जाता था : 'काश, आज शादी हरि-किशन होता और राजेन्द्र होता। राजेन्द्र की शादी में उसने स्वयं ही कन्या-दान किया था। न जाने क्यों मीना कई दिन से दीख नहीं पड़ती। आह, कितनी अच्छी लड़की है, मीना! इस निर्णय को सुनकर वह कितनी प्रसन्न होगी; शकुन्तला का वह कितना आदर करती है!...

मीना शकुन्तला का आदर करती है और चाहती है कि मेरी पत्नी बनकर वह मेरे विरोधाभासों को दूर करे। दिवाकर को सहसा उस घटना की याद हो आई—उसने मीना से उसका समस्त अन्तर्ज्ञान छीन कर उसे दिवाकर से दूर कर दिया था। वह मन ही मन कलपता और सोचता रहा! ये सब रास्ते-चलते मशीन आदमी के अनिर्दिष्ट जीवन-क्रम से उत्पन्न होते हैं। यह अकेला-पन न जाने कितने दिन से मुझे साल रहा है और कितनी खिड़कियों में प्रकट नहीं हो चुका है?...नहीं, मैं हर कीमत चुकाकर इस भयानक अकेलेपन से मुक्ति पाऊँगा...'

यह निश्चय करने के बाद भी उसके क्रियात्मक रूप का आयोजन घटा नहीं। सामने राजनीतिक उत्थान थी और आत्मपीड़न की भयावहता थी। प्रोफेसर चक्रवर्ती की स्नेह से छलकती हुई आँखें और उनकी दारुण व्यथा उसके आँखों के सम्मुख स्थूलता ग्रहण करती जा रही थी और उसका मन आर्द्र होता जा रहा था।

दौड़ती हुई बस में से भीड़ से भरी सड़क एक बहते हुए चश्मे के समान दीखने लगी, और वह जैसे उसमें हाथ-पैर मारता हुआ डूबा जा रहा था। बस रुकी तो भी उसे चैन नहीं हुआ। वह उतरा भी तो चलता-चलता स्कूल से बहुत आगे निकल गया।

जब वह लौट कर स्कूल पहुँचा, तो उसका मन असमर्थता के भाव से बिलकुल अस्त-व्यस्त हो उठा था। द्वार पर ही उसे जुलाहा ट्रेड यूनियनिस्ट शिवनारायण मिल गया। कामरेड दिवाकर को सदा सम्मानित करके उर्दू-आदाब करने के अपने अभ्यास को दोहराते हुए शिवनारायण ने कहा, समझा कि कामरेड गिरफ्तार कर लिए गए। रात कितना इंतज़ार कि

"हां, किडनैप तो कर ही लिया गया था। लेकिन वह राजनीतिक किडनैप नहीं था, तुम्हें पता नहीं है कि मैं शादी कर रहा हूं !" दिवाकर ने उत्तर दिया।

"शादी !" कामरेड का कंठ मिल के भोंपू की तरह एक खुरदरा हास्य कम्यून के कोने-कोने में बिखेरने लगा। कामरेड विश्वनाथन के चौड़े फौलादी चेहरे पर मंगोल नक्शोनिगार इस तरह फिट थे कि जैसे किसी ने आबनूस की लकड़ी पर महात्मा कन्फूशस का वुडकट बना दिया हो। उसके भरे हुए गालों में हंसी की बिजली जब चमकती है तो जेठ की दुपहरी में सावन का आनंद आने लगता है। विश्वनाथन की हंसी इतनी गहरी थी कि उसे अभी तक होश ही नहीं आया था। दिवाकर की व्यथा उससे भी बढ़ गई। अगर दूसरे साथी इकट्ठे न हो गये होते तो दिवाकर शायद रो पड़ता। उसमें अंदर-ही-अंदर कहीं हिंसा भाव उभरने लगा था। साथी विश्वनाथन ने हंसी को काबू करते हुए कहा, "शादी ! कहां है तुम्हारी ससुराल ? जेल में न ! और कौन है तुम्हारी दुलहिन—सरकार !"

यह बात अगर हंसी में उड़ानी होती तो शायद और भी गरमजोशी के साथ आगे बढ़ सकती थी। क्योंकि रात-दिन अभाव और संयम का जीवन बिताते-बिताते सभी कामरेड राजनीतिक रिश्तों के सहारे अपने संसारी रिश्ते भोग लेने में सिद्धहस्त थे। दल के जीवन में जब कभी संकट के बादल घिरते थे तो इस तरह के मजाकों की संख्या बढ़ जाती थी। पर दिवाकर उसे सहन नहीं कर सका। बोला, "सभी बातों को हंसकर उड़ा देने में कोई बड़ी बहादुरी नहीं है, कामरेड ! मैं शादी कर रहा हूं। मजाक करने की मेरी आदत नहीं है।"

दिवाकर का चेहरा गंभीर था, व्यथित था, परेशानी उस पर साफ झलकती थी। विश्वनाथन चुप हो गया। गर्म उत्तर सुनकर सभी साथी एक-दूसरे के चेहरों को देखने लगे। दिवाकर अपने कमरे की ओर बढ़ा, तो साथी मानसिंह ने कहा, "न जाने यह कौन-सा नया शिगूफा है !" अपने इस वाक्य की कोई प्रतिक्रिया न देखते हुए मानसिंह ने फिर एक और फुलझड़ी छोड़ी—"पार्टी के सिर पर जब इतने जबर्दस्त दायित्व बढ़ गये हैं तब शादी और हनीमून की कल्पना करना महज़ पार्टी के साथ विश्वासघात करना है।"

तरुण और गर्म बातें करने के अभ्यस्त साथियों के रक्त में जितना तीखापन तैरता रहता है, शायद मानसिंह के इस वाक्य में उसका एक अंश भी

नहीं था, पर दिवाकर को उसका होशहवास छू गया। उसने कहा, "तुम उस आदमी की तरह बातें करते हो, जिसे फांसी की सज़ा हो चुकी हो। इतने डीमधारणी नहीं हो, कि तुम्हारे मुंह में इस तरह की बातें शोभा दें। ज़बान पर लगाम रखकर बातें करनी चाहिए।"

मानसिंह कुछ कहने जा रहा था। गांधी कमलकान्त बीच में आ गए। उन्होंने मानसिंह को एक तरफ़ हटा दिया और चेहरे पर मुसकान लाते हुए बोले, "लेकिन कामरेड, यह आप को हुआ क्या! इतने अहम् मौके पर इतना गंभीर मज़ाक! और फिर शादी कैसी है, जिसका अब तक नाम भी सुना नहीं और आज इतनी बेताबी दिखा रहे हैं……"

विश्वनाथन शायद दिवाकर के रंग-ढंग को देख कर समझ गया था कि बात केवल मज़ाक-भर नहीं है, कहीं कुछ गंभीरता उसमें ज़रूर है। उसने बातचीत में दखलअंदाज़ी करते हुए कहा, "शादी होनी है तो हो जाए, लेकिन हड़ताल का क्या होगा?"

"हड़ताल की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ मेरी ही नहीं है। मेरी आग अब ठंडी पड़ चुकी है। हड़ताल का दायित्व अब नौजवानों पर पड़ना चाहिए। उनमें उत्साह है और मुनासिब यह है कि वे खुद आगे बढ़कर ज़िम्मेदारी संभालें।"

इस उत्तर में मानसिंह की बात पर एक करारा व्यंग था। सब जानते थे कि उस हड़ताल का पूरा-पूरा दायित्व दिवाकर पर था। यह बात इतनी गंभीर हो जाएगी कि मंज़िल से हटकर सिद्धांतों पर पहुंचने लगेगी, इसकी कल्पना कोई भी नहीं कर सकता था। विश्वनाथन ने कहा, "लेकिन शादी होने से हड़ताल के प्रति विरक्ति कैसे पैदा हो सकती है?"

"हो क्यों नहीं सकती है! शादी है, उसका आयोजन-प्रायोजन जुटाना है, फिर हनीमून है और न जाने क्या-क्या है। जब एक बुर्जुआ प्रथा की नक़ल करनी है तो फिर उसकी पूरी फ़ज़ीहत सिर पर ओढ़नी होती है।" मानसिंह पुकार एक ठहाका छोड़ गया।

दिवाकर खून का घूंट पीकर चुप रह गया। उसने कहा, "मैं सेन को मीटिंग बुलाता हूं और हड़ताल का दायित्व आप लोग किसी पर भी सौंपें। बाहर, इसका क्या मतलब कि आदमी कभी एक शाम भी अपने लिए न ले सके। मैं अवकाश चाहता हूं, किसी भी कीमत पर, चाहे आप लोग उसे बुर्जुआ विलासिता ही क्यों न कहें। अगर अब तक भी सिद्धान्त का दही किया जाता है, तो फिर किसी कम्यूनिस्ट पार्टी बन जाए, उसका क्या ज़रूरत है।"

विश्वनाथन ने एक साथी से कहा कि नीना को बुलवा लिया जाये ताकि वह कामरेड के दिमाग को थोड़ा ठंडा कर दे। विश्वनाथन दिवाकर के निर्दली नेतृत्व का सबसे बड़ा पैरोकार था। गंभीर होकर पूछा, "क्या इरादा पक्का कर लिया है ? आखिर कामरेड, वह लड़की है कौन ! हमको भी तो बताया होता। उसके मां-बाप शादी के लिए राज़ी हैं ?"

"लड़की राज़ी है—मां-बाप से मुझे क्या लेना है।"

"पहले तो ऐसा नहीं बोलते थे। शादी करो कामरेड, नाहक गुस्सा क्यों होते हो।"

"गुस्से की क्या बात है—शादी मां-बाप की तो नहीं होनी है। कौन मां-बाप हैं जो खुशी से अपनी बेटी के निर्णय में ही उसके सुख की कल्पना करें ! इस बात को लड़कियां जानती हैं। हर बालिग आदमी को अपने भविष्य के बारे में निर्णय करने का अधिकार अपने पास रखना चाहिए।"

"लेकिन कामरेड, प्रेम-प्रसंगों के लिए आप पार्टी को पहले ही काफी शोहरत दे चुके हैं। जो कमी बच गई थी, उसके लिए किसी दूसरे की उम्मीदवारी का खयाल नहीं रखेंगे !"

दिवाकर का चेहरा इस निर्मल उक्ति से खिल उठा।

अच्छे मन से विरोधी बात भी कही जाए तो कड़वी नहीं लगती। दिवाकर ने कहा, "हमेशा के लिए इन प्रेम-प्रसंगों को समाप्त करने के लिए ही मैं शादी कर रहा हूं। विश्वनाथन, मैं अकेलेपन से थक गया हूं। अब और नहीं लड़ा जाता। मैं इसके बिना किसी भी काम का अपने को नहीं पाता। पर साथी लोग उसे बूर्जुआ विश्वासघात कहते हैं।"

विश्वनाथन ने अपना हाथ दिवाकर की पीठ पर रखते हुए कहा, "कौन कह सकता है तुम्हारी शान में ऐसी बातें ? कह कर वह पार्टी में रहने की उम्मीद भी कर सकता है ?"

"मेरा मतलब यह नहीं है कामरेड, कि अपने व्यक्तिगत हित के लिए दूसरों से वैर साधूं। हम सब लोग एक खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक-जुट होकर काम करते हैं। अपने सामाजिक हितों का समष्टीकरण हम कर सकते हैं, लेकिन व्यक्तिगत का समष्टीकरण कैसे किया जा सकता है ! मैं कैसी लड़की पसंद करता हूं, किस प्रकार का विवाह मुझे पसंद है, मैं विवाह करता हूं या नहीं करता हूं, इसमें मैं अपनी राय को ही अंतिम निर्णायक रूप मान सकता हूं। विश्वनाथन, कभी-कभी अपने ही बनाये हुए इस फौलादी ढांचे में

इस युद्ध-सा लगता है !"

वार्तालाप का सिलसिला बीच में ही टूट गया। मीना के साथ सब साथी इकट्ठे होकर आ पहुँचे। मीना के चेहरे पर एक रहस्यमय गम्भीरता उभर आई थी। साथी लोग अपनी-अपनी अटकल लगाकर दुलहिन का अता-पता लगाने लगे। मानसिंह का रंग कब बदल गया था। वह बोला, "कामरेड दिवाकर, आप से क्षमा माँगते हुए पूछता हूं कि आपकी दुलहिन कौन है? पार्टी-कामरेड है न?"

दिवाकर मुसकराने लगा।

रामस्वरूप ने कहा, "इसकी दुलहिन का पता केवल मीना बता सकती है, बाकी सब कोशिशें बेकार होंगी।"

मीना को इस प्रश्न को सार्वजनिक मामलेदार बनने देना दिवाकर को उचित नहीं लगा। बात काटकर वह बोला, "अटकल लगाने की ज़रूरत नहीं है। आप सभी लोग दुलहिन को जानते हैं!"

दिवाकर के इस अस्पष्ट संकेत को समझते हुए मीना ने शकुन्तला को दुलहिन के रूप में सभी साथियों से परिचित करा दिया।

सभी चेहरों पर प्रश्न उभर आए।

मीना ने कहा, "मिस शकुन्तला जो केवल विचारों से हमारी साथी नहीं है, लेकिन अपने संवेदनशील, निष्ठावान हृदय की सम्पत्ति लेकर शायद वह हमारे लिए बहुत बड़ी शक्ति सिद्ध होगी। मैं उन्हें जानती हूं—नैतिक बल, चारित्रिक दृढ़ता और विवेकशीलता, आत्मा और काया दोनों के सौंदर्य की वे खान हैं। मैं कामरेड दिवाकर को इस चुनाव के लिए बधाई दे सकती हूं।"

दिवाकर का चेहरा लाल-लाल हो गया।

बाहर सूरज की रोशनी में काफी तेज़ी आ गई। बार-बार मजदूरों का एक दल अंदर आने की प्रतीक्षा में बाहर खड़ा था। टेलीफोन पर किसी महिला ने दिवाकर को बुलाया था। दिवाकर ने टेलीफोन सुना। शांति का टेलीफोन था। उन्होंने जल्दी-से-जल्दी रजिस्ट्रेशन हो जाने की बात कही थी। मजदूर कार्यकर्ता अंदर आ गए थे और कह रहे थे, "विरोधी दल की सर-गर्मियां काफी तेज़ हो गई हैं। कहीं ऐसा न हो कि हम अधिक उचित अवसर के इन्तज़ार में बने-बनाये काम को ही बिगाड़ दें।" दिवाकर यह सुन रहा था। व्यक्ति और समूह को लेकर उसके विचारों में एक तुमुल संघर्ष फिर शुरू हो गया था। कभी वह अपने व्यक्तित्व का इतना [illegible]

कि उसकी अपनी कुंठाएं नितांत नगण्य प्रतीत होतीं। एक युग-निर्माता के रूप में उसकी कल्पना करते हुए—उसे लगता कि उस महान विशेषण का अर्जन करने के लिए चाहे जितनी बड़ी कुर्बानी कर दी जाए, थोड़ी है। इस निष्कर्ष से उसकी छाती फूल उठती और मन में हर्ष का एक वेगवान स्रोत उमगने लगता, लेकिन साथ ही उसकी दृष्टि मानवता के सदियों से चलते आये संघर्ष की ओर उठ जाती और उसके समान अनेक युग-पुरुष कहे जाने वाले लोग इतिहास के उस महान पटल पर बुद्‌बुद के समान बनते और बिगड़ते नज़र आते। इस विचार से उसकी स्नायुग्रंथियां शिथिल पड़ने लगतीं और सामने बैठे हुए कार्यकर्ता उसे यमराज के भेजे दूतों के समान नज़र आने लगते। वे कार्यकर्ता बोलते जा रहे थे और दिवाकर सुन रहा था।

इतने में नीना ने आकर उन कार्यकर्ताओं को सूचना दी कि दिवाकर साहब शादी कर रहे हैं।

"कब ?" चकित कार्यकर्ताओं के मुंह पर उत्साह की रोशनी उभर आई—"वाह, ऐसे बढ़िया अवसर पर इतना शुभ काम ! मज़ा तो तब है कि इधर हड़ताल का ऐलान हो और उधर शादी की शहनाई बजे। शहर की मजदूर-तहरीक का यह दिन आपकी शादी की सालगिरह बने और अपनी जीत की खुशी के साथ हर साल हम इस ऐतिहासिक शादी की भी सलाह-गिरह मनाया करें।"

दिवाकर के अंतर में एक थिरकन दौड़ गई। उसने बोलने वाले साथी का नाम लेकर कहा, "ये दिन मेरी शादी और शहादत—दोनों का दिन हो सकता है पूरनसिंह !"

"फिर क्या बात है कामरेड ! उस दिन के बाद देश का हर मेहनतकश आपकी शहादत का बदला लेने की सौगंद खाकर शादी की मेंहदी रचाया करेगा। पर ऐसी अपशकुन की बातें मुंह से क्यों निकालते हो कामरेड ? आपके दल में बहादुरों की कमी नहीं है। अगर आपके रक्त की एक बूंद जमीन पर गिरी तो हम खून के दरिया बहा देंगे। बस, आपके इशारे की देर है।"

मज़दूर कार्यकर्ताओं की जोशीली बात सुनकर दिवाकर को रोमांच हो आया। उसका गला रुंध गया। बोला, "केवल खून के दरिया बहाने से काम चला होता पूरनसिंह, तो आदमी के खून का इतना बड़ा दरिया आदमी ने बहाया है कि सागर उससे भर सकते थे। हम लोग खून का दरिया बहाने के

लिए नहीं, बरन् मनुष्यता के उस खूबसूरत अंकुर को, जिसे कुछेक मतलब-परस्तों ने अपने पैरों-तले कुचल डाला है, अपने खून से सींचने के लिए एक-जुट हुए हैं। हमें अपने कार्यकर्ताओं को अनुशासन में रखना है। हमारा संघर्ष, हमारी कुर्बानी और हमारी लड़ाई जारी है। सत्य के लिए, न्याय के लिए भाईचारे के लिए और सबकी बहबूदी के लिए हम संघर्ष करते हैं। हर मज-दूर सिपाही अपनी कमर कस लेता है—और बिना दाने-पानी के, बिना हथियारों के हमारी लड़ाई चलती है।"

दिवाकर पर न जाने कौन-सा जादू चढ़ गया था। उन हारे हुए मजदूरों के चेहरों से एक ज्योति निकल रही थी जो उसकी देह में भरती जा रही थी और उसके अंदर में आनंद का इतना महान प्रवेग उमड़ चला था कि वह किसी अदना-सी आन के लिए अपना शीश काटकर दे सकता था!

मजदूर साथी चले गए। दिवाकर सोचता रहा कि आदमी के अंदर धधकने वाली इस विराट् मंगल अग्नि में किस तरह आदमी की समस्त कुंठाएं भस्मीभूत हो जाती हैं!

दिवाकर की उलझनें दूर हो चुकी थीं। उसने विश्वनाथन से कहा कि आज शाम तक स्थिति का जायजा लेकर हड़ताल का समय निश्चित कर दिया जायेगा और हड़ताल का सारा उत्तरदायित्व दिवाकर के ऊपर होगा।

संध्या समय दिवाकर जब दफ्तर से बाहर निकला, तो उसका मन विचारों की रेलपेल से बौखलाया हुआ नहीं था। उसके सामने एक उद्देश्य था कि वह नगर के जीवन में मजदूर-एकता का एक सीमा-चिह्न स्थापित करेगा और इस काम में उसे जितनी भी बड़ी कुर्बानी करनी पड़े, वह करेगा। शादी वह कर लेगा, परन्तु जीवन को और भी अधिक उज्ज्वल, साहसिक और संपूर्ण बनाने के लिए, क्षुद्र कुंठाओं से हमेशा को नजात पाने के लिए—विषम वासनाओं के अनवरत चक्र में फंस कर कोल्हू में चलने वाला बैल बनने के लिए नहीं, जिसकी आंखों पर पट्टा बंधा होता है।

दिवाकर को बड़ी मुद्दत बाद अपना पुराना निर्भीक, दबंग और तेजस्वी स्वभाव लौटता दिखाई देता था। वह सीधा शकुन्तला से मिलने चला गया।

कीर्ति के इरादे में पुख्तगी थी। शकुन्तला का चेहरा थोड़ा गमगीन नज़र आता था। दिवाकर ने विनोद से पूछा, "अभी समय है, अपना वक्तव्य बदल सकती हो। वरना दो फौलादी पंजों की जकड़ में हमेशा के लिए बंदी बना ली जाओगी!"

कि उसकी अपनी कुंठाएं नितांत नगण्य प्रतीत होतीं। एक युग-निर्माता के रूप में उसकी कल्पना करते हुए—उसे लगता कि उस महान विशेषण का अर्जन करने के लिए चाहे जितनी बड़ी कुर्बानी कर दी जाए, थोड़ी है। इस निष्कर्ष से उसकी छाती फूल उठती और मन में हर्ष का एक वेगवान स्रोत उमगने लगता, लेकिन साथ ही उसकी दृष्टि मानवता के सदियों से चलते आये संघर्ष की ओर उठ जाती और उसके समान अनेक युग-पुरुष कहे जाने वाले लोग इतिहास के उस महान पटल पर बुद्‌बुद के समान बनते और बिगड़ते नज़र आते। इस विचार से उसकी स्नायुग्रंथियां शिथिल पड़ने लगतीं और सामने बैठे हुए कार्यकर्ता उसे यमराज के भेजे दूतों के समान नज़र आने लगते। वे कार्यकर्ता बोलते जा रहे थे और दिवाकर सुन रहा था।

इतने में नीना ने आकर उन कार्यकर्ताओं को सूचना दी कि दिवाकर साहब शादी कर रहे हैं।

"कब ?" चकित कार्यकर्ताओं के मुंह पर उत्साह की रोशनी उभर आई—"वाह, ऐसे बढ़िया अवसर पर इतना शुभ काम ! मज़ा तो तब है कि इधर हड़ताल का ऐलान हो और उधर शादी की शहनाई बजे। शहर की मज़दूर-तहरीक का यह दिन आपकी शादी की सालगिरह बने और अपनी जीत की खुशी के साथ हर साल हम इस ऐतिहासिक शादी की भी सलाह-गिरह मनाया करें।"

दिवाकर के अंतर में एक थिरकन दौड़ गई। उसने बोलने वाले साथी का नाम लेकर कहा, "ये दिन मेरी शादी और शहादत—दोनों का दिन हो सकता है पूरनसिंह !"

"फिर क्या बात है कामरेड ! उस दिन के बाद देश का हर मेहनतकश आपकी शहादत का बदला लेने की सौगंद खाकर शादी की मेंहदी रचाया करेगा। पर ऐसी अपशकुन की बातें मुंह से क्यों निकालते हो कामरेड ? आपके दल में बहादुरों की कमी नहीं है। अगर आपके रक्त की एक बूंद ज़मीन पर गिरी तो हम खून के दरिया बहा देंगे। बस, आपके इशारे की देर है।"

मज़दूर कार्यकर्ताओं की जोशीली बात सुनकर दिवाकर को रोमांच हो आया। उसका गला रुंध गया। बोला, "केवल खून के दरिया बहाने से काम चला होता पूरनसिंह, तो आदमी के खून का इतना बड़ा दरिया आदमी ने बहाया है कि सागर उससे भर सकते थे। हम लोग खून का दरिया बहाने के

लिए नहीं, वरन् मनुष्यता के उन खूबसूरत अंकुर को, जिसे कुछेक मतलब-परस्तों ने अपने पैरों-तले कुचल डाला है, अपने खून से सींचने के लिए एक-जुट हुए हैं। हमें अपने कार्यकर्ताओं को अनुशासन में रखना है। हमारा संघर्ष, हमारी कुर्बानी और हमारी महादत जारी है। सत्य के लिए, न्याय के लिए भाईचारे के लिए और सबकी बहबूदी के लिए हम संघर्ष करते हैं। हर मज़दूर सिपाही अपनी कमर कस लेता है—और बिना दाने-पानी के, बिना हथियारों के हमारी लड़ाई चलती है।"

दिवाकर पर न जाने कौन-सा जादू चढ़ गया था। उन तपे हुए मज़दूरों के चेहरों से एक ज्योति निकल रही थी जो उसकी देह में भरती जा रही थी और उसके अंदर में आनंद का इतना महान प्रवेग उमग चला था कि वह किसी अदना-सी बात के लिए अपना शीश काटकर दे सकता था !

मज़दूर साथी चले गए। दिवाकर सोचता रहा कि आदमी के अंदर धनकने वाली इस विराट् मंगल अग्नि में किस तरह आदमी की समस्त कुंठाएं भस्मीभूत हो जाती हैं !

दिवाकर की उलझनें दूर हो चुकी थीं। उसने विश्वनाथन से कहा कि आज शाम तक स्थिति का जायज़ा लेकर हड़ताल का समय निश्चित कर दिया जायेगा और हड़ताल का सारा उत्तरदायित्व दिवाकर के ऊपर होगा।

संध्या समय दिवाकर जब कम्यून से बाहर निकला, तो उसका मन विचारों की रेलपेल से बौखलाया हुआ नहीं था। उसके सामने एक उद्देश्य था कि वह नगर के जीवन में मज़दूर-एकता का एक सीमा-चिह्न स्थापित करेगा और इस काम में उसे कितनी भी बड़ी कुर्बानी करनी पड़े, वह करेगा। शादी वह कर लेगा, परंतु जीवन को और भी अधिक ऊर्जित, साहसिक और संपूर्ण बनाने के लिए, क्षुद्र कुंठाओं से हमेशा को नजात पाने के लिए—विषम वासनाओं के अनवरत चक्र में फंस कर कोल्हू में चलने वाला बैल बनने के लिए नहीं, जिसकी आंखों पर पट्टा बंधा होता है।

दिवाकर को बड़ी मुद्दत बाद अपना पुराना निर्भीक, दबंग और तेजस्वी स्वभाव लौटता दिखाई देता था। वह सीधा शकुन्तला से मिलने चला गया।

कीर्ति के इरादे में पुख्तगी थी। शकुन्तला का चेहरा थोड़ा गमगीन नज़र आता था। दिवाकर ने विनोद से पूछा, "अभी समय है, अपना वक्तव्य बदल सकती हो। वरना दो फौलादी पंजों की जकड़ में हमेशा के लिए बंदी बना ली जाओगी !"

एक उदासीन मुसकान शकुन्तला के चेहरे पर दौड़ गई—जिसका मतलब था कि ज़िंदगी का नाम बचपने से कुछ ज्यादा है, जिसे आदमी बहुधा नहीं समझा करते। वह बोली, "अब जितने वक्त तक अनिश्चय की स्थिति रहेगी, मेरा मन इसी तरह डूबा रहेगा। जीजी ने तैयारियां शुरू कर दी हैं। अभी-अभी बाज़ार से लौट कर आई हैं। जैसे भूत सवार हो गया है। न जाने क्यों इतना जुटा रही हैं। अधिक पास होने से उसे बना रखने का मोह पैदा होता है, क्यों, आप यही कहेंगे न ?"

कीर्ति के सामने अब दिवाकर बाहर का आदमी नहीं था। उसने पूछा, "शादी के बाद आपने कहां रहने का निश्चय किया है ?"

"जैसे वक्त का तकाज़ा होगा कर लिया जाएगा। अभी से उसकी चिंता की क्या ज़रूरत है ?" दिवाकर ने लापरवाही से उत्तर दिया।

"माना कि वक्त का तकाज़ा निश्चयों को बदल देता है, पर पहले से निश्चित किये हुए उद्देश्य में परिवर्तन करने में उलझन नहीं होती। वरना हर परिवर्तन को आदमी मुसीबत मानकर दुःख उठाने लगता है।" कीर्ति ने उसकी लापरवाही को ताड़ लिया था।

"सच तो यह है कि आज की दुनिया में आदमी केवल उतना निश्चय कर सकता है जितने का ताल्लुक उसकी अपनी निजता से है। जैसे कि भूख लगे तो रोटी खाने या न खाने का निश्चय कर ले। इससे आगे तो मजबूरियां आ जाती हैं। कम्यून से बाहर इसलिए नहीं जा सकता कि इस बीच में शायद रात-दिन काम में लगे रहने की स्थिति बन जाए। बाहर जाने के लिए सरमाया चाहिए—जिसकी व्यवस्था हो सकती है, लेकिन अपने से पहले उसका उपयोग किसी दूसरी जगह करना ज्यादा ज़रूरी हो सकता है। इस लिए बेहतर यह है कि भविष्य की किसी भी योजना का ज़िक्र ही न किया जाए।"

इस बेलौस वार्ता को सुनकर दोनों बहिनें चुप हो गईं। उनके चेहरे अलबत्ता उतर गये थे और शाम के भोजन के समय तक फिर कोई खास बात नहीं हुई। चलते समय कीर्ति ने दिवाकर से कहा, "कल कोर्ट जाकर फार्म ले आइएगा, रजिस्ट्रेशन जल्दी हो जाना चाहिए।"

दिवाकर ने लौटकर देखा कि कम्यून में एक अच्छी-खासी भीड़ एकत्र हो रही है। चर्चा यह थी कि मिल-मालिकों की साज़िश से एक दूसरी यूनि-यन बनाई जा रही है और आशंका यह थी कि उसका रजिस्ट्रेशन होते ही

मालिक लोग उसे स्वीकार कर लेंगे और इस तरह मजदूरों के इस क्रांतिकारी कदम को नकारा साबित कर दिया जायेगा। कार्यकर्ताओं में एक जबर्दस्त सनसनी थी। तरह-तरह की इश्तालंगेज बातें कही जा रही थीं। इसमें शक नहीं था कि मजदूरों में जोश बहुत ही अधिक था और उस पर चाहे जैसा पानी चढ़ाया जा सकता था। विश्वनाथन का चेहरा तमतमाया हुआ था। वह दिवाकर के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। दिवाकर के आते ही वह बोला, "कामरेड, सरमाएदार पैसे के बल पर मजदूरों के एके को तोड़ने की साजिश कर रहे हैं—हम उनके घर की ईंट-से-ईंट बजा देंगे।"

अनेक अवसरों पर अत्यंत धैर्य और विवेक से काम लेने वाला विश्वनाथन भी इतना बेसब्र और अस्थिर हो सकता है—इसके लिए कारण बहुत ही गंभीर होना चाहिए। इसकी पूर्व कल्पना दिवाकर ने कर ली थी। सभा प्रारंभ हुई। विश्वनाथन ने प्रस्ताव रखा कि दो हफ्ते की नोटिस देकर मालिकों से यूनियन को स्वीकार कर लेने की मांग की जाए और उसके अस्वीकार पर हड़ताल शुरू कर दी जाय।

संशोधन आया—"इस बीच में अगर हमारे नोटिस पर मालिक लोग उचित कारंवाई नहीं करते, तो कामबंदी करके सांकेतिक हड़ताल की जाए।"

अब दिवाकर का बोलने का नम्बर था। वह बोला, "मालिकों ने समानांतर यूनियन कायम करने की कोशिश करके हमारी तहरीक से टक्कर लेने की हिम्मत की है, इसका मतलब साफ है कि हमारे लिए अंतिम कार्रवाई करने का वक्त आ गया है, लेकिन देखना यह है कि संकट को झेलने के लिए हमारे पास तैयारियां कितनी हैं। इस कदम का असर सीधे तौर पर बड़ी तादाद में मजदूरों पर पड़ेगा। क्या हम एक लंबे अर्से तक उनके नैतिक साहस को बनाए रखने के लिए कम-से-कम भी मोहय्या कर सकते हैं! हमारी इस शक्ति पर ही हमारी कामयाबी निर्भर होगी।"

एक आवाज आई—"वक्त से पहले मजदूरों के नैतिक पतन की चर्चा करना अपनी शक्ति में खुद ही अविश्वास करना है। हमारी जद्दोजहद शुरू होने के बाद ही यह पता चलता है कि स्थिति क्या होगी।"

दूसरी आवाज, "देखना यह भी है कि दूसरे पक्ष की कमजोरियां क्या हैं। अगर इस वक्त आकस्मिक तौर पर हमला करके हम मालिकों और गद्दारों की साजिश को तहस-नहस कर सकते हैं, तो हमारी जीत होगी, यह दावे के साथ कहा जा सकता है।"

आवाज़ों की गहमागहमी उभरने लगी।

दिवाकर ने शान्त स्वर में कहा, "हड़ताल के प्रारंभ करने में मुझे कोई ऐतराज़ नहीं है। अपनी दुर्बलताओं के बावजूद हमें अपनी तहरीक जारी रखनी है। सिर्फ यह खयाल करना है कि एक बार कदम बढ़ाकर उसमें लरज न आने दें। क्रान्ति के हर सिपाही का उठा हुआ कदम बड़ी समाजी इमारत की नींव बनता है, जिसके बनाने का हौसला हम सब के सीनों में जुंबिश करता है। आज की सभा कामरेड विश्वनाथन को इस बात का अधिकार देती है कि वह यूनियन की ओर से लिखित स्मृतिपत्र मालिकों को भेज दें और हड़ताल का वातावरण तैयार करें। इस बार हमें तालाबंदी की धमकी दी जाएगी, कम-से-कम एक माह के लिए हर एक मजदूर सिपाही को अपनी कमर कसनी होगी। हम गरीब मज़दूरों की सिर्फ एक ही लड़ाई है और हमारा एक ही हथियार है कि हम कितनी देर तक अपने पेट की भूख से लड़ सकते हैं!"

इस निश्चय पर पहुंच कर सभा का काम खत्म हो गया और बाहर से आने वाले लोगों में से बहुत से चले गए। सभा तो बर्खास्त हो गई, परन्तु कुछ खास मजदूर कर्मचारी पीछे रुक गए।

ये चुने हुए लोग कम्यून में पहुंच गए। दिवाकर ने देखा कि अधिक तरुण मज़दूर नेता इस बार ज़ोर-आज़माई के लिए मन में एक संकल्प लेकर बैठे हुए हैं और इस समय शांति और विवेक की चर्चा करना तूफान के सामने तिनके को खड़ा करने के समान था। चर्चा होने से पहले वह चाहता था कि सभी पेट भर के कुछ खा लें। उसने नीना से कहा कि हड़ताल करने के शुभ निश्चय के स्वागत में अच्छी चाय का आयोजन किया जाए। उसने कई दिन बाद नीना से प्रसन्न-मुख होकर बातचीत की थी, और नीना, जो अपने ही विरुद्ध मौन का कवच धारण करके बैठ गई थी, अब अनुभव करने लगी थी कि दिवाकर को छोड़ कर उसे एक ही उद्देश्य और आदर्श को रखने वाले किसी भी दूसरे कामरेड में आत्मीयता प्राप्त नहीं हो सकती। दिवाकर की निकटता पाकर उसका मानस कमल फिर खिल उठा। वह बोली, "केवल रोटी के लिए लड़ने की कल्पना करके क्रांति का कारवां आप लोग आगे नहीं बढ़ा सकते। बनवाने के लिए मैं चाहे जो कुछ बनवा दूंगी।"

"तुम मेरा आशय ठीक-ठीक नहीं समझ सकी हो, नीना, सिद्धान्त की बातें फिर होती रहेंगी, अभी साथियों के जलपान का प्रबन्ध कर दो और क्यों

न ये बातें सब के सामने कहो ! राजेन्द्र के जाने से वह मोर्चा ही बिलकुल ढीला पड़ गया है।"

"अच्छा आप जाइए। जाकर वहां बैठिए। फिजूल की बातें खड़ी करने में कुछ फायदा नहीं। मैं ज्यादा कुछ नहीं जानती, लेकिन क्रान्ति का पाठ पढ़ने के लिए जो तुमने उन्हें विलायत भेजा है—मुझे इस बात में यकीन नहीं है। शायद राजनीति ही ऐसा सबक है जो सिखाने से कभी नहीं सीखा जा सकता। क्या उनके सीखने में इतनी व्यस्तता हो सकती है कि दो महीने में चिट्ठी लिखने की भी फुर्सत नहीं हुई है। वे गरीब घर में पैदा होने वाले कामरेड नहीं हैं। मैं ही जानती हूं किस तरह उनकी स्वच्छन्दताओं को रोकती रही हूं।"

नीला की आंखें छलक आईं।

दिवाकर को लगा कि जैसे मात्र राजनीतिक आदर्शों को लेकर वह सोचता-सोचता ही उस गोष्ठी में पहुंचा, जहां क्रांति की आंच से गरमाए हुए चेहरे बहस के एक सरगर्म दौर में पहुंच चुके थे। दिवाकर के अपने स्थान पर बैठते ही एक साथी ने कहा, "इस हड़ताल को इस तरीके से चलाना है कि न सिर्फ इन जालिम थैलीशाहों के खूनी दांत टूट जाएं, बल्कि वे गद्दार भी खत्म हो जाएं, जो क्रान्तिकारियों का चोला पहनकर मजदूर-तहरीक की पीठ में छुरा भोंकते हैं।"

दिवाकर ने मुसकराते हुए कहा, "यह पता चलना बहुत मुश्किल है कि गद्दार कौन है ! गद्दार इसीलिए कहते हो न कि उसके विचार आप से मेल नहीं खाते ! ईमानदार लोग भी गुमराह होते हैं।"

"कामरेड, आपको हो क्या है ? कैसी लचर बातें करने लगे हो !" उस नेता की आवाज उभरी।

"लचर ही क्यों, इसे कायरता भी कहा जा सकता है। अक्ल से काम लेने वाला शायद कायर हो ही जाता है। क्यों, विवेक का दूसरा नाम कायरता नहीं है ? पर मैं यह मानता हूं कि कुछ लोग क्षुद्र स्वार्थों के लिए बहुत बड़े सिद्धान्तों को तिलांजलि दे देते हैं। ऐसे गद्दारों का पर्दाफाश होना ही चाहिए।"

"नो-नो, दे मस्ट बी लिक्विडेटेड टू ए स्टेट आव कम्प्लीट एक्सटिंशन !" तरुण साथी का स्वर इस बार सबके ऊपर गूंज उठा।

अब तक चाय आ गई। चाय प्यालों से उठने वाली गर्म-गर्म भाप में

आवाज़ों की गहमागहमी उभरने लगी।

दिवाकर ने शान्त स्वर में कहा, "हड़ताल के प्रारंभ करने में मुझे कोई ऐतराज़ नहीं है। अपनी दुर्बलताओं के बावजूद हमें अपनी तहरीक जारी रखनी है। सिर्फ यह खयाल करना है कि एक बार कदम बढ़ाकर उसमें लरज न आने दें। क्रान्ति के हर सिपाही का उठा हुआ कदम बड़ी समाजी इमारत की नींव बनता है, जिसके बनाने का हौसला हम सब के सीनों में जुंबिश करता है। आज की सभा कामरेड विश्वनाथन को इस बात का अधिकार देती है कि वह यूनियन की ओर से लिखित स्मृतिपत्र मालिकों को भेज दें और हड़ताल का वातावरण तैयार करें। इस बार हमें तालाबंदी की धमकी दी जाएगी, कम-से-कम एक माह के लिए हर एक मज़दूर सिपाही को अपनी कमर कसनी होगी। हम गरीब मज़दूरों की सिर्फ एक ही लड़ाई है और हमारा एक ही हथियार है कि हम कितनी देर तक अपने पेट की भूख से लड़ सकते हैं!"

इस निश्चय पर पहुंच कर सभा का काम खत्म हो गया और बाहर से आने वाले लोगों में से बहुत से चले गए। सभा तो बर्खास्त हो गई, परन्तु कुछ खास मज़दूर कर्मचारी पीछे रुक गए।

ये चुने हुए लोग कम्यून में पहुंच गए। दिवाकर ने देखा कि अधिक तरुण मज़दूर नेता इस बार ज़ोर-आज़माई के लिए मन में एक संकल्प लेकर बैठे हुए हैं और इस समय शांति और विवेक की चर्चा करना तूफान के सामने तिनके को खड़ा करने के समान था। चर्चा होने से पहले वह चाहता था कि सभी पेट भर के कुछ खा लें। उसने नीना से कहा कि हड़ताल करने के शुभ निश्चय के स्वागत में अच्छी चाय का आयोजन किया जाए। उसने कई दिन बाद नीना से प्रसन्न-मुख होकर बातचीत की थी, और नीना, जो अपने ही विरुद्ध मौन का कवच धारण करके बैठ गई थी, अब अनुभव करने लगी थी कि दिवाकर को छोड़ कर उसे एक ही उद्देश्य और आदर्श को रखने वाले किसी भी दूसरे कामरेड में आत्मीयता प्राप्त नहीं हो सकती। दिवाकर की निकटता पाकर उसका मानस कमल फिर खिल उठा। वह बोली, "केवल रोटी के लिए लड़ने की कल्पना करके क्रांति का कारवां आप लोग आगे नहीं बढ़ा सकते। बनवाने के लिए मैं चाहे जो कुछ बनवा दूंगी।"

"तुम मेरा आशय ठीक-ठीक नहीं समझ सकी हो, नीना, सिद्धान्त की बातें फिर होती रहेंगी, अभी साथियों के जलपान का प्रबन्ध कर दो और क्यों

न ये बातें सब के सामने कहो ! राजेन्द्र के जाने से वह मोर्चा ही बिलकुल ढीला पड़ गया है।"

"अच्छा आप जाइए। जाकर वहां बैठिए। फिजूल की बातें खड़ी करने से कुछ फायदा नहीं। मैं ज्यादा कुछ नहीं जानती, लेकिन क्रान्ति का पाठ पढ़ने के लिए जो तुमने उन्हें विलायत भेजा है—मुझे इस बात में यकीन नहीं है। शायद राजनीति ही ऐसा सबक है जो सिखाने से कभी नहीं सीखा जा सकता। क्या उनके सीखने में इतनी व्यस्तता हो सकती है कि दो महीने से चिट्ठी लिखने की भी फुर्सत नहीं हुई है। वे गरीब घर में पैदा होने वाले कामरेड नहीं हैं। मैं ही जानती हूं किस तरह उनकी स्वच्छन्दताओं को रोकती रही हूं।"

नीना की आंखें छलक आईं।

दिवाकर को लगा कि जैसे मात्र राजनीतिक आदर्शों को लेकर वह सोचता-सोचता ही उस गोष्ठी में पहुंचा, जहां क्रांति की आंच से गरमाए हुए चेहरे बहस के एक सरगर्म दौर में पहुंच चुके थे। दिवाकर के अपने स्थान पर बैठते ही एक साथी ने कहा, "इस हड़ताल को इस तरीके से चलाना है कि न सिर्फ इन जालिम थैलीशाहों के खूनी दांत टूट जाएं, बल्कि वे गद्दार भी खत्म हो जाएं, जो क्रान्तिकारियों का चोला पहनकर मजदूर-तहरीक की पीठ में छुरा भोंकते हैं।"

दिवाकर ने मुसकराते हुए कहा, "यह पता चलना बहुत मुश्किल है कि गद्दार कौन है ! गद्दार इसीलिए कहते हो न कि उसके विचार आप से मेल नहीं खाते ! ईमानदार लोग भी गुमराह होते हैं।"

"कामरेड, आपको हो क्या है ? कैसी लचर बातें करने लगे हो !" उस नेता की आवाज उभरी।

"लचर ही क्यों, इसे कायरता भी कहा जा सकता है। अक्ल से काम लेने वाला शायद कायर हो ही जाता है। क्यों, विवेक का दूसरा नाम कायरता नहीं है ? पर मैं यह मानता हूं कि कुछ लोग क्षुद्र स्वार्थों के लिए बहुत बड़े सिद्धान्तों को तिलांजलि दे देते हैं। ऐसे गद्दारों का पर्दाफाश होना ही चाहिए।"

"नो-नो, दे मस्ट बी लिक्विडेटेड टू ए स्टेट आव कम्प्लीट एक्सटिंक्शन !" तरुण साथी का स्वर इस बार सबके ऊपर गूंज उठा।

अब तक चाय आ गई। चाय प्यालों से उठने वाली गर्म-गर्म भाप में

उलझ कर ऊष्मित होने लगी। कामरेड कमलकान्त ने उठकर बंगाली अदा से मेज़बान-दायित्व नीना के साथ मिलकर संभाल लिया और मुसकराते हुए बोले, "जब कभी कुछ काम करने की बातें करने चलें, तो उसूलों को बीच में न उलझाया करें। ये बातें आपकी समझ में नहीं आती हैं—और आप जो काम बेहतर कर सकते हैं वह भी बीच में भूल जाते हैं।"

एक ठहाका लगा। लेकिन कई साथियों के चेहरे सख्त हो गए। एक ने कहा, "आप क्या हमें किसी बौद्धिक से घटिया आदमी मानते हैं?"

"घटिया क्यों, बहुत बढ़िया मानते हैं, पर जब बढ़िया आदमी घटिया काम करने लगते हैं, तो दोनों ही घटिया हो जाते हैं।"

बात फिर हंसी में टल गई। अब तक मिष्टान्न और नमकीन तश्तरियां आ चुकी थीं।

सभी साथी खाने में तल्लीन होते दिखाई पड़े तो दिवाकर ने अपनी प्लेट साथ ही बैठे हुए मानसिंह की ओर बढ़ा दी और स्वयं बोलना शुरू किया, "अगर साथी लोग नामुनासिब न समझें, तो मैं इस होने वाली हड़ताल के बारे में कुछ बातें करना चाहता हूं।" भरे हुए गालों की हुंकार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हुआ वह बोलता रहा, "यह हड़ताल हमें इस तरीके पर चलानी है कि जीत और हार दोनों ही हमारे इरादों को मुकम्मल करने वाली हों। एक क्रांतिकारी जमात होने के नाते हमारा फर्ज़ यह है कि काम करने वालों में अपने हक़ूकों के लिए लड़ने की एक बेचैनी पैदा कर दें। लेकिन हमें यह देखना है कि उनका यह जोश सिर्फ हठ ही तो नहीं है। क्योंकि वास्तविक क्रांति का उन्मेष इंसान से अपनी रोटी के लिए लड़ने के उद्देश्य से ज़रा कुछ ऊंची चीज़ पैदा करना है। जो रोटी के लिए लड़ता है, रोटी मिल जाने पर उसकी लड़ाई बंद हो जाती है। किसी समय शानदार मज़दूर नेता भी अपने वर्ग के साथ विश्वासघात करते हैं तो उसकी तह में यही एक राज होता है। हमें यह सब अपनी नज़र के सामने रखना चाहिए। हमारी हर जद्दोजहद इस तरीके पर चलनी चाहिए कि हमारे अंदर एक बुलंद इंसानियत जागे, अपने स्वार्थ की बात हम भूल जाएं और समूची इंसानियत के हितों के लिए अपने को समर्पित करने की चाह हमारे दिलों में जाग उठे। यही वह पवित्र-मानवीय भावना है, जो हर एक क्रांतिकारी के हृदय में जलती रहती है। इसी भावना से प्रेरित होकर बड़े आसूदा हाल लोग कुर्बानी और तपस्या के मार्ग को अपनाते हैं। मेरा अनुमान है कि

हमारी पार्टी के अंदर काम करने वाले सभी साथी अपने निजी स्वार्थों को हमेशा के लिए तैरबाद कह चुके हैं। जिनके खिलाफ हमने जंग छेड़ी है, वे दूध के धोये नहीं हैं। हमें अपना हर कदम नाप-तोल कर उठाना है। हमें कोई काम ऐसा नहीं करना है—जिसके लिए सत्य और सामाजिक न्याय की अदालत में हमारा सिर शर्म से झुक जाये। हमारे एक साथी ने कहा था कि हमें अपने विरोधियों को नेस्तनाबूद कर देना है। मैं कहता हूं, हमें यह नहीं करना है। हमें तो ऐसी जंग छेड़नी है, जिसमें हमें खुद ही बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देनी है। मुझे उम्मीद है कि अगर हमारे तरीकों में पाकीज़गी है, तो हमारे विरोधी खुद शर्मसार होंगे। आंतरिक पाकीज़गी पर मैं इसीलिए ज़ोर देता हूं..."

आगे दिवाकर बोल नहीं सका क्योंकि मानसिंह ने अपनी स्लेट साफ कर ली थी और वह अपने विरोधी की स्लेट खाना नहीं चाहता था। वह बोला, "कामरेड, आप एक नया जीवन-दर्शन गढ़ने में जितनी शक्ति लगा रहे हैं, उतनी हड़ताल की रूप-रेखा बनाने में लगायें, तो हम लोगों का यहां बैठना सार्थक हो।"

कई तरफ से आवाज़ आई, "बीच में क्यों रोकते हो? यह क्या जहालत है?"

"आहा, क्या हमें यह खुराफात सुनाने के लिए यहां इकट्ठा किया गया है?" मानसिंह ने तेवर बदलते हुए कहा।

"अगर यह खुराफात है, तो आप इस सभा से बाहर जा सकते हैं!" एक मजदूर साथी ने कहा।

"आपको क्या हक है इस तरह की बकवास करने का! आप सभा के अध्यक्ष नहीं हैं।" मानसिंह ने कहा।

"वक्ता ने जो कुछ कहा है, उसके लिए आपको उनका कृतज्ञ होना चाहिए।" विश्वनाथन ने हस्तक्षेप किया, "दूसरे की बात को धैर्य के साथ सुनना, उस पर मनन करना और आत्मानुशासन का अभ्यास करना—ये क्रान्तिकारी की बुनियादी योग्यताएं हैं। आपको ये बातें समझनी चाहिए मिस्टर!"

"लेकिन हमेशा स्पीच झाड़ने की तलाश में घूमना कितनी बड़ी क्रांतिकारिता है—यह बात मेरी समझ में नहीं आती!"

"क्या मैं आपसे खामोश रहने की प्रार्थना कर सकता हूं?" दिवाकर

ने अवसर की उपयुक्तता देखते हुए कहा, "हर छोटे को बड़ों का उचित आदर करना चाहिए। इसके बिना दुनिया का कोई सार्वजनिक काम आगे नहीं चल सकता। ऐसे अवसर पर, जब हम कोई बड़ा कदम उठाने जा रहे हों, हमारा यह फ़र्ज़ हो जाता है कि अपने इरादों को एक बार दोहरा लें। हक के लिए दुनिया अपने तरीकों से हमेशा लड़ती आई है, बड़े-बड़े पवित्र उद्देश्यों से भरी हुई प्रतिज्ञाएं आदमी हमेशा से करता आया है, पर उसका मतलब यह नहीं कि हम अपने नेक इरादों और उनके लिए किए जाने वाले आत्म-त्याग में गौरव-भावना अनुभव न करें। इसे आप स्पीच झाड़ना भी कह सकते हैं, और चाहें तो उसे उचित गंभीरता भी प्रदान कर सकते हैं।"

दिवाकर ने अपनी बात समाप्त कर दी। बात किस उद्देश्य से कही गई है, किसी की समझ में नहीं आई। लेकिन दो-एक साथियों के लिए यह निरुद्देश्य-सी बात बहुत भारी पड़ी। दिवाकर यह जानता था कि मानसिंह अपने उत्पाती मस्तिष्क को संतोष देने के लिए कुछेक विरोधियों के खिलाफ़ ज़हर उगलकर पार्टी से कुछ ऐसे प्रस्ताव मंज़ूर कराना चाहेगा, जिनकी तह में थोथी चाणक्य-नीति होगी, हिंसा और घृणा का प्रदर्शन होगा। इस भाषण से यह बात दब गई। अनेक कार्यकर्ताओं के चेहरों पर प्रशंसा के भाव स्पष्ट थे और वे हड़ताल के बारे में अपने सुझाव रखना चाहते थे।

लेकिन दिवाकर ने साथी विश्वनाथन से हड़ताल के लिए प्रयुक्त होने वाला नीति-संबंधी अपना अभिमत देने की प्रार्थना करते हुए कहा कि इस हड़ताल का संचालन करने का भार स्वयं अपने ऊपर लिया था, पर साथी चाहें तो किसी दूसरे को इस स्थान के लिए चुन सकते हैं। विश्वनाथन ने संक्षेप में बताया कि उनकी समझ में पहले से नीति का निर्धारित करना मुनासिब नहीं होगा। एक वैधानिक अपील मालिकों से की जानी चाहिए, और उसकी एक-एक प्रति नगर की यूनियनों के दफ्तरों में भेज दी जानी चाहिए। इस अपील के लिए वे जैसा रुख दिखायेंगे, उसके मुताबिक अपनी नीति बनाना उचित होगा।

गोष्ठी आखिरकार विसर्जित हो गई। कम्यून एक क्षण के लिए सुनसान सा हो गया। दिवाकर ने नीना को अपने कमरे में बुला लिया। नीना आ तो गई थी, पर जैसे एक बहुत बड़ा प्रश्न उसकी आंखों में समाया हुआ था। दिवाकर ने बात जहां छोड़ी थी, वहीं से उसे फिर उठाते हुए कहा, "तो फिर आज ही राजेन्द्र को केबलग्राम किया जाए कि वह

करके घर आ जाए !"

"मैं क्या कह सकती हूं। मैं दोनों हालतों में खुश हूं। कोई यह न समझे कि औरतें पीड़ा सहने में पुरुषों से कम होती हैं !" नीना ने कहा।

"वाह, तुम्हें क्या कष्ट हुआ है, न जेल भोगी, न भूख-हड़ताल की, फिर भी पीड़ा सह लेने का दावा करती हो। बस, चार दिन पति से दूर हुई कि शहादत की तैयारी !" दिवाकर हसने लगा।

नीना का चेहरा लाल हो गया। उसके हर अंदाज़ में एक नारी-सुलभ लज्जा घिरती आती थी। दिवाकर ने बात को बदलते हुए कहा, "नीना, मैंने कीर्ति को अंतिम निश्चय सुना दिया है कि वह शादी की तैयारी कर ले !"

"सच !" नीना उछल पड़ी, "पर इधर हड़ताल का नेतृत्व भी कंधे पर लेते रहेंगे और उधर शादी भी करेंगे ? परंपराओं की मखौल उड़ाना भी कोई आप लोगों से सीखे !"

नीना ने विवाह-संबंधी लापरवाही के लिए दिवाकर को हृदय से बधाई नहीं दी, फिर भी वह प्रसन्न थी कि दिवाकर विवाह कर रहा है। उसने कहा, "तुम कितनी तैयारी कर रहे हो ?"

"तैयारी का प्रश्न ही कहां उठता है। बिना तैयारी के भी इस शादी को औपचारिक रूप प्राप्त हो जाए, यह क्या कम कठिन काम है। मुझे तो अपनी शादी शकर की शादी समझकर करनी पड़ेगी। कीर्ति पूछती थी— शादी के बाद हम लोग कहां रहेंगे ? कितनी भोली है बेचारी ! क्या जाने बड़े आदमियों की चाल !" यह सब कहकर दिवाकर अपनी साधन हीनता की मज़ाक उड़ाना चाहता था, पर नीना के गंभीर चेहरे को देखकर वह अट्टहास न कर सका। बोला, "क्यों, तुम्हारे मन में मेरे प्रति सहानुभूति पैदा हो रही है ?"

"बैरिस्टर बाप के घर में जन्म लेकर कामरेडों के कम्यून में बैरागीरी करने तक का सुख जिसने भोगा हो, वह इतनी जल्दी किसी से सहानुभूति नहीं कर सकती। अपने प्रेमास्पद के लिए सब-कुछ किया जा सकता है। मैंने जो किया, शकुन्तला भी कर लेगी। नीना से शकुन्तला अधिक खुश-नसीब है, क्योंकि राजेन्द्र और दिवाकर में उतना ही खुशनसीब अंतर है।"

"नहीं, नहीं नीना," दिवाकर ने सहसा द्रवित होकर उसका कंधा पकड़ लिया और दृढ़तापूर्वक कहा, "तुम राजेन्द्र से इतना नाराज़ क्यों हो रही हो ?"

"होना नहीं चाहती। मुझे विश्वास है कि कोई पत्नी अपने पति से नाराज़ नहीं होना चाहती, अगर उसे केवल एक विश्वास हो कि उसका पति एक विश्वासनीय पति है। आप आश्चर्य न करें। मैं इतनी अनुदार नहीं हूं कि घरेलू औरतों की तरह पति को पलकों में बंद करके रखना चाहूं। दुनिया एक अविश्वसनीय पति में भी एक महान क्रांतिकारी नेता, कलाकार और वैज्ञानिक पा सकती है और उसे पत्नी की शिकायत में स्वार्थपरता की पराकाष्ठा दिखाई दे सकती है, पर पत्नी के लिए शायद पति का ऐसा कुछ भी होना शर्त नहीं है—उसे तो पति की आंखों में चमकने वाली प्रेम की ज्योति चाहिए, वह चाहे दुनिया के सभी गुणों से हीन फिर क्यों न हो! मैं अपनी अनुभूतियों के द्वारा इसी निष्कर्ष पर पहुंची हूं। राजेन्द्र के आचरण को देखकर मुझे अपनी निष्ठा पर झुंझलाहट होती है, कभी-कभी मैं भी उनकी ही तरह होने की सोचने लगती हूं और बाद में आत्मग्लानि से मन भर जाता है। इतने भयानक विचारों की कल्पना मात्र से ही मैं बहुत घबरा गई हूं दिवाकर भाई!"

"तुम कितनी भयानक लड़की हो। तुम तो जैसे ज्वालामुखी बनी घूमती हो। ओह, दुनिया भी क्या चमत्कार है। प्रेम के लिए जिसने इतनी सुख-सुविधाओं को ठोकर मार दी, वही लड़की ऐसी पागलों-जैसी बातें करे, तो रक्षा कैसे होगी? देखो नीनी, मुझे ऐसी बातें कहकर डराओ नहीं। समझने दो कि अपनी आन को बनाए रखना, मनुष्य के जीवन का सर्वोच्च साध्य है। मैं जानता हूं—बेकार घूमने से तुम्हारा सिर फिर गया है। पर अब सब ठीक होकर रहेगा। परीक्षा की घड़ी बड़ी तेज़ी से बढ़ती आ रही है। अच्छा, अच्छा, आंखों में आंसू मत लाओ। चलो मेरे साथ, शकुन्तला के पास चलना है। मैं गिरफ्तार हो गया तो तुम्हें एक साथी तो मिल जायेगा। फिर तो उलाहना न दे सकोगी!"

नीना का हृदय उस हार्दिक संवेदना से भर आया। बोली, "आप दोनों के मुंह से हमेशा अपशकुन की बातें ही सुनती हूं! इसमें कौन-सी क्रांति है, समझ में नहीं आता।"

मन में इन पवित्र मानवीय संकल्पों को बनाते और बिगाड़ते दिवाकर और नीना कुछ ही देर बाद शकुन्तला के घर पहुंच गये। उसके पहुंचते ही सारे घर के चेहरों पर खुशियां नाच उठीं। इस गोष्ठी में पहुंचकर नीना की उदासी दूर हो गई। उसने शकुन्तला को एकांत में ले जाकर कहा, "अब कितने दिन

हमें आपके वियोग में इस तरह घुलना होगा।"

"वियोग सहने की क्या जरूरत है, यहीं चली आइए।" शकुन्तला ने बात यूं ही उड़ा देनी चाही, क्योंकि जार्ज पास ही खड़ा था और यह सुनकर कुछ झेंप-सा गया था। वह नीना को अपने कमरे में ले गई। कहने लगी, "कीर्ति जीजी तो बहुत घबरा उठी हैं, कैसे होगा? आपको मालूम है—रजिस्ट्रेशन में किन चीजों की आवश्यकता पड़ती है? आपकी शादी कैसे हुई थी?"

"मेरी शादी?" नीना हंसने लगी, "मेरी शादी की मत पूछो। घर से बाहर एक वर्ष तक भटकती रही। न मंदिर देखा, न पुजारी, न विवाह की वेदी और न शहनाई का स्वर सुना। मैं ऐसी स्वयंवरा हूं जिसके मां-बाप को धनुष तो क्या, तिनका भी तुड़वाने की जरूरत नहीं पड़ी।"

दोनों युवतियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

"लेकिन पुराने किस्म की शादियों में एक रोमांस तो होता है।" शकुन्तला ने कहा, "यह बात आपको माननी पड़ेगी। दूल्हा और दुलहिन को किस तरह सजाया जाता है, गाजा-बाजा, खुशियां, फुलझड़ियां—यह सब ही तो शादी है!"

"ये सब पुरानी बातें हैं बहिन। रात-दिन यह होता है। कितने ही कायर घोड़ों पर चढ़कर प्राचीन परंपराओं का अपमान करते हैं। फिर सामंती दिनों में शादी क्या होती थी, अपहरण होता था। मां-बाप गवाह इकट्ठे करते हैं कि देखिए साहब, इतने लोगों के सामने यह सोशल कन्ट्रैक्ट संपादित हुआ। यह प्रेम का अपमान है। मैं कहती हूं यह सेक्स का बाजारू प्रदर्शन है।"

"फिर भी एक कुल-परम्परा से निकलकर दूसरी कुल-परम्परा में प्रवेश करना होता है—इतने चुपके से होगा तो उच्छृंखल लोगों के हाथों से सारे समाज का शीराजा बिखर जायेगा। हर शादी के साथ नई आशा, विश्वास और नई परंपराओं का जन्म होता है। इतनी आसानी से पुरानी परम्पराओं को तोड़ा नहीं जा सकता।" शकुन्तला ने कहा।

"परंपरा क्या होती है बताओ तो बहिन?" नीना ने पूछा।

"परम्परा को मुझसे अच्छी तरह आप जानती होंगी। जिस तरह अधिक लोगों के चलने से मार्ग पर लीक पड़ जाती है—और उस लीक पर चलकर कोई भी यात्री आंख मींचकर चलता हुआ भी अपने गंतव्य पर पहुंच जाता

है, उसी तरह सामाजिक आचरण परंपरा का रूप धारण कर लेते हैं ?" शकुन्तला ने कहा ।

"इसीको तो लकीर पीटना कहते हैं ? ज़मीन पर पड़ी हुई लीक का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है—वह तो उन पग-चिह्नों की मातहत है जिन्होंने उसे स्थापित किया । ऐसी लीकें बनती रहती हैं, मिटती रहती हैं । हकीकत तो यह है कि आदमी चलता है—नित नवीन रास्तों पर चलता है ।" नीना कह रही थी ।

"बात आप ठीक कहती हैं, पर मेरे मन में आपके इस सत्य पर आस्था नहीं बनती । तर्कसिद्ध सत्य पर मुझे कभी भी विश्वास नहीं हुआ । मुझे तो लगता यह है कि आदमी की तरक्की का सारा इतिहास उस की परंपराओं का इतिहास है । जिस तरह घर बनाकर हम स्वयं अपने को उसमें कैद कर लेते हैं, साधन होते हुए भी रोज़-रोज़ नये घर नहीं बनाते, घर का एक-एक कण, एक-एक गोशा हमारी स्मृतियों में मूर्त रूप होकर जीने लगता है, वैसी ही बात परंपराओं को मानकर चलने की है । मैं क्या कहना चाहती हूं आप समझती हैं न ?"

"समझती हूं !" नीना ने बात को समाप्त करने की नीयत से कहा, "पर घर की छत टूटी है, दीवारें गिरती हैं, तो नये घर की ज़रूरत पड़ती है । देखो बहिन, मुसव्विर को अपनी तस्वीर से ही मोह होता है, दूसरे की तस्वीर को वह आलोचना की दृष्टि से देखता है । उसमें अच्छाई और बुराई, दोनों ही उसे दिखाई देती हैं । इसी तरह कोई परंपरा अगर एक पीढ़ी से अधिक चलती है, तो वह कमरतोड़ बन जाती है । आपको मालूम ही है, मुझे बहस में रस नहीं आता । हज़ारों बेवकूफ रोज़ शादी करते हैं, कोई याद नहीं रखता । तुम ऐसी शादी करो कि प्रेम के संसार में एक नई परंपरा बनकर दुनिया के सामने आए ! क्यों ठीक है न ?"

शकुन्तला के मन में गुदगुदी पैदा हो गई । उसे लगा कि पुराने के प्रति न्याय करने से नवीन का निर्माण करना शायद अधिक सहज है । उसने कहा, "कीर्ति जीजी बाहर न जाने कितनी चिंता में डूबी होंगी । चलो, उनका उद्धार करें ।"

दिवाकर और कीर्ति ने उस विवाह के बारे में तफसील से चर्चा करके यह निर्णय कर लिया था कि शादी में कोई दिखावट नहीं की जायेगी । कुछ चुने हुए दोस्तों के बीच वैदिक पद्धति से विवाह होगा । इन लोगों को सुनाते

हुए दिवाकर ने कहा, "इसलिए नहीं कि वैदिक धर्म के प्रति मेरा प्रेम बहुत उमड़ पड़ा है, वरन् इसलिए कि उसमें सुगमता बहुत है। रजिस्ट्रेशन तो कानूनी आवश्यकता है। ज़रूरत समझी गई तो यह व्यवस्था बाद में पूरी हो जायेगी।"

"यह सब तो दिखावा है," नीना ने कहा, "दो आत्माएं तो न जाने कब की मिल चुकी हैं।"

बात सबको बहुत पसंद आई, लेकिन बाहर से अच्छी लगने पर भी वह शकुन्तला के मन में एक उलझन छोड़ गई। क्योंकि परम्पराओं को लेकर जो चर्चा उसने नीना से की थी, उसमें निरा भावातिरेक न था।

नीना और दिवाकर कम्पूल वापस लौट गये। पर शकुन्तला फिर भी उलझी ही रही। जहां वह बैठी हुई थी, वहां चारों ओर बाज़ार से आया हुआ सामान बिखरा पड़ा था। उस सामान में कितना परिवर्तनकारी वर्तमान छिपा हुआ है, शकुन्तला कोच पर बांहों के सहारे अपना सिर टिकाकर यही सोचती रही, और उस परिवर्तन के प्रारूप को जीवत होते हुए देखने की कोशिश करने लगी। उसका अपना भविष्य उसमें उभर न सका। हां, कीर्ति जीजी का अतीत मूर्तिमान होने लगा। कीर्ति जीजी के उस दुलहिन रूप को देखकर किस तरह उसके मन में हिलोरें उठती थीं, और किस तरह आईने में अपना अविकसित रूप देखकर उसे निराशा हुई थी। आज फिर शकुन्तला सोच रही थी कि विवाह के अवसर पर वैसा ही परिधान धारण करके क्या वह कीर्ति जीजी से भी अधिक रूपवती दिखाई नहीं पड़ेगी?

उसका मन उदास हो गया। उसने सोचा कि वह किससे कहेगी कि मेरी शादी में तुम गाओ और तुम नाचो। शायद कोई जान भी न पाए कि शकुन्तला की शादी हुई भी कि नहीं। शादियां होती हैं, बहिनें, सखियां, नाते और रिश्तेदार एकत्र होते हैं। पतिगृह से लौटकर लड़कियां आती हैं, एक विशिष्ट गरिमा उनके साथ लौटती है। कौमार्य और यौवन की वह संधि कुछेक क्षणों में ही जीवन को कितना कल्पित कर देती है। पर शकुन्तला कहां जायेगी, और कहां से लौटेगी! पति-मिलन के मीठे-खट्टे संस्मरण वह किसे सुनायेगी? औरस पुत्र की तरह अपने निर्जन अंतर्प्रदेश में उन स्मृतियों को वह स्वयं दुलारेगी। हो सकता है, वह अपने घर की ड्योढ़ी पर फिर क़दम न रख सके।"

वह सोचती रही—सोचती रही!

—

'क्या मां ने और मेरे देवरूप पिता ने यही सब कल्पना अपनी आशीषों में भरी होगी। हाय ! मैं इतनी भाग्यवान क्यों न हुई कि मेरे सुख में मेरे मां-बाप, बंधु-बांधवों का सुख भी होता। न, न, मैं नीना की बात नहीं मानूंगी। मैं अपने प्यार के लिए, और अपने आदर्श के लिए घुट-घुटकर मर जाऊंगी, पर मैं इस पवित्र परंपरा को नहीं तोड़ूंगी—अपने सुख के लिए तो नहीं, किसी भी प्रकार नहीं !'

अजीब-अजीब विचार उसके अन्तर में उभरते आ रहे थे। वह दिवाकर के बिना नहीं रह सकती थी। वस्तुतः, वह अपने अंतर्मन में उसे वरण कर चुकी थी। वह अनुभव करती थी कि जो हो चुका है, वही काफी है और उससे अधिक की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है। ये सब तैयारियां उसके दिल को बर्छी की तरह छेदे डाल रही थीं। एक साथ दो विरोधी भावनाओं का इतना तुमुल संग्राम उसके मन में छिड़ा था कि वह घबराकर रो उठी थी। वह थक गई थी और अपने-आप से पराभूत हो गई थी। वृक्षों की लंबायमान परछाइयों ने खिड़कियों पर अपने पंख पसार दिए। अंधकार छा गया। पर शकुन्तला की आंखें न जाने क्या देख रही थीं !

रामप्रसाद कमरे में बत्ती जलाने आया। शकुन्तला के पैर से टकराकर वह स्टूल पर जा गिरा। दो प्याले टूटे और एक फूलदान टूट गया। रामप्रसाद ने बत्ती जलाई और आश्चर्य के साथ देखा कि शकुन्तला सोई नहीं है।

अंदर ही अंदर अपने द्वारा होने वाली उस हानि पर क्षुब्ध होते हुए उसने पुकारा, "बीबीजी ?" और उत्तर न पाकर वह शकुन्तला के निकट आकर आहिस्ता से बोला, "बीबीजी, उठकर यह सामान ठीक से रखवा दीजिए। बड़ी बीबीजी बाज़ार गई हैं, न जाने क्या-क्या और लाती होंगी। इतनी उदासी की क्या बात है !"

शकुन्तला बोली नहीं। उठकर अपने पलंग पर लेट गई। उसके कान सुनते हुए भी सुनना नहीं चाहते थे, उसका दिल तड़पकर सीने से बाहर आ जायेगा, ऐसा अनुभव होता था। उसे अपने भविष्य में एक भी आशा की किरण कहीं दिखाई न देती थी।

शाम को कीर्ति और जार्ज बहुत-सा सामान लेकर आ गये। दोनों के चेहरों पर थकान से भरा हुआ उल्लास था। बहिन के लज्जायुक्त आनंद की पुलक से अपनी थकान को धो लेने के लिए कीर्ति ने शकुन्तला को पुकारा।

पर शकुन्तला तो जैसे शोक-सागर में ही डूब गई थी। कीर्ति के दो बार

आवाज़ देने पर भी जब वह नहीं आई तो वह स्वयं उठकर उसके पास गई। देखा, सारा तकिया आंसुओं से तर हो चुका है और माथा धधक रहा है। कीर्ति ने बहिन को अपने सीने से लगा लिया।

"मैं कहती थी, ये काम तेरे बस का नहीं है। तू तो विद्याधर की पुजारिन बनने के लिए पैदा हुई थी। चली है ये शादी करने। अब क्या मरने की ठान ली है?" कीर्ति की आवाज़ में लरज आ गई थी।

उस वेदना का आभास ही पाकर शकुन्तला सिसक उठी।

दम-भर के लिए घर का कोना-कोना उदासी से भर उठा। जाने की उदास आंखों में उस रहस्य को जान लेने की उत्कंठा बढ़ती जा रही थी, जिसने अपनी बहिन के अलग-अलग रूप उसके सामने उपस्थित कर दिये थे। उसे कुछ न सूझता था कि उसकी जोड़ी एक चीज़ को न पाकर दुखी होती है, और उसी को पाकर उससे भी अधिक दुखी होती है।

वह चुपचाप उठा और उसने दिवाकर को टेलीफोन कर दिया।

लगभग आध घंटे में दिवाकर और नीना दोनों आ पहुंचे। नीना ने शकुन्तला का सिर अपनी गोद में ले लिया। शकुन्तला की आंखें झप गई थीं। कीर्ति ने आवाज़ दी, "शिकी, देखो कौन आया है?"

नीना की गोद में अपना सिर देखकर शकुन्तला सहसा खिलखिला उठी।

"तब तो सचमुच स्वर्ग में पहुंच गई हूं।"

नीना ने सिर पर हाथ रखकर कहा, "बुखार बहुत तेज़ है।" दिवा[कर] ने शकुन्तला के बिल्कुल निकट पहुंचकर पूछा, "इतनी-सी देर में यह [...] कर लिया!"

"इसलिए कर लिया कि हम बीमार पड़ें और तुम हमें देखने आ[ओ] दिवाकर, तुम मुझे भगाकर क्यों नहीं ले जाते?"

दिवाकर ने सिर पर हाथ रखा और कीर्ति की ओर सप्रश्न नेत्रों से [...] वह डाक्टर को फोन करने जाने लगा। लेकिन शकुन्तला ने हाथ [...] रोक लिया, "हम इस तरह नहीं जाने देंगे। हमारी बातों का जव[ाब] [...] जाओ! देखो जी, मैं तुम से शादी नहीं करूंगी। तुम बड़े भीरु हो। [...] कहती थी। तुमसे बहादुर मेरी बेटी ही है। हाय री किस्मत! [...] लोगों ने किस तरह उजाड़ दिया। क्यों, तुम भी उसकी कोई सह[...] [...] सकते? बोलो, बोलते क्यों नहीं हो?"

[...] की जलती हुई आंखों पर हथेली रख[...]

कीर्ति से कहा, "टैक्सी-ड्राइवर को पता दे दीजिए और डाक्टर को फोन कर दीजिए।"

लम्बा सांस लेकर कीर्ति उठ गई।

लगता था, जैसे शकुन्तला सो गई है। नीना ने फुसफुसाकर जार्ज से पूछा, "इतनी-सी देर में क्या हो गया ?"

जार्ज ने कहा कि वह कीर्ति जीजी के साथ सामान लेने गया था—वह कुछ भी नहीं जानता। रामप्रसाद बोला, "न जाने कब से पड़ी-पड़ी रोती थीं। अंधेरे में उनके पैर से ठोकर खा कर फूलदान टूट गया। उन्हें उठाया तो यहां आकर पड़ गईं। हमने समझा, सोती होंगी। बीबीजी कई दिन से उदास दीखती हैं।"

"मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता।" नीना बोली।

"मेरी समझ में आ रहा है। ये ठीक हो जायें तो इन्हें समझाकर कह दूंगा, इस रास्ते पर चलना इनके बस का नहीं। जिस बेटी को याद कर रही हैं, इन्होंने कहा था कि वे बड़ी बहादुर हैं। पर आज भी शादी के बारे में अपने अंतर्द्वन्द्व को ये समाप्त नहीं कर सकीं। उस सुख की कल्पना करना बेकार है जो जीवन की जड़ को ही खोखला कर दे। लेकिन ये अच्छी तो हो जायें !"

दिवाकर को गले में कुछ अटकता-सा अनुभव होने लगा।

शकुन्तला ने करवट बदली। नीना ने पूछा, "कैसी तबीयत है ?"

"तबीयत बहुत ठीक है। अभी-अभी मैं नागपुर गई थी, सबने कहा कि वहीं लौट जाओ जहां से आई हो, जहां तुम्हारे देवता रहते हैं।" फिर जैसे उसे सहसा कोई याद आ गई हो, "मेरे देवता चले कहां चले गये ? कहते थे, कभी छोड़कर न जाऊंगा।"

दिवाकर ने उसका मुंह अपनी ओर कर लिया और बोला, "कैसी बातें कर रही हो, सोने की कोशिश करो !"

"ताकि तुम मुझे छोड़कर चले जाओ, हूं ! जैसे नागपुर से चले आये थे ! नहीं हज़रत, अब की बार मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी।" उसके हाथों का तकिया बनाते हुए उसने आंखें बन्द कर लीं, "तुम चाहते हो कि मैं उस दुष्ट जॉनसन के आश्रम की देवदासी बन जाऊं ? इतनी मैं गई-बीती नहीं हूं।"

जार्ज और रामप्रसाद आंखें पोंछते हुए हट गए, शकुन्तला कहती जा रही थी, "अगर नागपुर में ही विवाह कर लेते तो कैसा अच्छा था। पर

तुम तो लड़कियों से भी परे लड़की हो। अगले जन्म में तुम्हें भगवान लड़की बनाए तो तुमसे पूछूंगी—कहो, अब कैसी बीतती है? मैं किसी से नहीं डरती। मां बहुत बुरी हैं। न जाने पापा उनके साथ कैसे निभाते हैं…"

उसकी बातों का कोई अंत नहीं था।

डाक्टर आ गया। देखकर कहा, "तेज बुखार से ऐसा हो गया है। ठीक हो जायेगा।"

मीना ने कहा, "सब अकस्मात् ही हुआ है डाक्टर! शाम तक तो ठीक थी।"

"जिन्दगी में जो कुछ होता है, सब अकस्मात् ही होता है। इनका यह हाल हो जायेगा, ऐसा अगर आप जानते तो पहले से बंदोबस्त न करते! पर पहले से कभी कोई कुछ जान सकता है! हम दवाई देते हैं, नींद आने पर सब ठीक हो जायेगा। इनके दिमाग पर किसी बात से ज्यादा जोर पड़ गया है!"

"दिमाग पर जोर ही तो पड़ गया है डाक्टर साहब।" कीर्ति इतना कहकर ही चुप हो गई। उस मौन स्वीकृति में कोई बड़ा वस्तु-सत्य छिपा था, जिसे सभी ने अनुभव किया। दिवाकर तो जैसे अपराधी-सा होकर रुआंसा हो आया।

डाक्टर ने कहा, "इंजेक्शन देता हूं। कुछ गोलियां दूंगा। नींद न आने तक दो-दो घंटे बाद दीजिएगा। नींद आने पर ठीक हो जायेगा।"

डाक्टर ऐसा करके और उसका पुरस्कार पाकर चला गया। रात बढ़ रही थी। मीना ने दिवाकर से कहा कि "कम्पून को अनुपस्थिति की सूचना दे दी जाये। विरक्तनायन को समझाकर स्थिति बता दो। या केवल मैं यहां रह जाती हूं, तुम चले जाओ।"

शकुन्तला अब भी कभी-कभी बड़बड़ा उठती थी और बेचैनी में कभी करवटें बदलती और कभी उठकर बैठ जाती थी। उसकी आंखों में भारीपन बढ़ रहा था और पलकें मुंदती जा रही थीं। बाहर से टैक्सी वाले का संदेश आया कि उनकी सेवाओं की और भी जरूरत होगी या कि वह चला जाये। कीर्ति ने कहा, "अगर कोई अधिक गड़बड़ न हो तो आप दोनों ही घरों न ठहर जायें! टैक्सी वाला चला जाता है।"

"मेरा जाना मुनासिब नहीं है," दिवाकर ने कहा, "इनको नींद आने तक मैं जाना नहीं चाहता। टैक्सी को आप जाने दीजिए। मैं जाने

व्यवस्था कर लूंगा।"

थोड़ी ही देर में शकुन्तला की आंखें भी झप गईं। दिवाकर के मन में जाने की बात स्वेच्छा से नहीं आई थी। उसका मन अपनी मजबूरी पर बहुत अधिक कातर हो उठा था, पर उसे जाना था। कीर्ति उसे बाहर छोड़ने आई। बोली, "घबराने की जरूरत नहीं है, मैं पापा को तार दे दूंगी। वे मेरी बात टालेंगे नहीं। आप लोग वास्तव में लड़कियों के दिलों को समझते नहीं। अगर मां-बाप कुएं में भी ढकेल दें तो इससे उन्हें दुःख नहीं होता, पर अपने हाथों से बनाया हुआ स्वर्ग भी उन्हें झिलता नहीं है।"

दिवाकर इस विरोधाभासपूर्ण वार्ता को चुपचाप सुनता रहा। कीर्ति उसके साथ चलती-चलती सड़क पर आ गई। दिवाकर को ढाढ़स देने के लिए वह बहुत-सी बातें कह रही थी। चलते समय अपना पर्स उसने दिवाकर की जेब में खोंस दिया था। अस्वीकार करते हुए दिवाकर ने उसे हाथ पकड़ कर रोकना चाहा, तो भी कीर्ति उसी अधिकार-भावना से दिवाकर की आंखों में देखती रही। इस अधिकार की छाया पहले भी उसे दीख पड़ी थी। इतने निकट से देखने में वह कितनी असाधारण लगती थी, उसकी हर बात में कितनी असाधारणता थी। वह इन्कार शायद आग्रह की भावना से परे था।

दिवाकर को अपने दुर्भाग्य पर बेहद दुःख था। वह सोचता रहा कि सुख उसके भाग्य में है नहीं। होता तो क्यों बार-बार उसकी मुट्ठी में आकर भी निकल जाता। बस, वह एक ही काम करने के लिए पैदा हुआ है, वही उसका सुख है। उसी को अपना सुख बनाना है, ताकि उसका बलिदान दूसरों की राह को निष्कंटक बनाने वाला बने।

आधी रात को वह कम्यून पहुंचा। शकुन्तला की वे अत्यंत दुस्साहसिक बातें उसके कानों में अब भी गूंज रही थीं। रात-भर वहीं बातें उसके कानों में गूंजती रहीं। सवेरे नीना का टेलीफोन आ गया। कह रही थी, "शकुन्तला ठीक है। उसे रात की एक भी बात याद नहीं है। कोई बात याद कराते हैं तो मुंह छिपा लेती है।" दिवाकर ने कहा कि काम से फुर्सत पाकर वह उधर आयेगा। लेकिन उधर जाने की बात सोचकर उसका दिल कांपता था। शायद वह ऐसा संत है, जिसके पैर पड़ते ही सब-कुछ बंटाढार हो जाता है।

दिवाकर उठा। मस्तिष्क में किसी भी दूसरी बात के आने से पहले वह अपने कार्यक्षेत्र में पहुंच जाना चाहता था। उसे कीर्ति के बटुए की याद हो आई। वह नीचे उतरा और उसने टैक्सी लेकर जयभारत मिल्स की ओर

प्रस्थान कर दिया।

सवेरे की शिफ्ट शुरू होने वाली थी, मिल का भोंपू बज रहा था। दिवाकर कोने में खड़ा हो गया और वहीं से मतलब के लोगों को आवाज देकर बुलाता जा रहा था।

जब काफी संख्या में लोग जमा हो गये तो उसने पूछा, "मालिकों की ओर से क्या सरगर्मियां हैं ?"

मज़दूर कार्यकर्ताओं ने कहा, "कल सौ काम करनेवालों को नोटिस दिया गया है और आज उन्हें फिर रख लिया जायेगा। दो-दो साल हो गये हैं, सैकड़ों आदमी आज भी टेम्प्रेरी ही बने हुए हैं। जो सिर उठाता है, उसे ही टरका दिया जाता है। दिवाकर बाबू इस दोज़ख का मुंह किसी तरह बंद कर दीजिए !"

"सब लोग तैयार हैं ?"

"हां, हां, इस तरह तिल-तिल मरने से तो एक बार ही मर जाना बेह-तर है !"

"मालिकों की उस जवाबी यूनियन का क्या हुआ ?"

"अगर हमने कार्रवाई न की तो उनकी यूनियन रजिस्टर्ड होकर रहेगी और शायद हमारी यूनियन फिर हमेशा के लिए नाकारा हो जायेगी।"

तत्काल ही कुछ न कुछ करने का आश्वासन देकर दिवाकर ने साथियों को विदा किया।

दिवाकर इन मज़दूर कार्यकर्ताओं से बातें करके लौटा, तो उसके मन में कई सोये हुए प्रश्न उठ खड़े हुए थे"'आदमी इतना बेरहम क्यों है कि दूसरे का टुकड़ा छीनकर अपना पेट भरना चाहता है, और आदमी इतना बेगैरत क्यों है कि निरंतर जुल्म सहते-सहते भी उसे जीने की चाह ज्यों की त्यों बनी रहती है ? फिर उसने अपने दिल को टटोला और पाया कि उसके दिल में दोनों में से कोई भी चाह नहीं है। न जुल्म को करने की और न जुल्म सहते रहने की—शायद शोषण और उत्पीड़न का अहसास ही वहां नहीं होता !

कम्पून पहुंचकर उसने देखा कि मीना आ पहुंची है। उसने सूचना दी कि कीर्ति ने नागपुर को तार दे दिया है। हो सकता है कि मां-बाप आ जायें और फिर सुविधानुसार वे शादी कर दें। पर दिवाकर को इस बड़े यथार्थ पर विश्वास करना अब मुश्किल हो गया था।

विश्वनाथन से परामर्श करते हुए दिवाकर ने पूछा कि क्या यह नहीं हो

सकता कि वैधानिक रूढ़ि को पूरा किए बिना जयभारत मिल्स के मजदूरों के लिए फौरन ही कुछ किया जा सके ? विश्वनाथन ने कहा, "लड़ने वाले के लिए बहाना निकालना बहुत ही सरल बात है। हम तो यही समझते रहे कि तुम सारी स्थिति का जायजा लिये बगैर कोई कदम उठाना नहीं चाहते।"

"सुनते हो, मालिक लोग आने वाले दो-चार दिनों में लगभग सौ आदमियों को फिर निकाल रहे हैं, क्यों न इसी मामले को बुनियाद बना लिया जाये ?" दिवाकर ने कहा।

"बनाया जा सकता है, अगर मजदूर तैयार हों, लेकिन इस जुल्म को बर्दाश्त करने का उन्हें अभ्यास पड़ गया है, बात कुछ और भी होनी चाहिए।" विश्वनाथन ने कहा।

"संघर्ष शुरू हुआ कि बातें निकलते कितनी देर लगती है...आप भी जानते हैं, मैं भी जानता हूं।" दिवाकर अपने संकल्प के निकट आता जा रहा था। "तो फिर आज से ही मिल के फाटक पर मजदूरों के लिए ठहरने और कॉर्नर मीटिंग करने की ताकीद कर देनी चाहिए।" विश्वनाथन ने अन्तिम रूप से कहा।

"यही निश्चय सभी साथियों को सुना दिया जाये।" दिवाकर ने कहा।

चौथे दिन जिन सौ मजदूरों को निकाला गया, उन्होंने पूर्व निश्चित योजना के अनुसार काम छोड़ने से इन्कार कर दिया। उनमें से एक नेता ने मिल के अंदर ही पूंजीवाद-विरोधी नारे लगाने प्रारंभ कर दिए। लेबर-आफिसर ने कहा, "मजदूरों का वह रवैया गैरकानूनी है। उनकी नौकरी टेम्परेरी थी और उन्हें बिना नोटिस के अलग किए जाने से मालिकों को किसी तरह भी रोका नहीं जा सकता। हां, वे दोबारा भर्ती न होना चाहें तो मिल से बाहर मुजाहिरा भी कर सकते हैं।"

लेकिन मजदूर नारे लगाते रहे, और कार्यक्रम के अनुसार सभी कर्मचारी काम छोड़कर आते रहे। थोड़ी ही देर में मिल के करघे बंद हो गये, बड़े-बड़े दानवाकार इंजन ठंडे पड़ गये। विरोधी पार्टी के प्रभाव में काम करने वाले मजदूर भी इस आकस्मिक संघर्ष को देखकर चकित रह गये।

मैनेजर ने टेलीफोन करके मैनेजिंग एजेण्ट्स को सूचना दी और स्वयं घटनास्थल पर पहुंच गया। उसके सीने में अकड़ थी, उसकी खूबसूरत टाई उसकी स्वामिभक्ति के झंडे के रूप में गले में फहरा रही थी। मैनेजर के घटनास्थल तक पहुंचते-पहुंचते मिल के स्थायी व्यायाम-शास्त्री उसके दाएं-

बाएं आ गये थे। अवसर आने पर मजदूरों का दिल और दिमाग ठीक करना उनका धर्म होता है। मैनेजर ने कड़क कर कहा, "कौन है जो मिल को छोड़ कर जाना नहीं चाहता? निकल कर सामने आए!"

एक फुर्तीला मजदूर निकलकर सामने आया और उसने कहा, "हम यह पूछना चाहते हैं कि हमारे साथ यह जुल्म कब तक होता रहेगा? आप हमें निकाल देते हैं और उसी क्षण फिर हमें बहाल भी कर देते हैं, अगर दोबारा बहाल करना है तो हमारे मुंह की रोटी क्यों छीनी जाती है? यह कहां का न्याय है? हम किसके पास दुहाई के लिए जायें?"

"दुहाई करने के लिए सरकार ने कचहरियां खोली हुई हैं," मैनेजर ने कहा, "आप न्याय की मांग कर सकते हैं। जिसे हमारा रवैया अच्छा नहीं लगता, वह दोबारा हमारे यहां न आकर दूसरी जगह अपना इंतजाम कर सकता है। लेकिन मिल की चार-दीवारी में बगावत करने वाले को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। बेहतर यही है कि आप शांतिपूर्वक मिल एरिया को खाली कर दें।"

व्यायाम-शास्त्रियों में, जिनकी मूंछें थीं वे मूंछों पर हाथ फेरने लगे थे और बाकी अपने भुजदण्डों को सहला रहे थे।

परिस्थिति किसी भी क्षण बिगड़ सकती थी और मिल की सीमा के अंदर उत्पात मचाकर मालिक लोग पुलिस को अपनी सहायता के लिए बुला सकते थे। इसलिए मजदूर कार्यकर्ता उस क्रुद्ध जनसमूह को नारे लगाते हुए बाहर ले आए।

मिल की शिफ्ट समाप्त होने में सिर्फ आधा घंटा बाकी था। इस आधे घंटे में बराबर गगनभेदी नारे लगाये जाते रहे। दिवाकर, विश्वनाथन, मानसिंह और डा० कमलकान्त सभी स्थल पर उपस्थित थे।

मिल का भोंपू बजा। चंद मिनटों में हजारों की तादाद में मजदूर मिल के द्वार पर एकत्रित होने लगे, अगली शिफ्ट के लिए आने वाले मजदूर भी उस क्रुद्ध जनसमूह को देखकर वस्तुस्थिति जानने के लिए ठिठक गये थे। एक टूटी हुई मेज को मंच बनाकर दिवाकर ने बोलना आरंभ किया, "भाइयो, किसी जुल्म के सामने घुटने टेक देना आत्महत्या के समान घोर अपराध है। जिस तरह का रवैया जयभारत मिल्स के मालिक मजदूरों के साथ करते हैं, उसे अब और ज्यादा बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। अगर वे हमारे पेट पर इसी तरह ठोकर मारते रहे तो हम इस मिल के करघे नहीं चलने देंगे

मजदूरों ने नारा लगाया—सरमाएदारी निज़ाम ! नहीं चलेगा, नहीं चलेगा !

नारों की गगनभेदी आवाज़ में दिवाकर की आवाज़ डूब गई। मज़दूरों की भीड़ में भयंकर जोश था। मैनेजर चम्पालाल उस भीड़ को देखकर घबरा गया। मैनेजिंग डायरेक्टर जयरामदास चोर दरवाज़े से अंदर पहुंचे, पेशेवर व्यायाम-शिक्षाशास्त्रियों के चेहरे उतर गए। अंदर से पैगाम आया कि मज़दूर लोग बातचीत के लिए पांच आदमी अंदर भेज दें। दिवाकर ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दिवाकर के साथ चार मज़दूर कार्यकर्ता मैनेजर के कमरे में पहुंच गए।

मैनेजिंग डाइरेक्टर जयरामदास हालांकि न गुजराती थे, न पारसी और न मारवाड़ी, लेकिन अवसर के अनुकूल तीनों ही पोशाक वे पहनते थे और तीनों ही पोशाकें और तीनों ही भाषाएं उनको खूब फबती थीं। जिस कुर्सी पर वे बैठे थे, वह औरों से कुछ ज्यादा ऊंची थी। चम्पालाल की मूंछें उनके रोब के सामने फीकी और बाज़ार से खरीदी हुई मालूम पड़ती थीं। लेबर अफसर का मक्खन-सा चिकना और साफ चेहरा, और ढीले-ढाले सफेद-बुर्राक ख़द्दर के कपड़े भी जयरामदास के जलाल के सामने ऐसे लग रहे थे कि जैसे मिस्र देश से कोई चलती-फिरती ममी मंगा ली गई हो।

इस रंग-बिरंगी दुनिया के हर असर को परास्त करते हुए दिवाकर और उसके साथी मज़दूर नेता पुख्तगी के साथ अपनी कोहनियां गोल मेज़ पर टिकाकर जब बैठे तो मैनेजिंग डायरेक्टर के चेहरे की पेशेवर मुस्कान सहसा काफूर हो गई। दिवाकर की ओर लक्ष्य करते हुए उसने कहा, "हमने सुना था कि आपने तो एकेडेमिक-कैरियर अपने लिए चुन लिया, फिर ये तवालत आपने अपने गले में क्यों डाल ली दिवाकर साहब ?"

दिवाकर इस सद्भावना का सही-सही अर्थ समझता था। उसने उसी स्वर में उत्तर दिया, "मैं आपकी सरपरस्ती और सद्भावना का शुक्रिया अदा करता हूं। आज की इस बैठक का मंशा हालांकि ऐसा है, जिसमें आप जैसे खुश-इखलाक लोग ही ऐसी बातें कर सकते हैं। मुझे उम्मीद है, आज की चर्चा में आप इतनी ही उदारता का सबूत देंगे।"

"उदारता का हमसे क्या रिश्ता है साहब," जयरामदास ने ज़रा चेहरे पर तन्ज़ लाते हुए कहा, "सरमाएदार कभी उदार हो ही कैसे सकता है ? फिर उदार होना भी कोई चाहे तो आप होने देते हैं ! बैठे-बिठाए कितना बड़ा

तूफान सिर में खड़ा हो गया। किसी तरह औने-पौने मिल चलना शुरू हुआ था। कुछ काम आगे बढ़ता तो मजदूरी भी आगे बढ़ सकती थी। आप लोग ज्यादा जोर देंगे तो हम ताले डाल देंगे। हमें बताइए, इतनी मजदूरी देकर कपड़े का दाम कितना रखा जायेगा?" जयरामदास ने अपनी पूरी बात एक ही सांस में कह दी।

एक मजदूर साथी ने कहा, "यह मसला तो आपके मैनेजर साहिब को हल करना है साहब, जिन्हें आप हजारों नकद वेतन देते हैं, हम गरीब मजदूर इस दुनिया की क्या समझें?"

"मसला किसी का भी हो," जयरामदास ने थोड़ा चुनौती के स्वर में कहा,"हकीकत यह है कि मिल के करघे चलेंगे तो सभी का पेट भरेगा। झगड़े-टण्टे से आज तक किसीको फायदा नहीं पहुंचा। लेकिन आप लोग जब बैठे-बैठे उकताने लगते हैं, तो रस्साकशी शुरू कर देते हैं। लेकिन आप लोगों की भी मजबूरी है, आखिर कोई काम तो करना हुआ न!" फिर अपनी मुस्कराहट के समर्थन के लिए अपने समर्थकों की ओर देखते हुए उसने फिर कहना आरम्भ किया, "क्या आपको यह मालूम नहीं दिवाकर साहब, कि इन झगड़ों से हजारों मजदूर-परिवार आए-दिन तबाह होकर रह जाते हैं, कोई नतीजा नहीं निकलता।"

जयरामदास की आंखों में व्यंग था, चुनौती थी और दर्प भी था। दिवाकर ने उसका यह रूप देखा और कंधे बिचकाकर अपने साथियों पर निगाह डाली। उनकी आंखों से जैसे चिनगारियां निकल रही थीं। दिवाकर ने कहा, "आप लोग समझते हैं कि हमारे लिए यह सब बेकारी का शुगल है। मुबारिक हो आपको आपका यह खयाल। लेकिन आप याद रखिए कि आप लोग अगर गरीब मजदूर के हित का ध्यान नहीं करेंगे, और सरकार के राष्ट्रीय उत्पादन में बढ़ोतरी करने के नारे का नाजायज फायदा उठाते हुए जुल्म करेंगे तो ऐसी बगावतें होंगी। जहां जुल्म होता है, बगावत वहां अपने-आप ही उठ खड़ी होती है। मैं आपसे पूछता हूं कि आपकी खुशियों के लिए जो मजदूर अपनी सारी जिन्दगी न्योछावर कर देता है, वही मजदूर एक दिन बिना बताए ठोकर मार कर बाहर निकाल दिया जाता है। इस व्यवहार के पीछे कौन-सा न्याय और नैतिकता है? अपने हकों के लिए लड़ने के लिए अगर मजदूर कानूनी तरीकों पर अमल करना चाहें तो आप उन्हें यूनियन नहीं बनाने देते। आखिर अपनी आवाज जनता और सरकार तक पहुंचाने

मजदूरों ने नारा लगाया—सरमाएदारी निज़ाम ! नहीं चलेगा, नहीं चलेगा !

नारों की गगनभेदी आवाज़ में दिवाकर की आवाज़ डूब गई। मज़दूरों की भीड़ में भयंकर जोश था। मैनेजर चम्पालाल उस भीड़ को देखकर घबरा गया। मैनेजिंग डायरेक्टर जयरामदास चोर दरवाज़े से अंदर पहुंचे, पेशेवर व्यायाम-शिक्षाशास्त्रियों के चेहरे उतर गए। अंदर से पैगाम आया कि मज़दूर लोग बातचीत के लिए पांच आदमी अंदर भेज दें। दिवाकर ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दिवाकर के साथ चार मज़दूर कार्यकर्ता मैनेजर के कमरे में पहुंच गए।

मैनेजिंग डाइरेक्टर जयरामदास हालांकि न गुजराती थे, न पारसी और न मारवाड़ी, लेकिन अवसर के अनुकूल तीनों ही पोशाक वे पहनते थे और तीनों ही पोशाकें और तीनों ही भाषाएं उनको खूब फबती थीं। जिस कुर्सी पर वे बैठे थे, वह औरों से कुछ ज्यादा ऊंची थी। चम्पालाल की मूंछें उनके रोब के सामने फीकी और बाज़ार से खरीदी हुई मालूम पड़ती थीं। लेबर अफसर का मक्खन-सा चिकना और साफ चेहरा, और ढीले-ढाले सफेद-बुर्राक खद्दर के कपड़े भी जयरामदास के जलाल के सामने ऐसे लग रहे थे कि जैसे मिस्र देश से कोई चलती-फिरती ममी मंगा ली गई हो।

इस रंग-बिरंगी दुनिया के हर असर को परास्त करते हुए दिवाकर और उसके साथी मज़दूर नेता पुख्तगी के साथ अपनी कोहनियां गोल मेज़ पर टिकाकर जब बैठे तो मैनेजिंग डायरेक्टर के चेहरे की पेशेवर मुस्कान सहसा काफूर हो गई। दिवाकर की ओर लक्ष्य करते हुए उसने कहा, "हमने सुना था कि आपने तो एकेडेमिक-कैरियर अपने लिए चुन लिया, फिर ये तवालत आपने अपने गले में क्यों डाल ली दिवाकर साहब ?"

दिवाकर इस सद्भावना का सही-सही अर्थ समझता था। उसने उसी स्वर में उत्तर दिया, "मैं आपकी सरपरस्ती और सद्भावना का शुक्रिया अदा करता हूं। आज की इस बैठक का मंशा हालांकि ऐसा है, जिसमें आप जैसे खुश-इख़लाक लोग ही ऐसी बातें कर सकते हैं। मुझे उम्मीद है, आज की चर्चा में आप इतनी ही उदारता का सबूत देंगे।"

"उदारता का हमसे क्या रिश्ता है साहब," जयरामदास ने ज़रा चेहरे पर तन्ज़ लाते हुए कहा, "सरमाएदार कभी उदार हो ही कैसे सकता है ? फिर उदार होना भी कोई चाहे तो आप होने देते हैं ! बैठे-बिठाए कितना बड़ा

कुछ न मिल में खड़ा हो गया। किसी तरह धीरे-धीरे मिल चलना शुरू हुआ था। कुछ काम आगे बढ़ता तो मजदूरी भी आगे बढ़ सकती थी। आप लोग ज्यादा ज़ोर देंगे तो हम ताले डाल देंगे। हमें बताइए, इतनी मजदूरी देकर कपड़े का दाम कितना रखा जायेगा ?" जयरामदास ने अपनी पूरी बात एक ही सांस में कह दी।

एक मजदूर साथी ने कहा, "यह मसला तो आपके मैनेजर साहिब को हल करना है साहेब, जिन्हें आप हजारों रुपए वेतन देते हैं, हम गरीब मजदूर इस दुविधा को क्या समझें ?"

"मसला किसी का भी हो," जयरामदास ने थोड़ा चुनौती के स्वर में कहा, "हकीकत यह है कि मिल के कपड़े चलेंगे तो सभी का पेट भरेगा। झगड़े-टंटे से आज तक किसीको फायदा नहीं पहुंचा। लेकिन आप लोग जब बैठे-बैठे पछताने लगते हैं, तो हड़ताल शुरू कर देते हैं। लेकिन आप लोगों की भी मजदूरी है, आखिर कोई काम तो करना हुआ न !" फिर अपनी मुस्कराहट के समर्थन के लिए अपने समर्थकों की ओर देखते हुए उसने फिर कहना आरम्भ किया, "क्या आपको यह मालूम नहीं दिवाकर साहब, कि इन झगड़ों में हजारों मजदूर-परिवार आए-दिन तबाह होकर रह जाते हैं, कोई नतीजा नहीं निकलता।"

जयरामदास की आंखों में व्यंग था, चुनौती थी और दर्प भी था। दिवाकर ने उसका वह रूप देखा और अपने विचारकर अपने साथियों पर निगाह डाली। उनकी आंखों से जैसे चिनगारियां निकल रही थीं। दिवाकर ने कहा, "आप लोग समझते हैं कि हमारे लिए यह सब बेकारी का शुगल है। मुबारिक हो आपको आपका यह ख्याल। लेकिन आप याद रखिए कि आप लोग अगर गरीब मजदूर के हित का ध्यान नहीं करेंगे, और सरकार के राष्ट्रीय उत्पादन में बढ़ोतरी करने के नारे का नाजायज फायदा उठाते हुए जुल्म करेंगे तो ऐसी बगावतें होंगी। जहां जुल्म होता है, बगावत वहां अपने-आप ही उठ खड़ी होती है। मैं आपसे पूछता हूं कि आपकी मशीनों के लिए जो मजदूर अपनी सारी जिन्दगी न्योछावर कर देता है, वही मजदूर एक दिन बिना वजह, ठोकर मार कर बाहर निकाल दिया जाता है। इस व्यवहार के पीछे कौन-सा न्याय और नैतिकता है ? अपने हकों के लिए लड़ने के लिए अगर मजदूर कानूनी तरीकों पर अमल करना चाहे तो आप उसे कुचलना चाहते हैं। आखिर अपनी आवाज जनता और सरकार तक पहुंचाने का

उनके पास कौन सा तरीका है?"

दिवाकर की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि एक तरुण मजदूर नेता बात काटकर बोला, "बेहतर तो यह है कि सेठ साहब आप धर्म और नीति पर तकरीर करने के बजाए कोई ऐसी बात कहें जो उन हज़ारों बेकसों के पेट की आग को ठण्डा करे—जो आपके दरवाज़े पर फरियाद करने आए हैं।"

लेबर-आफीसर बोला, "प्रबन्ध-विभाग आपकी यूनियन की मंजूरी देने की बात पर विचार ही कर रहा है, वह रजिस्टर्ड हो जाए, तो बेशक आप अपनी मांगें पेश करें। कानून की बात भर करने से बात कानूनी नहीं हो जाती। इस तरह कानून को हाथ में लेने से काम नहीं चलता, मेरे मोहतरिम दोस्त !"

"जी हां," मैनेजर चम्पालाल जो बहुत देर से चुप थे, बोले, "मैं बार-बार आपसे यही दोहराता रहा हूं कि बात हमेशा कायदे की होनी चाहिए। फरियाद के लिए सरकार ने कानूनी अदालतें खोली हुई हैं। इस तरह झगड़ा करने से बेहतर है कि यूनियन के रजिस्टर्ड होने तक आप इंतज़ार करें। सोचने की बात है अगर आपकी यूनियन को सरकार ही मंजूरी न दे, तो हम लोग क्या कर सकते हैं? धींगा-मुश्ती की बात और है।"

दिवाकर ने कहा, "तो फिर यूं कहिए कि कानून के दांव-पेंच सिखाने के लिए आपने हमें यहां बुलाया था।"

क्रोध के आवेग से उसके नथने फड़कने लगे थे। उसने अपनी आग्नेय आंखों को साथियों की तरफ घुमाया—जिनके चेहरे पहले ही शोले-से लहक रहे थे। दिवाकर और उसके साथी बातचीत करना नहीं चाहते थे, सो बात नहीं, लेकिन दूसरे पक्ष की प्रत्येक बात से शरारत और बदनीयती साफ झलक रही थी, इसलिए कोई भी समझौता किस हद तक मज़दूरों के पक्ष में होता, इसका वह अंदाज लगा सकते थे। दिवाकर ने सेठ जयरामदास की बनावटी हंसी का अनुकरण करते हुए कहा, "कानून के काले चोंगे से जब न्याय की किरणें फूटना बंद हो जाती हैं तो मज़लूम और बेकस उसे अपने लहू से रंग देते हैं, याद रखिएगा, सेठ साहब !"

सभी साथी उठ खड़े हुए। सेठ जयरामदास का चेहरा घृणा से विचक गया। कुर्सी के दोनों हत्थे मजबूती से पकड़कर वे बोले, "जिनकी नसों में फालतू खून है, वही इस तरह की रंगसाज़ी कर सकते हैं, हुजूर! मुझे अफसोस है कि हम किसी फैसले पर नहीं पहुंच सके।"

लगाया। मज़दूरों में जोश की एक लहर फैल गई। फाटक पर घुड़सवार पुलिस के सिपाही भीड़ को फाटक की ओर बढ़ने से न रोक सके। आनन-फानन में सैंकड़ों मज़दूर दीवार फांदकर अहाते में दाख़िल हो गए और उन्होंने अंदर से मोटे लोहे का दरवाज़ा तोड़कर खोल दिया।

साथी विश्वनाथन चुने हुए मज़दूर साथियों के एक जत्थे के साथ पुलिस की काली गाड़ी की ओर बढ़ रहे थे। भीड़ को अपनी ओर आते देखकर सिपाहियों ने अपनी बन्दूकों पर लपलपाती हुई संगीनें चढ़ा ली थीं। सबसे पहली छाती जो गार्ड की संगीन पर आकर टिकी, वह साथी मानसिंह की थी। आन की आन में सैंकड़ों सीने गार्डों की संगीनों पर छा गए।

दिवाकर की अपनी मांस-पेशियां रक्त के संचार से फड़कने लगी थीं। साथियों की दिलेरी देखकर उसका रोम-रोम हुलसित हो उठा। उसका मन होता था कि हथकड़ियों से बंधे हाथों से ही प्रहार करना प्रारंभ कर दें। लेकिन वैसी नौबत नहीं आई। विश्वनाथन और मानसिंह ने पुलिस-गाड़ी का दरवाज़ा खोल डाला और पांचों साथियों को मुक्त कर लिया था। जिस समय पांचों मज़दूर कार्यकर्ता मिलके बाहर की ओर कदम बढ़ा रहे थे, मज़दूरों के क्रान्तिकारी नारों से आसमान फटा पड़ता था। सारे वातावरण में शहादत की तरंगें उमड़ रही थीं।

परन्तु यहीं नाटक का अंत नहीं होना था। सेठ जयरायदास ने अपनी विश्वासघाती चाल को नाकाम होते देखकर मिल की झूठमूठ की नौकरी में रखे गए पेशेवर व्यायाम-शास्त्रियों को नमकहलाली करने का हुक्म दे दिया था। अगले ही क्षण मिल के अहातों में फिर से रण-भैरवी का नाद गूंजने लगा। निहत्थे मज़दूर अपनी खुली बांहों पर लट्ठबंद आक्रमणकारियों के के वार रोकने लगे। लेकिन यह सब कितनी देर चल सकता था। एक-एक करके निहत्थे मज़दूर ज़मीन पर गिरने लगे।

बाहर सशस्त्र पुलिस के दो दस्ते आ गए थे। पुलिस की सीटियों की आवाज़ सुनकर लाला दौलतराम के संकट के साथी जहां से आए थे फिर वहीं सरक गए थे। अब पुलिस को ज्यादा बल-विक्रम दिखाने की ज़रूरत नहीं थी, लगभग १०० मज़दूर प्रायः अधमरे होकर गिर पड़े थे। दिवाकर के सिर में लाठी लगी थी और कनपटी के पास का पुराना ज़ख्म फिर खुल गया था और विश्वनाथन तथा मानसिंह प्रायः अचेत-अवस्था में पुलिस-वान के पहियों से टिके पड़े हुए थे।

विश्वनाथन के सख्त घायल होने और मानसिंह सहित १८ मज़दूर नेताओं के काम आने की खबर थी।

जार्ज बेचारे को यह पता नहीं था कि हाकर के मुंह से सुने गए जिन समाचारों ने उसके पैरों में पवन की गति से दौड़ने की ताकत पैदा कर दी है, वही समाचार किसी के सीने की धड़कन भी बंद कर सकते हैं। शकुन्तला ने जब वह समाचार देखा तो जमीमा उसके हाथ से छूटकर गिर गया और उसकी आखें दीवार पर टिकी रह गई। जार्ज ने घबराकर बड़ी बहिन को पुकारा। सभी दौड़कर आए तो शकुन्तला दोनों हाथों से सिर दबाए बैठी थी। कीर्ति ने खुले हुए अखबार की सुर्खी पढ़ी तो जार्ज को डांटते हुए कहा —"किसने कहा था कि सीधे उसके हाथों में ही अखबार देना। ये सब लोग मेरे माथे पर कलंक का टीका लगवाए बिना छोड़ने वाले नहीं हैं। तुझसे अखबार पढ़े बिना रहा न गया था!"

फिर स्निग्ध भाव से शकुन्तला के सिर पर हाथ रखकर कीर्ति बोली, "ईशू मसीह, परवरदिगार की रहमत है कि सिर्फ चोट ही आकर रह गई। अठारह मजदूर अपनी जान से हाथ धो बैठे। तुम ठीक हो जाओ, तो देखने चलेंगे। अब सोच-विचार छोड़कर लेट जाओ!"

पर शकुन्तला ने जैसे वह कुछ भी सुना नहीं। वह पलंग से उठकर खड़ी हो गई और जार्ज के कन्धों पर हाथ रखकर बोली, "टेलीफोन करके नीना बहिन को बुलाओ—मैं अभी उधर जाऊंगी।" फिर तत्काल ही अपने निश्चय को बदलती हुई बोल उठी, "चलो, मैं खुद ही टेलीफोन करने उधर चलती हूं।"

लता भारद्वाज के यहां पहुंचकर लगातार डायल घुमाने पर भी उधर से कोई नहीं बोला, तो वह कहने लगी, "जो जन-जीवन को बदलने के लिए शहादत को सीने से लगाने को भी खेल समझते हैं, उनकी बीमारियों का घर पर इलाज कौन करेगा।" इतनी मायूसी होने पर भी शकुन्तला के चेहरे पर उज्ज्वलता झलक रही थी। उसके पैर भले ही लड़खड़ा रहे थे, लेकिन उस के मन में रोशनी थी। वह उठकर चलने लगी। मना करने पर भी एक तरफ से कीर्ति और दूसरी तरफ से श्रीमती लता भारद्वाज ने उसको संभाल लिया था। चलते-चलते शकुन्तला बोलती जाती थी, "आज मैं समझती हूं कि शायर कौन-से दर्द से तड़पकर कलाम कहता है, शहीद कौन-से दर्द से तड़पकर सिर पर मौत को धारण कर लेता है!"

कीर्ति और लता दोनों चकित थीं।

शकुन्तला फिर भी बोलती गई, "मेरे दर्द की दवा भी मुझे मिल गई है, बहिन! अब मुझे सहारे की ज़रूरत नहीं है। मैं बिना किसी सहारे आगे बढ़ सकती हूं।"

दोनों स्त्रियां इस तीसरी के ये अजनबी से उद्‌गार सुनकर और भी घबरा रही थीं। वह समझ न पाती थीं कि वह बीमार है, मानसिक आघात के परिणामस्वरूप ऐसा बोल रही है या वस्तुतः इतनी थोड़ी उम्र में दुनिया को बिना देखे भी कोई इतनी दार्शनिकता से बोल सकता है!

"कौन-सा जीवन का सत्य तुम्हारे हाथ लग गया है, कुछ हमें भी तो पता चले। दर्द हुआ नहीं और दवा ढूंढने निकल पड़ी हो। कदम संभाल कर रखो।" श्रीमती लता ने उसके कन्धे को थोड़ा दबाते हुए कहा।

"मैं कह नहीं सकती लता जी! जो कुछ अनुभव हो रहा है, वह बयान के बाहर की चीज़ है। लेकिन इतना सच है कि मेरे मन में अब कोई ऊहापोह नहीं है।" शकुन्तला ने कहा।

साथ वाली दोनों महिलाओं को उसकी बातें प्रलाप से अधिक कुछ भी न लग रही थीं। वे एक-दूसरे की ओर देखकर मुसकरा भर दीं। शकुन्तला यह देख रही थी। वह उनके माथे पर चमकने वाली सुहाग की बिन्दियों की चमक को भी देख रही थी कि काश उन शहीदों के पवित्र रक्त से वह अपने माथे पर बिंदी लगा सकती!

श्रीमती लता भारद्वाज ठठाकर हंसती हुई, और अपने घर की ओर मुड़ते हुए बोलीं, "अब जाकर मरहम-पट्टी करो—जीवन के सत्य की। जवान लड़कियों को रोज़-रोज़ जीवन का सत्य मिलता है और रोज़-रोज़ खो जाया करता है।"

श्रीमती लता के ये शब्द वातावरण में गूंज कर रह गए। प्रकाश की जो एक किरण जाग उठी थी, वह सहसा उस वाक्य के झंझावेग से थिरक कर बुझ गई। शकुन्तला का मुंह उतर गया। मायूस निगाहों से अपने बहिन की ओर देखा।

"इस तरह मुंह क्यों लटकाती है! मन में दिखाई पड़ने वाली रोशनी क्या कोई बिजली की बत्ती होती है कि बाहर वाला भी उसे देख लेगा?"

कमरे में पहुंचकर शकुन्तला ने कीर्ति को अपने पास बैठा लिया और उसके कन्धे पर सिर टिकाते हुए बोली, "आज तुमसे एक बात पूछूं जीजी!"

"पूछो, बातें करने से भी मैं गई क्या ?"

"बताओ तो—जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, वे भी ईश्वर के बंदों के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कैसे कर देते हैं ?"

"नहीं जानती, पर इतना कह सकती हूं कि जिनके मुंह में एक तरफ रात और दिन ईश्वर का नाम रहता है और दूसरी तरफ जो रात-दिन कुफ्र और कहर की जिन्दगी बिताते हैं वे आस्तिक नहीं होते। शिक्की, दुनिया की हर चीज़ का अस्तित्व आदमी के अपने विश्वास में है। मेरा मन तो यह कहता है कि आस्तिकता कोई बंधी हुई चीज नहीं है। अपने अन्तःकरण की पुकार के अनुसार काम करना ही सच्ची आस्तिकता है।"

"ठीक कहती हो जीजी ! ईसुमसीह ने अपने प्यारों के लिए क्यों बलिदान किया और फिर उनका पुनरुत्थान कैसे हुआ—आज मैं इस चमत्कार का मतलब समझने लगी हूं।"

इतना सब स्पष्ट होने के बाद तो शकुन्तला के मन में एक बेचैनी पैदा हो गई थी। अपने को बलिदान न कर सकने की असमर्थता पर उसका मन अंदर-ही-अंदर रो उठा था। रुदन के वेग से लरजते हुए होंठों को दांतों से दबाती हुई वह फफक उठी, "एक वे लोग हैं जो सत्य और न्याय की हिमायत के लिए अपने शरीर अर्पित करते हैं, आशा-अभिलाषाओं-भरे ज़िंदगी के सुनहरे सपने और अरमान निसार कर देते हैं, और एक मैं हूं—जिसे ज़िंदगी की छाया से भी भय लगता है। हे प्रभु, मेरी दुर्बल आत्मा में अपनी करुणा प्रदान करो !"

काफी देर तक पवित्र वेदना से उसका मन तड़पता रहा। यह तूफान शांत हुआ तो शीतकालीन वर्षा से छाए हुए पर्वत-शृंग के समान उसका मानस निर्मल हो चुका था और विवेक का सूर्य अपनी पूरी प्रखरता के साथ चमकने लगा था।

उसके पांवों में दुर्बलता अवश्य थी, परंतु निष्ठा में दृढ़ता का अभाव न था। अगले दिन प्रातःकाल ही वह जार्ज को लेकर कम्यून पहुंच गई। नीना जब उसके सामने पड़ी तो बेतहाशा दौड़कर उसके गले से लिपट गई। नीना की दृष्टि में एक मीठी और सहानुभूतिपूर्ण वेदना थी और उसका मौन कितना प्रखर था। अपने कमरे में शकुन्तला को बिठाते हुए नीना ने कहा, "पिछले तीन दिनों में यह दुनिया कितनी बदल गई है—मेरी प्यारी बहिन, तुमसे कैसे बताऊं ! यह देखो, सामने के कमरे में जो शरीफज़ादे बैठे हैं—कामरेड

शफीक है। कम्यून में अब उन्हीं का हुक्म चलता है। हैरत से मेरा दिल डूब कर रह जाता है—जब इनकी चर्चाएं सुनती हूं। उनके शासन में जयभारत मिल में जो युद्ध हुआ वह एक गैर जिम्मेदार दिमाग का फितूर था। उनका ख्याल है कि परिणाम पार्टी के भविष्य पर अच्छा नहीं पड़ेगा। जिन लोगों की शहादत ने सारे शहर की मजदूर-तहरीक को एक धागे में पिरो कर रख दिया—वे बहादुर मजदूर सिपाही सनकी वामपंथी कहे जा रहे हैं। तुमने सुना नहीं बहिन, मिस शान्ता विलायत से लौट आई हैं और अमरीका में रह कर उन्होंने मजदूरों की तहरीकों को खत्म करने की तालीम पाई है। जयभारत मिल का हत्याकांड उनकी तालीम का सर्वप्रथम प्रदर्शन है और मुल्क की बात यह है कि जो चन्द लोग अस्पताल में दिवाकर को देखने गए थे—उनमें वह भी एक थी। कामरेड शफीक को उन्होंने ही तो कहा है कि यह सब सनकी वामपंथवाद का परिणाम है। दिवाकर से क्या कहा होगा कौन जाने? मैं तो कहती दुनिया के सभी फलसफे आदमी क्या अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए ही नहीं गढ़ता?"

ये विचित्र घटना-दुर्घटना सुनकर शकुन्तला का सिर घूम गया। राजनीति की दुनिया में सिर्फ शहादत ही नहीं है—षड्यन्त्र भी है, नीचता भी है, नेतृत्व-प्राप्ति के लिए किया जाने वाला कत्लो-खून भी है। मूक-निश्चल भाव से मीना से आगे और कुछ सुनने के लिए वह उसका मुंह ताकने लगी।

मीना ने कहा, "अभी तक मुझे दिवाकर भाई से मिलने का अवसर ही नहीं दिया गया। कल प्रातः मेरे साथ चलना, हम अपने मिलने का समय खुद निश्चित करवा लेंगे।"

शकुन्तला के अपने पास भी बहुत-सी बातें कहने के लिए थीं, लेकिन तस्वीर के इस पहलू को देखकर मन का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया था। उसके मन में एक बात बैठती जा रही थी कि जहां प्यार सद्भावना, सेवा, और बलिदान लोगों के नेत्रों में हर्ष और करुणा के आंसू पैदा न करते हों—वहां किसी भले आदमी का रहना कैसे हो सकता है? पर इन सब बातों पर चर्चा करने से भी उसे विरक्ति होने लगी थी। जिसे लेकर वह अपने ख्वाब लेना चाहती, जिसके ज्वलन्त उदाहरण ने उसके दिल में उत्सर्ग की पवित्र अग्नि प्रज्वलित कर दी थी, वही जख्मों से छिदा हुआ, अस्पताल की बेगानी सूरतों से घिरा हुआ, कराहता होगा। उसके ध्यान से आगे उसका मन जाता ही न था।

सचमुच शकुन्तला के मन में इतनी गहरी निराशायुक्त करुणा उत्पन्न हो आई थी कि उसके दिल की धड़कन प्रायः रुक गई थी। नीना से विदा लेकर वह घर लौट आई। घर लौटने पर अच्छा ही हुआ कि कीर्ति ने बहुत-से प्रश्न करके उसकी सोई पीड़ा को जगाया नहीं, वरना क्या मालूम कि असमर्थता का वही दौर उस पर फिर सवार हो जाता।

किसी तरह दिन का वह भारी-भरकम वजूद सांझ के झुटपुटे ने अपने आगोश में छिपा लिया। पलकों में सवेरा होने का सपना लेकर शकुन्तला ने अपनी रात का स्वयं आविष्कार कर लिया।

सुबह उठने पर उसका मन अपेक्षाकृत बेहतर था। नीना की प्रतीक्षा में वह शीघ्र से शीघ्र तैयार होकर बैठ गई। तैयार होते समय उसे अकस्मात् यह ध्यान हो आया कि जिस दिन से दिवाकर से भेंट हुई थी, वह फिर उसे देख ही नहीं सकी है। उन थोड़े दिनों के जीवन में कितने निर्णायक क्षण आए और चले गए। अपने प्रेमास्पद को पाने का वह सुनहरा अवसर आया और उसकी अपनी दुर्बलताओं के कारण आकर चला गया। उसके जी में आया कि एक बार सोचकर देखे कि मुझे न पा सकने की असमर्थता ने ही तो दिवाकर को कहीं उस दुर्धर्ष दुस्साहसिकता से नहीं भर दिया है।

ऐसा सोचते ही उसकी आंखों में मादकता उभर चली और पीले चेहरे में से हल्की-सी लाली झांकने लगी। हालांकि अपने मचलते हुए दिल को उसने काबू में कर लिया था फिर भी बीमार को देखने जाने की उसकी तैयारी और अभिसार-यात्रा में केवल थोड़ा-सा फर्क रह गया था।

दस बजे जब नीना आई तब तक शकुन्तला ने कीर्ति को यह बताया नहीं था कि वे लोग दिवाकर को देखने जाने वाले हैं और अब जब वे दोनों जाने के लिए चल खड़ी हुईं, तो कीर्ति उन्हें रोक नहीं सकी। वह यही सोचने में उलझ गई कि आखिर शिवकी ने उसे यह सब कुछ बताया क्यों नहीं! लेकिन दिवाकर को देखने न जा सकने की बात से ही उसका चेहरा उतर गया और उस प्रसंग को लेकर वह अनुचित आतुरता प्रकट न कर बैठे—इसलिए उसने शिकवा भी नहीं किया और उसने टिन्नी के अधूरे गर्म मोज़े और ऊन हाथ में ले ली। उसने कहा, "दिवाकर से कहना कि अपनी असमर्थता के कारण मैं देखने आने की रस्म भी नहीं निभा सकी हूं। कभी इस कर्तव्य को और अच्छी तरह निभा दूंगी। उनके जल्दी अच्छे हो जाने के लिए मेरी शुभ-कामनाएं साथ लेती जाओ।"

"क्यों, आप भी चलिए न !" नीना ने कहा, "दो के बजाय तीन हो जाएंगे तो क्या है ?"

"नहीं, तीन का होना ठीक नहीं होता, जाना होगा तो मुझे तुम्हारे प्रबंध की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। बच्चों की बीमारी में उस अस्पताल की कई सिस्टरें मेरी मित्र बन चुकी हैं। जब मुनासिब समझूंगी, चली जाऊंगी।" कीर्ति ने हंसते-हंसते बात समाप्त कर दी थी।

नीना और शकुन्तला ने जिस समय अस्पताल के प्रतीक्षालय में प्रवेश किया तो उन्होंने देखा कि कमरा अनेक मजदूरों से भरा हुआ है। उनमें अनेक स्त्रियां भी थीं। उन सभी के चेहरों पर एक गहरी व्यथा थी। शकुन्तला ने नीना के कान में फुसफुसाया, "मिल में तो ताला पड़ गया है ! अब ये मजदूर क्या करेंगे ?"

"कौन जानता है, क्या करेंगे !"

"क्यों, जिस पार्टी के आदेश मान कर उन्होंने इतनी बड़ी कुर्बानी की, वह उनके लिए कुछ नहीं करेगी ?"

"पार्टी कर भी क्या सकती है। तीन दिन में चार हजार रुपया इकट्ठा हो गया है। लोग दे रहे हैं लेकिन मजदूरों का इतनी थोड़ी रकम से क्या होगा ! साथ ही पार्टी के नए नेता यह भी सोचने लगे हैं कि उस जिम्मेदारी को ही अपने कंधों से उतार फेंकें !"

"यह तो बहिन, अंधों की आंख-मिचौनी खेलने के समान हुआ। उन अनाथ बेवाओं और बच्चों का क्या होगा जिनके सरपरस्त शहीद हो गए ?"

"क्या कहूं, बहिन, मुझे तो कई बार इन सबसे नफरत होने लगती है...।"

नीना की बात पूरी भी न हुई थी कि सिस्टर ने उन्हें अपने साथ आने का संकेत किया। दोनों युवतियां अब दिवाकर के सामने थीं।

दिवाकर के सिर पर पट्टी बंधी थी। एक हाथ पर बड़ा सा बैंडेज था—जो फ्रैक्चर होने का सूचक था। चेहरा बहुत उतर गया था, लेकिन उसकी आंखों में एक निर्मल ज्योतिर्मय स्नेह इस तरह झलक रहा था कि जैसे वह पूजा के आसन से उठकर अभी आया हो। नीना ने दिवाकर का हाथ अपने हाथों में ले लिया और शकुन्तला की ओर देखा तो पाया कि वह आंचल में मुंह ढांपे सिसक रही है।

ऐसा क्यों हो गया, नीना की समझ में नहीं आया।

स्वयं शकुन्तला की समझ में नहीं आया, कि क्यों दिवाकर के ि

कर अपने मन को वह काबू में नहीं रख सकी। आंसुओं से उसकी आंखें तर थीं। नीना ने उसे आहिस्ता से ठेलकर आगे बढ़ाया। आंखों में आंसू लेकर वह दिवाकर के बिलकुल सामने बैठ गई।

"क्यों, इसमें रोने की क्या बात है," दिवाकर ने कहा, "यह क्या कोई तुम्हारा अपराध है ?"

शकुन्तला एकटक उसकी तरफ देख रही थी। परिवर्तनशील छायाएं उसके मुंह पर खेल जाती थीं।

दिवाकर ने फिर कहा, "तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर मुझे लगता है कि जो कुछ मैंने किया है, उसे तुम्हारा नैतिक समर्थन प्राप्त नहीं है। कम से कम उन लोगों से, जिनसे मेरा राजनीतिक रिश्ता नहीं है, मैं सहानुभूति की उम्मीद करता हूं !"

अब शकुन्तला मौन न रह सकी। बोली, "वह क्या करे जिससे कोई भी रिश्ता नहीं है ?"

उसकी आंखें फिर डबडबा आईं।

दिवाकर ने नीना को साक्षी करते हुए कहा, "देखती हो, क्या कहती हैं, मुझ से कोई पूछे तो कहूं कि केवल इन्होंने मुझे डेस्प्रेट बनाया। क्यों, इस आरोप को सिर पर लेने की हिम्मत है ?"

"काश !"

नीना ने गुदगुदाते हुए शकुन्तला को टोका, "देखो जी, ये क्या अजीब अन्दाज हैं तुम्हारे। अच्छा हो जाने दो इन्हें—अब की बार देखती हूं—तुम कैसे इतना छलछद्म कर सकोगी। बला का उलझा हुआ चरित्र है तुम्हारा।"

"ये उन लोगों में से हैं जो बलात्कार के बिना समर्पण नहीं करते ? माफ करना अगर बात कुछ यों ही हो गई हो तो।" दिवाकर ने कहा।

इस उक्ति ने तीनों ही दिलों में उल्लास का आविष्कार कर दिया। वे भूल गए कि वह पीड़ाओं और वेदनाओं से भरा हुआ अस्पताल का कमरा है। शकुन्तला अब अपने दिल की निराश गहराइयों से ऊपर उभर आई थी। उन की आंखों में उल्लास था। दिवाकर के सिर पर बंधी पट्टी का स्पर्श करते हुए कहा—"अब भी दर्द होता है ?"

"नहीं, यहां की नर्सों के स्पर्श में मसीही जादू है। मैं जल्दी ही अच्छा हो जाऊंगा।" फिर रुककर उसने कहा, "लेकिन क्या फायदा है अच्छा होने से भी ! ऐसी दुनिया में जहां कोई किसीकी हसरत को पूरा होता हुआ न

देश मरे, जहां आदमी और आदमी में हिंसक पशुओं जैसा वैर-विरोध हो, ऐसी दुनिया में जीने से कोई फायदा है ?"

इतना कहकर उसने शकुन्तला की ओर देखा। शकुन्तला की आंखों में एक आश्वासन था, जीने का आग्रह था और एक तेज भी था। जिसका अर्थ साफ था कि बस, इतनी सी परेशानी से घबरा उठे हो ?

दिवाकर ने देखा, सिस्टर समय समाप्त होने की सूचना देने के लिए दूसरी बार द्वार पर आकर लौट गई है। उसने नीना से पूछा—"जयभारत मिल का क्या हाल-चाल है। जो कुछ मुझे बताया गया है उससे तो जाहिर होता है कि हमने अपना कदम वापस लेने का निश्चय कर लिया है। ऐसी हालत में मेरा अच्छा होना न होना बराबर ही है।"

"मुझे पता चला है कि आप लोगों के अच्छा होते ही फौजदारी का मुकदमा भी आप पर चलाया जायेगा।" नीना ने कहा।

"फौजदारी का मुकदमा और हम पर ?" दिवाकर ने मुस्कराते हुए पूछा।

"हां, सुना तो यही है। तभी प्रजातांत्रिक सत्य और न्याय का परपंच बुलन्द हो सकेगा।" एक क्षण रुककर वह बोली, "मैं कहती हूं कि उन बेगुनाह अनाथों का क्या होगा जिनके सरपरस्त आपके और हमारे आदर्शों के पीछे शहीद हो गये ?"

सिस्टर जब दोबारा प्रकट हुई तो नीना ने पूछा, "सुना है, बड़ी सरकार भी आपसे मिलने आई थीं। क्या-कुछ कहती थीं !" नीना ने कहा।

"बहुत कुछ कहती थीं। बधाई देती थीं और शकुन्तला की प्रशंसा करते हुए कहती रहीं कि मुझे क्या सूझा इस कदर जल्दबाजी करके मैंने हंगामा खड़ा कर दिया। बेहतर तो यह था कि मजे से विवाह करके कुछ दिन आराम से गुजारते !" दिवाकर ने कहा।

"आपने कहा नहीं कि आराम से दिन गुजारना उन्हें ही मुबारक हो ? कि, किस तरह दुनिया की नैतिकता बदल गई है। आपसे इस तरह की बातें करने का उनका मुंह कैसे होता है ?"

"क्यों, इसमें क्या हुआ। जब तुमने उन्हें बड़ी सरकार बना दिया तो फिर जो कुछ न कहें, वही थोड़ा है।"

"शरीफ की तारीफ तो करती थीं ?" नीना ने पूछा।

अब सिस्टर अपनी मुसकान-भरा चेहरा लेकर बीच में अड़ गई ।

घड़ी देखते हुए उसने कहा, "मुझे सख्त अफसोस है। लेकिन बहुत जल्दी ही वे आप लोगों के पास आ जायेंगे।"

शकुन्तला भी उठ खड़ी हुई थी। चलते हुए उसने कहा—"कीर्ति जीजी ने अपनी शुभकामनाएं भेजी हैं। जल्दी ही देखने आयेंगी।"

इतना कहते-कहते उसकी आंखें फिर आंसुओं से भर गईं।

दिवाकर ने कहा, "अब तुम्हें अच्छी तरह समझ गया हूं, अगर नीना की बात सच न हो तो शायद जीवन-पर्यन्त तुम्हें समझने में भूल नहीं करूंगा।"

जब वे तीनों कमरे से बाहर जाने लगे तो दिवाकर ने जोर से आवाज लगाकर कहा—"जीजी को मेरा नमस्कार कहना और बच्चों को प्यार करना।"

उस आवाज़ में कुछ ऐसा था जिसे सुनकर शकुन्तला सहसा पिछले पैरों लौट आई और आश्चर्यचकित दिवाकर के सीने में अपना सिर रखकर बोली—"मुझे क्या कहते हैं? ये पहाड़-से दिन कैसे काट सकूंगी, यह विश्वास अपने पर से उठता जा रहा है।"

शकुन्तला के सिर पर हाथ रखकर दिवाकर ने कहा—"मेरा कहा मानो, थोड़े दिन नागपुर रह आओ। इतने में मैं ठीक हो जाऊंगा। तुम्हारा मन भी तो यहां की उथल-पुथल से बुरी तरह घबरा गया है।"

"कैसी बातें करते हैं?"

"शिक्की, तुम्हें देखकर जीने की लालसा कितनी तीव्र हो उठती है। काश, तुम मेरी पत्नी होतीं तो कितने अधिकार से कह सकता कि उन मज़दूर शहीदों के अनाथ बच्चों के लिए कुछ करना, जिनकी तरफ से शायद हमारी पार्टी मुंह फेर लेगी। जो काम हमने शुरू किया है, वह मेरे आने तक चलता रह सके तो मेरे मन को कितना सुख हो!"

गर्व से शकुन्तला का मस्तक ऊपर उठ गया। बोली, "मैं तुम्हारे लिए पत्नी से भी अधिक हूं। मैं तुम्हारे अंतर की वह ध्वनि हूं जिसे तुम स्वयं भी नहीं चीन्हते"'और अनामिका के बढ़े हुए नाखून से उसने अपनी कलाई पर हलका-सा दबाव दिया। रक्त की एक बड़ी बूंद छलक आई। हाथ आगे बढ़ाती हुई बोली, "लो, मेरी मांग में अपने हाथ से सिन्दूर भर दो और पूरे अधिकार से मुझे आदेश दो। लो, जल्दी करो!" दिवाकर ने उसके गाल पर टीका अंकित कर दिया और...

"...और उठती हुई उसने दिवाकर के चरणों को अपनी छाती से लगा लिया और चली गई।

यह क्षण दिवाकर के लिए कैसा था, उसकी समझ में नहीं आया। पट्टी के अंदर घावों में एक मीठी कसक उठकर रह गई और शरीर के रोम-रोम में एक प्यास उभर आई और कमरे के उस एकांत शून्य में उसे लगा, जैसे उसकी आत्मा उसकी देह को छोड़कर चली गई।

शकुन्तला के लिए इस मिलन की अनुभूति विचित्र थी। धर्म, जाति और परम्परा के सहारे जो अनुभव उसकी चेतना में जगे थे, वे इस संवेदन ने तोड़ दिए और नीना के साथ चलती हुई वह अनेक योजनाएं बनाती जा रही थी। इन योजनाओं में मजदूर-बस्तियों में जाकर काम करने की योजना भी थी। और एक रोमांस युवा भावना की थिरक उसने अनुभव करनी प्रारंभ कर दी थी। नीना से उसने कहा, "बहिन क्या, हम उन अनाथ बच्चों के लिए कुछ नहीं कर सकते?"

"क्यों नहीं कर सकते?" नीना ने कहा, "लेकिन हमें पार्टी की अनुमति के बिना कुछ भी करने का अवसर कैसे मिल सकता है। क्या मैं तुम्हारे भरोसे उस कार्य को पार्टी की ओर से अपने कन्धों पर ले सकती हूं?"

"पूरी तरह बहिन, बिना पार्टी की अनुमति के भी।"

नीना उसे रोककर खड़ी हो गई, "मैं तो कहती हूं अगर मेरा सारा जीवन उसके लिए अर्पित हो जाए तो मैं तैयार हूं। बचपन से ही समाज-सेवा करने का प्रण मेरे रोम-रोम में पुलक रहा है। विचित्र स्थिति में अनेक सोई हुई भावनाओं का आज उदय हो रहा है।" शकुन्तला ने नीना के हाथ पर अपना हाथ रखते हुए आश्वासन दिया।

"मुझे आप से यही उम्मीद थी। पहले दिन जब देखा था, मुझको यही लगता था कि अगर कहीं आप भी पार्टी में आ जाएं, तो एक बहुत बड़ी शक्ति हमारे कामों में प्रवेश कर जाए। सच बहिन, बिल्कुल सच कहती हूं।"

नीना मधुर कला और भावना की साक्षात् प्रतिमा थी। बहुत कम स्त्री-पुरुषों को देखकर प्रभावित होने वाली वह युवती आज सहसा न जाने क्यों अपने ही समान इस दूसरी युवती से इतनी प्रभावित हो उठी थी। न जाने शकुन्तला की आंखों में क्या झलकने लगा था कि उसका रूप अलौकिक हो उठा था।

शकुन्तला ने कहा, "आज मुझे अपनी बेटी की याद आ रही है। काश, आज मैं दिल्ली में न होकर नागपुर में होती तो शायद आदमियों को ही नहीं, दीवारों और वृक्षों को भी अपने साथ-साथ ले चलने का विश्वास मुझमें आ जाता। यहां परदेस में मैं किस बूते पर उतना बड़ा काम संभालूं, लेकिन आपके साथ हूं। नीना बहिन, अगर पार्टी उस दायित्व को अपने ऊपर न भी ले तो मैं संभालूंगी।"

इसी तरह बातें करती-करती दोनों युवतियां बहुत देर तक साथ-साथ चलती रहीं। जब विदा होने लगीं तो शकुन्तला ने सहसा कहा, "बहिन, क्यों नहीं अपने राजेन्द्र को बुला लेती हो। इनका अब क्या पता है, अगर मुकदमा चलता है तो बड़ी सरकार उनको सज़ा कराने में काफी दिलचस्पी लेगी। हम लोगों के सिर पर भी तो किसी का साया होना चाहिए।"

नीना ने इस अजनबी मित्र की आंखों में देखा—करुणा, स्नेह और उत्सर्ग की एक पवित्र धारा उनमें बह रही थी। उसकी आंखें भर आईं। वह बोली, "आज ही लो बहिन। उनके आने से दिवाकर भाई को बहुत ढाढ़स मिलेगा। आज ही अपने मरणासन्न होने की खबर भेजती हूं। अगर कहीं कुछ बचा है तो ज़रूर उभर आएगा, क्यों है न?"

शकुन्तला ने नीना को अपने बहुत निकट खींच लिया और उसके मन में आया कि उसका मस्तक चूम ले, पर वे दोनों सड़क पर थीं, अपने सरपरस्तों के बनाए हुए नियम-विधान उनके रास्ते में थे।

विदा होने पर शकुन्तला पहली सवारी लेकर घर पहुंचने के लिए आतुर हो उठी थी। इस अनुभूति को बड़ी बहिन को सौंप देने के लिए उसका मन मचल रहा था।

मेस के मुख्य द्वार पर पहुंचते ही उसका मन भाग उठने को हुआ। हालांकि जिस तरह वह चल रही थी, नागरिक सभ्यता में उसे भागने से कम नहीं माना जाता। जार्ज उसे अपनी प्रतीक्षा करता मिला। खुशी और उदासी की एक अजीब लहर उसके मुंह पर खेल रही थी। वह बहिन की बगल में हाथ डालकर बोला, "जीजी, पापा और ममी आ गए हैं।"

"झूठ!" शकुन्तला ने अंदर ही अंदर सिहरते हुए कहा, "बिना चिट्ठी-पत्री या तार के कैसे आ सकते हैं? मुझे सताने में तू अपनी बड़ी बहादुरी समझता है। चल, देखती हूं तेरी शरारत!"

पर शकुन्तला को अंदर कहीं विश्वास हो गया था कि आ गए हैं और

अगर नहीं भी आए हैं तो वे इस धरती पर तो हैं। भगवान उनको चिरायु करे कि उनका आशीष उसको हमेशा मिलता रहे। वे अपनी लाड़ली बेटी का मन जरूर रखेंगे। मेरे पिता कितने दयालु और उदार हैं!—वह अंदर ही अंदर सोचती रही।

भाई-बहिन दोनों उसी स्थिति में आगे बढ़ने लगे। टिन्नी हाथ में बैट लेकर एक खूबसूरत तितली से टेनिस खेल रहा था। शकुन्तला ने आवाज लगाई, "टिन्नी, डार्लिंग।"

उसी समय शीलि बाहर निकलकर आई। उसके चेहरे पर भयानक गंभीरता थी, पर शकुन्तला टिन्नी में इस तरह उलझी कि देख ही न सकी। टिन्नी को बेतहाशा प्यार करती हुई बोली—"उन्होंने कहा है, बच्चों को मेरा प्यार कर देना। जीजी, आपको बहुत याद करते थे। कहते थे…"

लेकिन शीलि ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया। शकुन्तला ने मुंह ऊपर उठाया कि बहिन की छलछलाती हुई आंखों को देखकर उसका कलेजा धक से रह गया। वह बोली, "पापा आप पर बहुत नाराज हुए हैं न?"

शीलि ने आंख के इशारे से बता दिया कि पापा तुम्हारे पीछे ही आकर खड़े हो गए हैं। शकुन्तला ने घूमकर देखा—पापा पीछे गंभीर आकृति बनाए खड़े हैं, ठीक वैसे ही हैं जैसे नागपुर में थे। उनकी आंखों में खुशी थी। अपनी लाडली बेटी को देखकर उनका स्वरूप जैसे एकदम बदल गया था। शकुन्तला दौड़कर उनके सीने से चिपक गई। सिर पर हाथ फेरते मि० जोबेक ने कहा, "यहां आकर हमें बिलकुल भूल गई न बिटिया! इसीलिए तो लोग कहते हैं कि लड़कियां किसीकी नहीं होतीं।"

आंतरिक उद्वेग से कंठ प्रायः रुद्ध हो गया और आंखों में पानी छलछला आया।

मिस्टर जोबेक स्नेह से शकुन्तला की पीठ थपथपा रहे थे और श्रीमती जोबेक इस बीच स्नान करके आ चुकी थीं।

मां ने कहा—"न जाने क्या जादू इस लड़की ने बाप पर कर दिया है, जरा देखो कि पिघलकर मोम हो गया।"

मां की नजर इस तरह भीगी थी कि शकुन्तला उचित अभ्यर्थना भी न कर सकी। बातचीत का सिलसिला आगे न बढ़ सका। टिन्नी और पीटर रामप्रसाद के साथ चाय का सामान लेकर डाइनिंग रूम में पहुंच चुके थे और

ऊंची-ऊंची आवाज़ में सभीको बुला रहे थे।

चाय की मेज़ पर बैठकर शकुन्तला सोच रही थी कि अब जो कुछ उसके सामने उपस्थित होना थे उसे शीघ्र से शीघ्र उपस्थित हो जाना चाहिए। नीना कपूर के साथ उसने भावनाओं के जिस आवेग को अनुभव किया था वह असमंजस की स्थिति में शिथिल पड़ता जा रहा था, परन्तु फिर भी दिल के कहीं कोने में कोई चीज़ थी जो उसमें साहस का संचार कर रही थी।

कीर्ति चाय की व्यवस्था में जानबूझ कर इतनी व्यस्त और तत्पर थी कि मां और बाप दोनों में से जो कोई भी उस अप्रिय प्रसंग को आरंभ करे, वह न करेगी। सभी कोई खाने-पीने में इतना व्यस्त हो गए कि अपने अंदर बैठे हुए पशु का विकृत रूप प्रकट न कर पाए, लेकिन श्रीमती जोज़ेफ ने जिस समय चर्चा आरंभ की तो कीर्ति के तेज़ी से चलने वाले हाथ अवसन्न रह गए। उन्होंने प्रश्न शकुन्तला से नहीं, सीधे कीर्ति से ही किया था। श्रीमती जोज़ेफ बोलीं—"क्यों री छोकरी! बहिन को अपने पास इस लिए बुलाया था कि सब लोग मिलजुल कर यह तमाशा बनाया करो, तुम्हें यह मालूम नहीं कि जिस समाज में हम लोग रहते हैं उसकी एक मर्यादा है और उसे तोड़ने वाले आराम की ज़िंदगी बसर नहीं कर सकते!"

इस प्रश्न का कोई भी उत्तर कीर्ति से बन नहीं पड़ा। उत्तर उसे मालूम न हो यह बात नहीं थी। मां और बाप को अपने अतिथि के रूप में पाकर वह उनके प्रति अपनी सहज भावनाओं में इतनी डूब गई थी कि सहसा अपने स्वाभाविक प्रखर व्यक्तित्व का उसे अहसास नहीं हुआ। वातावरण का मौन इतना कठिन था कि मिस्टर जोज़ेफ पहल करते तो शायद अपनी पत्नी से किसी कदर कम दुर्धर्ष न होते। अब वे अपनी कुर्सी में बेचैनी का अनुभव करने लगे। लड़कियों को निरुत्तर देखकर बोले, "क्या सचमुच वह लड़का यहां है? शादी की बात चल चुकी है?"

कीर्ति ने अब निश्चय कर लिया था कि इस विषम परिस्थिति का यदि साहसपूर्वक सामना न किया गया तो बात बिगड़ सकती है। उसने नज़र नीची करके कहा—"मैं समझती हूं जो कुछ अब तक हुआ है उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो हमारे परिवार की मर्यादा पर कलंक लगाने वाला हो। तार देते समय मैंने यह सोचा था कि शकुन्तला इस चीज़ को अपने लिए ठीक मानती है। अपना आशीर्वाद देकर उसे आप पवित्र कर देंगे।" श्रीमती जोज़ेफ ने

समझ कर कहा—"मैं जानती हूं उस छोकरे को। देखने में बड़ा भोला-भाला है लेकिन जल्लाद से कम नहीं है। उस दिन मोहल्ले-भर में उसने मेरी नाक कटवा डाली," फिर थोड़ा रुककर बोलीं, "कहां हैं आजकल? यहां आता है?"

"एक-आध मर्तबा हमारे यहां आए तो हैं", कीर्ति ने कहा—"आजकल तो अस्पताल में हैं।"

"अस्पताल में? क्यों, क्या हुआ?" मिस्टर जोज़ेफ ने पूछा।

"अभी पिछले दिनों शहर में एक हड़ताल हुई थी।" कीर्ति ने कहा—"मिस्टर दिवाकर शहर की कपड़ा मजदूर यूनियन के बहुत बड़े नेता हैं, यूनियन ने मजदूरों के हक में एक हड़ताल की थी जो मालिकों के विश्वास-घात और पुलिस के हस्तक्षेप के कारण गदर में बदल गई। उन्हें भी काफी चोट आई है...लेकिन उम्मीद है, जल्दी ही अच्छे हो जायेंगे।"

"मैं इसीलिए कहता हूं कीर्ति, कि तुम शिक्की को समझाओ। आज की यह भावुकता कल उसे रुला भी सकती है। हम ईसाई हैं, ईश्वर की सत्ता पर भरोसा रखते हैं। कल जब सम्पर्क बढ़ जायेगा तो कदम-कदम पर विरोध का सामना करना होगा। दुनिया क्या कहेगी। खुद दिवाकर भी हमारी ज़िंदगी में नहीं रह सकता। फिर क्या फायदा है ऐसा आचरण करने से, जो हमें अपने समाज से और अपने मां-बाप से हमेशा के लिए बेगाना कर दे...।"

शकुन्तला पिता की घटीली बातों से रुआंसी होकर उठने लगी थी। लेकिन उन्होंने उसका हाथ पकड़कर स्नेह से फिर बैठा लिया और बोले, "अब तुम अबोध नहीं हो शिक्की, कि अपना भला-बुरा न समझ सको। क्या मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती?"

"आती है पापा! आपके दिल में मेरे लिए प्यार है। उसके बोझ से ही मेरा दिल फटा जाता है—मैं बोल नहीं सकती।"

"जिस काम की शुरुआत ही रोने-धोने से हो" मां ने तीर फेंका—"तो उसका अंजाम क्या होगा, भगवान ही जाने।"

शकुन्तला चुप रह गई। कीर्ति का चेहरा भी कम रुआंसा नहीं हो रहा था। पिता ने फिर पूछा—"मेरा तो सबसे बड़ा ऐतराज यही है कि शिक्की की नसों में आस्तिकता कूट-कूट कर भरी है। उसका निभाव तो किसी आस्तिक वृत्तियों वाले साथी के साथ ही हो सकता है।"

"आप अगर आस्तिकता की बात कहते हैं तो मैं कहती हूं", शकुन्तला

ने कहा, "बस उसे आगे चलने दो !"

"जब कुएं में गिर जाय तो निकालने की कोशिश करके अपना इन्सानी फर्ज़ पूरा करने से ज्यादा तुम कर भी क्या सकती हो विक्की की मां ?" मिस्टर जोजेफ ने कहा। "जिसे कुएं में गिरना होता है, वह किसीके रोके रुकता नहीं। बल्कि जो कुएं में गिरने की सोचे उसे कुएं की जगत पर बैठाकर सभी खतरों से आगाह कर देना दूसरों का फर्ज़ है और फिर खुला छोड़ देना। आदमी को कभी कोई बांध सका है ?"

"मैं पूछती हूं, तुम्हें क्या हो गया है ? तुम क्या सारी ज़िंदगी आंखें मींचकर ही बिताओगे। इन छोकरियों का कुछ भरोसा है, तुम्हें याद नहीं फादर जार्ज की छोकरी एक रेलवे कुली के साथ गायब हो गई थी। पहले वह कुएं में गिरी, फिर खाई में। आज तक उसका पता ही न चला। अपने ही मोहल्ले में यदुनाथ देशपाण्डे की छोकरी का क्या हश्र हुआ, मालूम तो है। फिर भी इस तरह की बातें करते हो। मो मैं मना नहीं करती। इस घर में कभी मेरी सुनी गई है, जो आज उम्मीद करूं।"

फादर जोजेफ उठकर बैठ गये और पत्नी की ठोड़ी पकड़कर उसे अपनी ओर आमुख करते हुए बोले, "मैंने तो सारी ज़िंदगी प्रभु की गुलामी में गुज़ारी और तुम्हारी गुलामी में उससे किसी तरह कम नहीं। मैं कहता हूं प्यार से समझा सकोगी तो अच्छा है। दबाव से तुम्हारी लड़कियां कोई बात अपनी इच्छा के विरुद्ध नहीं सुनने वाली हैं।...तुम्हें चाहे यह बात अच्छी न लगे, मुझे तो इस प्रकार का नैतिक बल अच्छा लगता है। चिंता कभी-कभी इस बात की होती है कि कहीं लड़का ही लड़की का साथ न छोड़ दे। उसके लिए मेरी राय यह है कि रिश्ते की स्वीकृति दे दी जाये लेकिन उसे थोड़े दिन के लिए स्थगित रखा जाये। नेक और ईमानदार बच्चों को उदारता से ही बंधन में बांधा जा सकता है।"

श्रीमती जोजेफ भी अपनी लड़कियों की प्रकृति को अच्छी तरह समझती थीं। पति की बात उनकी समझ में आती जा रही थी। बोलीं, "लेकिन इस बीच कोशिश यह करनी चाहिए कि लड़की का मन उस से फिर जाय।"

"फिर भी सकता है, लेकिन इतना मैं जानता हूं कि कोशिश करने से वैसा नहीं होगा। उसे स्वाभाविक रूप से छोड़ देने से स्वयं ही फिर जाना मुमकिन है, वरना नहीं। इस अर्से में अगर लड़के की दिलचस्पी ही बदल जाये, तो भी लड़की का मन उधर से फिर सकता है। सब कुछ प्रभु के हाथ

है। हम क्या कर सकते हैं।"

इस बात का कोई खास प्रतिकार श्रीमती जोजेफ ने नहीं किया।

दूसरे दिन जब सुबह हुई तो घर के सभी लोग एक दूसरे के अधिक निकटता का अनुभव कर रहे थे। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए कीर्ति ने बुजुर्गों के सामने घूमने-फिरने का प्रस्ताव रख दिया।

यह प्रस्ताव जब असली रूप में आने लगा तो समस्त परिवार जैसे आधारभूत समस्या को भूल ही गया। मां-बाप के मानस में जहां सामाजिक प्रतिष्ठा की एक हल्की-सी समस्या डेरा डाले बैठी थी, वहां अनेक ऐतिहासिक यथार्थ सरल सत्यों के रूप में उभरकर उनके सामने आने लगे, तो प्रत्येक समस्या के प्रति उनका रुख ही बदल गया। मि० जोजेफ उस समय कुतुब मीनार की तीसरी मंजिल में पहुंचे तो कहने लगे, "शिक्की, देखो तो यह दुनिया कितनी विलक्षण है। ये नदी-नाले, ये वृक्ष, पहाड़ियां, वह दूर तक फैला हुआ आकाश और उन सबके बीच में यह पस्ताकद इन्सान! सचमुच आदमी कितना छोटा है और कितना बड़ा मानकर अपने को बैठा हुआ है।"

"बात तो ठीक है पापा, परंतु अगर आदमी ने यह कुतुब मीनार न बनाई होती तो आप इतने ऊंचे उठकर दुनिया को न देख सकते। आदमी की बड़ाई ऊंचा उठने और उठाने में ही है। आदमी इसीलिए बड़ा है कि वह प्रभु की लीला को समझता है और वह उसीका एक अंग है। हो सकता है, आप आखिरी मंज़िल पर पहुंचकर कहने लगें कि दुनिया कितनी निस्सार और अपदार्थ है। क्योंकि दुनिया तो और कुछ भी नहीं है, आदमी की नज़र में दीखने वाला एक मंज़र है, जैसा कोई चाहे देख ले!"

मि० जोजेफ ने लड़की की ओर उड़ती नज़र से देखा और चुप हो गए। फिर उन्होंने आगे बात नहीं बढ़ायी।

श्रीमती जोजेफ भी घूमने-फिरने में काफी उत्साह दिखा रही थीं, लेकिन इतिहास का अध्ययन करने और आश्चर्यकारी चीज़ों को देखने के लिए वह इतनी तत्पर नहीं थीं कि उस मौत की सीढ़ी पर चढ़तीं। इसलिए वह पीटर और टिन्नी को लेकर नीचे ही रह गई थीं। जार्ज और कीर्ति आगे थे और मि० जोजेफ और शकुन्तला साथ-साथ ऊपर चढ़ रहे थे। मि० जोजेफ शकुन्तला के साथ इसलिए थे कि वह उसे अधिक पसंद करते थे और शायद इसलिए भी कि वह उनके मन के वास्तविक भाव को जानना चाहते

थे। स्वयं उनकी जिज्ञासा को इतनी तार्किकता के साथ शांत होती पाकर मि० जोज़ेफ को अपनी पुत्री की समझदारी पर बहुत आनंद हुआ और वह हंसकर कहने लगे, "हो भाई अगर ऊपर चढ़ने में मैं शायद ज़िन्दगी से इतना मायूस हो उठूं, उसे निस्सार और थोथा कहने लगूं, तो मैं ऊपर चढ़ने से इनकार करता हूं, क्योंकि जीने का उत्साह न हो तो जीने आना अपने वश की बात नहीं," और फिर सहसा बोले—"कीर्ति को आवाज़ देकर पीछे बुलाओ, देखो तो कैसी लड़की है! अभी तक इसका लड़कपन नहीं गया।"

शकुन्तला खिलखिलाकर हंसने लगी और बोली—"आप तो चाहते हैं कि दुनिया भी आप जैसी हो जाए। जो उतना ऊपर चढ़ सकता है, वह क्यों न चढ़े भला!"

फिर उन्हें वहीं रुकने के लिए कहती हुई वह ऊपर चढ़ने लगी। उसे लगा कि जैसे वह पृथ्वी से दूर हटकर निर्जन अंधकार में खो गई है—जहां मौत का सन्नाटा है और शून्य है। ऊपर चढ़ने का उत्साह हालांकि उसमें नहीं था, किन्तु पिता के समक्ष कही गई गर्वोक्ति का अहसास उसे था। लेकिन वह मानसिक विरक्ति ऊपर से कीर्ति और आर्य के आने से जैसे पैदा होने लगी थी, वैसे ही समाप्त हो गई।

लेकिन इस बीच मि० जोज़ेफ तो अपना पूरा कायाकल्प कर चुके थे। अकेले रहकर जब वे घबराने लगे तो प्रकाश की खोज में उन्होंने छिद्रों में से झांकना शुरू कर दिया। बाहर देखते-देखते सहसा उन्हें अनुभव हुआ कि उनका सिर घूम रहा है। सिर पर हाथ रखकर वह वहीं बैठ गए और बच्चों के ऊपर से लौटकर आने की प्रतीक्षा करने लगे। हालांकि उनकी हालत अधिक खराब नहीं हुई थी तो भी उस क्षणिक घबराहट ने उन्हें ऐसी अजीब दार्शनिक उलझन में फंसा दिया कि वे प्रायः खामोश हो गए। दोनों लड़कियां बहुत संभालकर उन्हें नीचे ले आईं। नीचे आकर मि० जोज़ेफ स्वयं भी अपनी कम-हिम्मती पर खिन्न-से होने लगे, पर उनके मन में जो एक नयी भाव-सत्ता उभरती आ रही थी उसे वे प्रयत्न करने पर भी छिपा नहीं पा रहे थे। वे सोच रहे थे—लड़की ठीक ही कहती है। दुनिया तो आदमी की नज़र से दीखने वाला एक मंज़र है। एक वह भी ज़माना था जब वे एक सांस में नागपुर के आसपास की किसी भी पहाड़ी की चोटी पर पहुंच सकते थे। बड़ा तालाब तैर कर पार कर सकते थे। ज़िंदगी में चारों तरफ खुशियों का सैलाब-सा उमड़ता दिखाई देता था, और आज वे उम्र

मीनार पर चढ़कर चकराने लगे। इसी तरह सोचते-सोचते वे बच्चों के साथ वापस लौटने लगे। टैक्सी में सबके बीच भिचकर बैठने के बाद भी वह जैसे अपने को किसी निर्जन स्थान में पड़ा हुआ समझ रहे थे। आसपास की कुतूहल-भरी दृश्यावली और तरह-तरह के लोगों की भीड़-भाड़ को देखते हुए भी उनकी दृष्टि शून्य हो जाती और वे सोचने लगते, "हमारे जीवन की संध्या है और जिनके जीवन का प्रभात हो रहा है वह उसे संध्या मानकर विवेकी कैसे बन जाएं?"

उनके मानस में शकुन्तला और दिवाकर को लेकर जो समस्या उठ खड़ी हुई थी, वह बाहर से सामयिक तौर पर दब जाने पर भी बहुत गंभीरता से उनकी आत्मा को आन्दोलित कर रही थी। वे आंख चुरा कर कभी-कभी शकुन्तला की ओर देख लेते थे। सबके साथ वह प्रसन्न थी, लेकिन उस प्रसन्नता के पीछे एक करुणा का सागर जैसे हिलोरें ले रहा था। मि० जोजेफ को लगा कि जैसे उस आत्मविश्वासी, स्वतंत्र बुद्धि और सम्वेदनशील लड़की की समानता में वह बहुत ही छोटे हैं और उसे परामर्श देने का हक उन्हें कतई नहीं है।

मोटर दौड़ रही थी। उतनी ही तेजी से मि०जोजेफ के विचार दौड़ रहे थे। वे सोचते थे, "कुतुबमीनार के ऊपर चढ़कर मैं इतना शीघ्र कैसे बदल गया।" ऐसा सोचते-सोचते वह अपने प्रति क्षुद्रभाव से इतने भरने लगे कि उस अभिभूत करने वाले भाव को मन से निकालने के लिए उन्होंने जोर से कहा, "हे प्रभु, तू ही सब कुछ है, तेरी कुदरत के सामने इंसान क्या है।"

मि० जोजेफ को बेवक्त प्रभु की प्रार्थना करते हुए देखकर सभी लोग इतने चकित हुए कि सहसा मि० जोजेफ के चेहरे की ओर देखने लगे। आशंका होने लगी थी कि कहीं उनकी तबीयत फिर तो खराब नहीं हो गई है?

कीर्ति ने उनसे पूछा, "पापा जी, तबियत तो ठीक है न?"

"हां, बेटा, तबियत तो ठीक ही है?" मि० जोजेफ ने कहा, "तुम्हे कुछ खराब नजर आती हो तो बात दूसरी है। अब तो जमाना ही बदल रहा है। कोई प्रभु को याद करे तो उससे पूछा जाता है, तबीयत तो ठीक है?"

संयोग था कि जब यह चर्चा चल रही थी, वह अस्पताल, जिसमें दिवाकर का इलाज हो रहा था, सामने आ गया। कीर्ति के मुंह से अनायास निकल गया, "इसी अस्पताल में मि० दिवाकर का इलाज हो रहा है।"

मि० जोजेफ ने सहसा कहा, "अच्छा, कैसा रहे अगर हम लोग भी उन्हें देखें। क्यों श्रीमती जी ?" उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा, "क्यों न टैक्सी को यहीं छोड़ दें ? लेकिन शायद मिलने जाने का तो कोई वक्त मुकर्रर होगा !"

"वक्त तो है, लेकिन आप तो किसी भी वक्त मिल सकते हैं। वहां की एक डाक्टर मेरी परिचित है। आप चलेंगे ?" कीर्ति ने कहा।

मिस्टर जोजेफ बोले तो नहीं क्योंकि उस प्रस्ताव को प्रस्तुत करते-करते उन्हें यह अनुभव होने लगा था कि वह कुछ ऐसा काम कर रहे हैं जो दुनियादारी के अनुकूल नहीं है। श्रीमती जोजेफ के चेहरे पर उनकी प्राकृतिक क्रोध की मुद्रा उभर आई थी। लेकिन इस खामोशी का लाभ उठाते हुए कीर्ति टैक्सी का द्वार खोलकर बाहर निकल आई। उसके उस गंभीर आचरण में इतनी निश्चयात्मकता थी कि किसी कारणवश उधर न जाने का भी निश्चय हो चुका होता तो भी वह टैक्सी में फिर पैर देने वाली न थी। लेकिन वैसा हुआ नहीं। धीरे-धीरे सभी लोग टैक्सी से उतर आये।

एक विचित्र स्थिति थी। कीर्ति के प्रत्येक आचरण से उत्साह टपक रहा था जबकि शकुन्तला न जाने कैसे बोझ से दबी जा रही थी !

कीर्ति के लिए भेंट की व्यवस्था करना मुश्किल नहीं हुआ। भेंट करने वालों के लिए प्रतीक्षा-भवन में मुश्किल से कुछ क्षण ही बैठे होंगे कि कीर्ति एक हंसमुख लेडी डाक्टर के साथ आई और अपने परिवार से परिचय कराती हुई बोली "ये मेरी बहिन शकुन्तला !"

डाक्टर कुछ इस प्रकार रहस्यमयी मुस्कान से उसकी तरफ देखने लगी कि जैसे वह उसके दिल के तार-तार को अच्छी तरह पहचानती हो। शकुन्तला का चेहरा उतर गया और जब सब लोग डिवाकर के कमरे की ओर चलने लगे तो शकुन्तला सबके पीछे भारी-भारी कदमों से जैसे लड़खड़ाती थी।

कीर्ति ने कहा, "आप लोग जरा ठहरें, मैं देखती हूं सोये तो नहीं हैं।"

लेडी डाक्टर ने कहा, "सोये नहीं हैं, उन्हें मालूम है कि आप लोग मिलने आ रहे हैं।"

ऊहापोह और खानपीन वाले वक्त का लाभ उठाकर मि० जोजेफ सबसे आगे बढ़ आये। जिस समय वह अंदर पहुंचे आर्ज और दोनों बच्चे उनके आसपास पहुंच चुके थे। लेडी डाक्टर ने विशेष व्यवस्था करके कुछ कुर्सियां

से संतुष्ट थी हालांकि उसकी इच्छा यह थी कि आज की बात का विषय अगर सिद्धांतवादी न होकर कुछ व्यक्तिगत ही रहता तो शायद मंज़िल के अधिक नज़दीक आने की सम्भावना हो सकती थी परंतु बात के सिलसिले को बीच में काटकर नई बात को शुरू करना आसान काम नहीं था। कीर्ति देख रही थी कि दिवाकर के अनाक्रामक तर्क से उसके पिता और माता दोनों प्राय: सद्भावनापूर्वक परास्त होकर रह गये हैं और वह निश्चय ही ऐसी बात प्रारंभ कर सकती थी कि सिद्धान्त से हटकर बात व्यक्तिगत बन जाये। अपने पिता के मिशनरी ढंग के तर्कों से वह भली भांति परिचित थी। उसने अवसर देखकर कहा, "मिस्टर दिवाकर, आदमी की मान्यताएं ही नहीं बदलतीं, मेरा विचार है, परिस्थितियों के अनुकूल उसके उसूल भी बदलते हैं।"

"बदलते हैं, इससे मैं इंकार नहीं करता, लेकिन परिस्थिति के अनुसार क्या बदलना चाहिए और क्या नहीं, खास तौर से सिद्धांतों को बदलना चाहिए या नहीं, यह मामला पेचीदा है और इसपर बातचीत करना इस वक्त कम से कम मेरे बूते की बात नहीं है। कोई और बात कहिए जिसमें सभी की दिलचस्पी हो। कश्मीर से मिस्टर कुमार का कोई समाचार आया? आप कश्मीर जा रही थीं, उसका क्या हुआ?"

"मैंने उन्हें लिखा है कि वे अगर इधर आ जायें तो हम लोग भी साथ चले जाएंगे वरना मुश्किल है।"

मिस्टर जोज़ेफ के मस्तिष्क में जो दार्शनिक विचार-धारा उठ खड़ी हुई थी, वह अब प्राय: लुप्त हो गई थी। शायद उनके मन में दिवाकर की पात्रता की परीक्षा करना ही अभीष्ट था, और हालांकि उसकी पात्रता में उन्हें संदेह नहीं था, परंतु यहां आकर उन्हें यह मालूम हुआ कि जैसे आने का अभिप्राय बहुत जल्दी समाप्त हो गया। अब वह चुपचाप कमरे की हर-एक चीज़ को गौर से देख रहे थे। शकुन्तला जो बातचीत के दौर में कभी अपने पिता की ओर और कभी दिवाकर की ओर देख रही थी, उस खामोशी से घबरा उठी। दिवाकर से बिलकुल ही बोल नहीं सकी। उसकी निगाहें भी प्राय: उस ओर आ नहीं पाती थीं; क्योंकि श्रीमती जोज़ेफ कभी दिवाकर और कभी शकुन्तला की ओर देखने के सिवा कुछ भी कर ही नहीं रही थीं। उसने चुपके से टिन्नी के कान में कहा कि वह ममी से कहे कि अब घर चलें।

टिन्नी के सुझाव ने उस खामोशी के प्रयोजन को सार्थक कर दिया। मि०

जोज़ेफ़ उठने लगे और दिवाकर से मिलकर गुम होने के शिष्टाचार को निभाते हुए बोले, "अच्छा अब हम लोग चलते हैं। फिर अवसर हुआ तो भेंट होगी।"

आते समय शकुन्तला सबसे पीछे थी और जाते समय उसे सबसे आगे होना पड़ा। माँ-बाप की उपस्थिति में दिवाकर से बातचीत का साहस वह बटोर ही न सकी। लेकिन कीर्ति को उतने-भर शिष्टाचार से संतोष नहीं था। उठने से पहले उसने अपना पर्स दिवाकर के सिरहाने छोड़ दिया था और अब वह उसे लेने के बहाने फिर आ गई थी।

दिवाकर ने बेसाख्ता कहा, "मुझे मालूम था कि आज शकुन्तला नहीं आएगी, लेकिन आप ज़रूर आएँगी।"

"ऐसा विश्वास आपको क्यों हुआ। नहीं होना चाहिए था। मेरे आने को आप शकुन्तला का ही आना समझिए। जब कभी वह नहीं आ सकेगी, हमेशा मुझे ही आना होगा। बहिन मुझे उतनी ही प्यारी है जितनी अपनी ज़िंदगी। अच्छा, अब जल्दी से स्वस्थ हो जाइए।"

कीर्ति ने जो कुछ कहा, वह इतना तुला हुआ था कि दिवाकर के भीतर में जो कुछ कहा-अनकहा था, वह जैसे दीवार पर लगे पोस्टर की तरह बोल उठा। उसका दिमाग़ एक क्षण-भर के लिए सन्ना गया और जाते समय वह औपचारिक अभिवादन की रस्म भी न निभा सका।

नर्स तब तक पट्टियाँ बदलने की तैयारियाँ कर चुकी थी। घाव भरते आ रहे थे और पट्टियाँ अब चिपकती भी नहीं थीं, लेकिन दिवाकर के मुँह से आह निकल गई थी, जिसे सुनकर नर्स आश्चर्यचकित-सी उसके मुँह की ओर देखती रह गई।

दिवाकर से मिलकर मि० जोज़ेफ जब घर लौटे तो जैसे उनके जीवन का समस्त सत्त्व समाप्त हो चुका था। श्रीमती जोज़ेफ ने उनके इस परिवर्तन को देखकर भी अनदेखा कर दिया और कीर्ति से बातें करती रहीं। उनके हर अंदाज़ से यही भाव टपकता था कि जो कुछ वह अभी देखकर आई हैं, वह जैसे उस दुर्भाग्य का प्रतीक है, जो उनके घर के सुख को लीलने वाला है। मि० जोजेफ को सुनाते हुए उन्होंने ऊंचे स्वर में कीर्ति से कहना आरंभ कर दिया था, "हां, लड़का तो ठीक ही है, पर उसकी ज़िंदगी का ठिकाना क्या है ! अगर इसी झगड़े में एक घाव और गहरा लग गया होता, तो भगवान जाने क्या होता ! कौन कह सकता है कि बस यह आखिरी झगड़ा है। पर तुम लोगों ने सब कुछ सोच-समझ लिया है, मेरी तो अक्ल पर पर्दा पड़ ही गया है ?"

"ममी, फौजदारी करना उनका काम नहीं है। जब सिर पर आ पड़े तो क्या आदमी पीठ दिखाकर भाग खड़ा हो ?" कीर्ति ने कहा।

मि० जोज़ेफ की मानसिक पीड़ा में थोड़ा और इज़ाफा हो गया और शकुन्तला के आंसुओं की धार थोड़ी और गहरी हो गई।

श्रीमती जोज़ेफ शाम तक इसी तरह किसी न किसी बहाने दिवाकर की चर्चा करती रहीं। उन्हें होश आया जब शाम के खाने के समय मि० जोज़ेफ खाने की मेज पर नहीं आ सके। मि० जोज़ेफ पलंग पर लेटे हुए थे और खिड़की के बाहर लहराती हुई मौलसिरी की पुष्पहीन शाखा पर उनकी टकटकी बंधी हुई थी। श्रीमती जोज़ेफ व्यग्रतापूर्वक बोलीं, "क्यों, तबीयत कैसी है, कल तो चलने की बात थी और अब तबीयत खराब करके बैठे रहोगे क्या ?"

"कभी-कभी बिना चाहे भी तबीयत खराब हो जाती है, ऐसा यकीन भी करना चाहिए !" मि० जोजेफ आगे नहीं बोले। बोल ही नहीं सके। उनके चेहरे का रंग फीका पड़ गया था। खाने में सभी की दिलचस्पी खत्म हो गई। रात गहरी हो गई, मि० जोजेफ की हालत गंभीर होती गई और जब

डाक्टर बुलाया गया, तो श्रीमती जोजेफ को पहली बार पता चला कि स्थिति की जिस विषमता पर वे दिन-भर अपने कठोर व्यंग्य वाक्यों द्वारा प्रकाश डालती रही हैं उसने मि० जोजेफ को तोड़कर रख दिया है और अब वे डाक्टर के परामर्श के बिना उन्हें अगले दिन तो क्या, कई दिन तक नागपुर न ले जा सकेंगी।

कीर्ति अत्यन्त धैर्यपूर्वक परिचर्या में जुटी थी, लेकिन गुमसुम अनुत्तरता बने कामों को भी बिगाड़ती जा रही थी। मन ही मन वह निश्चय करती जाती थी कि पापा के ठीक होने पर नागपुर चली जाएगी और फिर उनके सामने वैसी स्थिति कभी नहीं आने देगी, चाहे जिस तरह भी हो। लेकिन किस तरह यह सब होगा, उसकी समझ में नहीं आता था।

इसी अस्तव्यस्त अवस्था में चार दिन निकल गए। नीना ने शाम को आकर सूचना दी कि दिवाकर अस्पताल से छुट्टी पर आ गए हैं लेकिन उन की जमानत मंजूर नहीं हो सकी है। नजरबंद हैं, उन पर मुकदमा चलेगा। तब तक शायद दिल्ली ही रखा जाएगा।

कीर्ति ने पूछा, "उनके साथियों का क्या रवैया है, हड़ताल खत्म हो गई?"

"सिर्फ हड़ताल ही नहीं खत्म हो गई है, साथियों ने यहां तक कहना शुरू कर दिया है कि उस हड़ताल से मजदूर तहरीक की रीढ़ ही टूट गई है। आज की बैठक में दिवाकर के चुने हुए विरोधियों को ही बुलाया गया है। क्या निर्णय हुआ, यह पता नहीं, लेकिन कामरेड विश्वनाथन के चेहरे से पता चलता है कि निर्णय हड़ताल के पक्ष में नहीं हुआ। वैसे बेगम सेन भी बैठक में नहीं आयी, लेकिन वे नहीं चाहेंगी कि दिवाकर अब पार्टी के मंत्री रहें।"

"न रहें मंत्री, फिर क्या हुआ? वे जिसे चाहें मंत्री बना लें। लेकिन उन गरीब मजदूरों का क्या होगा जिनके हाथ-पैर टूट गए हैं और जिनके पास एक वक्त के लिए भी खाने के लिए नहीं है। क्या आपकी पार्टी उनके लिए कुछ नहीं करेगी?" कीर्ति ने व्यग्रतापूर्वक पूछा, हालांकि उस व्यग्रता में भी गहरा आक्रोश का भाव छिपा हुआ था।

"क्या कह सकती हूं, पिछले अनेक वर्षों में ऐसी उथल-पुथल देख चुकी हूं, पर अब तक सब कुछ समझती रही, अबकी बार मुझे भी कुछ सूझता नहीं है। मैं दिवाकर भाई के छूटकर आने की प्रतीक्षा कर रही हूं।"

"यह भी हो सकता है कि वे छूटें ही नहीं, उनपर मुकदमा चलाया ही?

न जाए।" कीर्ति अब जैसे हताश होती जा रही थी।

"यह राजनीति है, कीर्ति बहिन ! अगर पार्टी इतना बड़ा आंदोलन खड़ा कर दे कि सरकार को न छोड़ने की अपेक्षा उन्हें छोड़ने में ही अपना हित दिखाई देने लगे, तो मुकदमा चलाना तो दूर, उन्हें बिना शर्त भी छोड़ सकती है !"

शकुन्तला ने नीना और कीर्ति की फुसफुसाहट को सुना था। और सुनते-सुनते वह मानसिक संघर्ष की उस स्थिति में पहुंच गई थी कि उसके कानों ने सुनना बन्द कर दिया था। दिवाकर की नजरबंदी का अनिश्चित समय और माता-पिता की मानसिक स्थिति का सुनिश्चित रूप जानकर उसका साहस अंदर ही अंदर जवाब दे रहा था। हथेलियों पर इतना पसीना आ रहा था कि साड़ी का अंचल जब गीला होने को आया, तो वह अपने कमरे में उठकर चली गई।

नीना उसकी व्यथा समझ सकती थी। शकुन्तला के साथ ही अंदर चली आई, बोली, "यह तुम्हारे और मेरे धैर्य की परीक्षा है शकुन्तला बहिन !"

शकुन्तला उत्तर नहीं दे सकी। यह कैसी परीक्षा है भगवान ! न उसका आदि है और न उसका कहीं अंत दिखाई देता है ! इतनी सीमाओं में घिरे रहकर परीक्षा में वह क्या सफल हो सकेगी ?

काफी देर तक उसी कमरे में बैठकर नीना उसका सिर सहलाती रही, जहां शकुन्तला ने दिवाकर को संकल्प और वचन से पति रूप में स्वीकार किया था। दिवाकर कल तक उसके लिए भावना और विचार की अव्यक्त प्रतिमा था और अब वह प्रतिमा भी उसके सामने न रह सकेगी। नीना की गोद में सिसकते हुए वह बोली, "अब क्या होगा बहिन ?"

इस प्रश्न का उत्तर नीना नहीं दे सकती थी। उसकी जबान पर ताला पड़ गया था। उसका मन अंदर ही अंदर विद्रोह से भर उठा था और वह कहना चाहती थी कि अब होना यह चाहिए कि दिवाकर को समझा दिया जाए कि ऐसे दल से अपने को मुक्त कर ले, जो सफलता को श्रेय नहीं दे सकता और असफलताओं को क्षमा नहीं कर सकता। लेकिन बात मुंह से नहीं निकली। आंसू बनकर वह निकली।

नीना की कलात्मक और हंसोड़ प्रकृति ने उसे इतना धैर्य दिया था कि वह परिस्थिति की विषमता के प्रति सजग हो सकती थी। शकुन्तला को सांत्वना देती हुई वह बोली, "मेरी राय यही है बहिन, कि तुम सबके साथ

...पुर लौट आओ और मेरे पत्र की प्रतीक्षा करो।"
नीना चली गई। उसके साथ आंसुओं से भरी दुनिया भी चली गई। ...पुर जाने से पहले वह दिवाकर से मिलना चाहती थी, लेकिन मिलना ...मान नहीं था।

एक सप्ताह गुजर गया। इस बीच नीना दो-तीन बार आई। हर एक भेंट ...में उसके चेहरे पर निराशा गहनतर होती जाती थी, लेकिन अब वह न पार्टी ...के बारे में बातें करती थी और न दिवाकर के बारे में। मि० जोजेफ का ...स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा सुधर चुका था और श्रीमती जोजेफ अब नागपुर ...लौटने की तैयारियां पूरी कर चुकी थीं। शकुन्तला के सामने केवल एक ही ...विकल्प था कि वह कीर्ति के साथ कश्मीर जाने के बहाने दिल्ली रुक जाए, लेकिन यह बात कहने का साहस न शकुन्तला में था और न कीर्ति में। पिता की बीमारी ने उनके साहस को सोख लिया था। उस वातावरण में प्रेम और प्रणय की चर्चा करना भी व्यभिचार के समान घृणास्पद प्रतीत होता था।

जाने का समय भी आज निश्चित हो गया। कीर्ति ने नागपुर के ४ टिकट श्रीमती जोजेफ के हाथ में पकड़ाते हुए यह भी कह दिया कि वह भी कश्मीर जाने की तैयारियां करना चाहती है। सभी के मन में परिस्थिति की अपरिहार्यता जबरन बैठ गई थी। जैसे नीना, कीर्ति और उनके साथ शकुन्तला के अन्तःकरण में एक साथ ही इस सन्देह का उदय हुआ हो कि दिवाकर जल्दी नहीं छूटेगा और इस अन्तरिम काल को बिताने के लिए सभी को कमर कस लेनी चाहिए।

पुरानी दिल्ली के स्टेशन पर पहुंचने पर नीना को देखते ही शकुन्तल... का मन बिखर गया। मि० जोजेफ ने कई बार अपनी प्यारी बेटी के मनो... भावों को पढ़ने की चेष्टा की थी, पर जब भी वे उसके चेहरे की ओर देख... वह मुस्कराकर ही उनकी मूक जिज्ञासा का उत्तर देती और मि० जोजे... और गंभीर हो जाते। शायद वे मन ही मन यह चाहते थे कि उनकी बेटी उ... सामने अपने दिल की हर बात खोलकर रख दे। उनके स्वास्थ्य की कामन... प्रेरित होकर उसने अभी तक जो कुछ किया था मि० जोजेफ उसके लिए ... बेटी के प्रति कृतज्ञता का अनुभव कर रहे थे क्योंकि वे जानते थे कि शकु... ने चुपचाप अपनी परिस्थितियों से समझौता न किया होता तो श्रीमती ...

उस घर में शांति से नहीं रहने देतीं और वे कभी भी अच्छे नहीं हो सकते थे। लेकिन नीना को देखते ही शकुन्तला की आंखें भीग गई थीं और उसके साथ ही मि० जोज़ेफ का गला भर्रा गया था। वेटिंग रूम की घमासान भीड़ और चीख-पुकार में सभी कुछ खो-सा गया था लेकिन मि० जोज़ेफ ने इतने ऊंचे स्वर में प्रभु का स्मरण किया कि सभी का ध्यान उधर आकर्षित हो उठा। शकुन्तला ने चटपट अपनी आंखें पोंछ लीं और कीर्ति बच्चों का हाथ पकड़े कमरे से बाहर निकल गई।

नीना से निरंतर पत्र लिखते रहने का वचन शकुन्तला ने ले लिया था और अपना पता उसकी डायरी में बार-बार संभालकर इसलिए लिखा था कि कहीं अक्षरों के साफ न पढ़े जाने पर पत्र उस तक पहुंच ही न सके और चुपचाप उससे यह वचन भी ले लिया था कि जब तक दिवाकर के बारे में अंतिम निर्णय न हो जाए, वह कीर्ति को कश्मीर जाने से बराबर रोकती रहे और इन आश्वासनों को लेकर वह नागपुर के लिए विदा हो गई।

आज की रेल-यात्रा उतनी स्वच्छंद नहीं थी। आज तो खिड़की से बाहर निरन्तर बदलती हुई प्राकृतिक दृश्यावली के साथ अपनी भावनाओं के तादात्म्य की सुविधा भी नहीं थी। श्रीमती जोजेफ की आँखें निरन्तर पहरा दे रही थीं और नई परिस्थितियों का भारीपन स्याहीसोख की तरह सभी विचारों और भावों को चट करता जा रहा था।

नागपुर पहुँचकर भी उसकी मनोदशा बदली नहीं। खाना-पीना और सोना सब कुछ यंत्र के समान चलता जा रहा था। कई सप्ताह तक बंद पड़ा हुआ घर साफ हो गया था, लेकिन शकुन्तला को वह अब भी उतना ही मैला-गंदा अनुभव होता था। उसके सितार पर धूल जम गई थी और पूरी तन्मयता के साथ सफाई करने पर भी वह साफ नहीं होती थी। इस समस्त व्यापार से घिरी हुई भी वह दिल्ली से आने वाले पत्रों की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रही थी। आज ही कीर्ति का पत्र आया था, लेकिन वह मि० जोजेफ के नाम था और शकुन्तला का उसमें उतना ही जिक्र था जितना आवश्यक था। हां, यह जरूर लिखा था कि बच्चे शकुन आंटी को रात-दिन याद करते हैं। कीर्ति ने उसे अलग से पत्र लिखना मुनासिब नहीं समझा—यह आश्चर्य शकुन्तला के धैर्य की सीमा से बाहर होता जा रहा था।

एक सप्ताह और निकल गया और न कीर्ति का पत्र आया और न नीना का तो उसने डाकिये पर निगाह रखनी शुरू कर दी; लेकिन मां डाकिये के आने के समय इस तरह दरवाजा रोक कर बैठती कि चोरी करना असंभव था। उसने मां से पूछा, "कीर्ति जीजी और नीना ने उसे पत्र लिखने को कहा था, न मालूम क्यों नहीं लिखा!"

मां ने झुंझलाकर कहा, "क्या खास बात है कि कीर्ति तुम्हें अलग से पत्र लिखती। दो चिट्ठी तो उसकी आ ही चुकी हैं। बच्चे ठीक हैं, फिर तुम्हें अलग से पत्र क्यों लिखती? उसके अपने घर में काम नहीं है क्या?"

"ठीक है मां, मैं यूं ही पूछती थी। नीना ने भी नहीं लिखा?"

"अरे ये लड़कियां जो फर्र-फर्र करके उड़ा करती हैं, इनकी दोस्ती में

कोई दम नहीं होता बेटी ! ये मुंहदेखी बातें करती हैं। तू बेकार परेशान होती है। पढ़ने-लिखने में मन लगा, अब तो कालिज खुलने वाला है। तुझे तै करना है कि एम० ए० में दाखिला कराएगी या कुछ और सोचेगी। जबलपुर वालों की चिट्ठी फिर आई थी। तेरे पापा चिट्ठियां साथ ले गये थे, लेकिन दिल्ली जाकर इस तरह फंसे कि वे तुझसे बातें ही नहीं कर सके।"

मां से उसे किसी भी तरह की उम्मीद छोड़ देनी चाहिए—यह निश्चय करते ही शकुन्तला के मन में आया कि आज से वह रोजाना पोस्ट आफिस जाकर अपने पुराने डाकिये से पत्र लेकर आएगी। और तब निर्णय करेगी कि उसके दो-दो पत्रों का उत्तर नीना और कीर्ति जीजी किस तरह पचाकर बैठ गई हैं।

बूढ़ा डाकिया हमेशा से शकुन्तला को घर में सब से ज्यादा पसंद करता रहा है। डाकघर में उसे आया देखकर वह बड़े तपाक से बोला, "घर में सब ठीक तो है बेटी, कल तक तुम्हारा भाई पत्रों के लिए आता रहा, और आज तुम ही चलकर आ गई हो !"

"ठीक तो है शुक्ल काका ! दिल्ली में हमारी बहन के बच्चों की तबीयत खराब थी। अब ठीक है, लेकिन बहिन अकेली है। बराबर चिंता बनी रहती है ! क्या जार्ज मेरी चिट्ठियां भी ले गया था ?"

"हां, हां, ले तो गया था। तुम्हारा पूरा नाम तो मैं जानता नहीं बिटिया, घर पर तो तुम्हें किसी और नाम से पुकारते हैं न ?"

"हां, और ही नाम से पुकारते हैं। चिट्ठी पर मेरा नाम मिस शकुन्तला जोजेफ आता है। क्या तुम्हें याद है, उस तरह का नाम किसी पर था ?"

"अरे नाम कहां तक याद रखें बिटिया, हज़ारों नाम हैं, पर चिट्ठियां तुम्हारा भाई ले गया है ! आज होतीं तो तुमको ही दे देते। हमें, उसमें क्या है ?"

शकुन्तला के लिए अब संदेह करने की गुंजाइश नहीं थी कि चिट्ठी अब तक चाहे न भी आई हो, लेकिन जार्ज के यहां से पत्र ले जाने का मतलब साफ है कि मां दिल्ली से आई चिट्ठियां उसे नहीं मिलने देंगी। घर लौटकर उसने किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं किया। जिन चीज़ों को वह शांति से सुलझा सकती थी, उन्हें आज तक उसने इसी प्रकार शांत होकर सहन किया है। वह चाहती तो जार्ज से पूछ सकती थी, लेकिन यह जानने पर मां क्या और नई मुसीबत खड़ी कर देंगी—इसका अनुमान करना भी मुश्किल नहीं

था। उसने कीर्ति और नीना को पत्र लिख दिया कि वे बेटी के पते पर पत्र लिखें।

बेटी का पता तो उसने लिख दिया, लेकिन बेटी अपने घर में होगी भी या नहीं, यह तो निश्चय कर लेना था। डाकखाने से वह सीधी बेटी के घर की ओर चल दी। बेटी से अपनी पिछली भेंट का रोमांचकारी चित्र जैसे उसकी आंखों में घूम गया। अनेक विकल्प उसके मस्तिष्क में तैरने लगे। बेटी अब ठीक हो गई होगी। वह गाती है, नाचती है, प्रभु की दी हुई कंचन जैसी देह है, वह सफाई का जीवन व्यतीत कर सकती है, कर रही होगी और अगर न कर रही हो तो! छि:, वह उसे अपने साथ दिल्ली ले जायेगी, उसे नीना से मिलाएगी। चाहे नीना भी क्या सहती है! उससे मिलकर बेटी का आत्मविश्वास बढ़ेगा, वह कुंठाओं से लड़कर जीतना सीखेगी और शैतान की तरह पतनोन्मुख जीवन-दर्शन के पाश से मुक्त हो जाएगी!

तांगा तेज दौड़ रहा था। सड़क गड्ढों से भरी थी, फिर भी कोचवान सावधानी से चला रहा था, लेकिन एक गड्ढे में पहिया पड़कर इस कदर उछला कि सवारियां अपनी सीटों से एक फुट ऊंची उछल गईं। सामान्यतः अनुराधा को इस प्रकार की उछल-कूद में आनंद ही आता है, लेकिन आज यह क्या हो गया!

उल्टियां आना चाहती हैं। मामूली-सी उछाल से उसकी यह हालत हो जाएगी, क्या वह इतनी बदल गई है! लेकिन कलेजा मुंह को आ रहा है, उल्टी किए बिना तो चलेगा नहीं। इस प्रकार चलते तांगे में घिनौना दृश्य उपस्थित करके वह बाकी सवारियों और सड़क पर चलने वालों के उपहास की पात्रा बनना नहीं चाहती! उसने तांगा रुकवा दिया और उतरना चाहने लगी! पीछे की सीट पर एक महाराष्ट्री वृद्धा बैठी थी, "यहां सड़क पर क्यों उतरती हो बेटी, तुम्हें सीधे डाक्टर के पास जाना चाहिए!"

"जी हां, दुनिया, अंदर से जी मचल रहा है कि भयानक उल्टी होगी, लेकिन वैसी बात नहीं निकली, मेरी तबीयत कुछ दिन से ठीक नहीं है!"

उसकी वाणी जब शिष्टाचार निभाती है, तो जैसे अपने अस्तित्व की पूरी कैफियत ही वह देती है और सुनने वाले इस प्रकार मुग्ध हो जाते हैं कि उन्हें इतना भी भान नहीं रहता कि उनका भी अपना अस्तित्व है, जिसे देर-सबेर उन्हें फिर से ढोना है। बुढ़िया की जबान बड़ी साफ थी। ऐसी जबानें एक नसीहत की ज़रूरत हो तो, कम से कम दस नसीहतें अनायास दे जातीं

हैं, लेकिन बुढ़िया जैसे उसकी मीठी बोली को सुनकर ठगी-सी रह गई। बोलना ही भूल गई।

स्नेह की ऊष्मा अजनबी को भी अपना बना देती है। शकुन्तला ने पीछे कनखियों से देखा, तो बुढ़िया अपलक उसकी ओर ताक रही थी। अबतो उसने पूरी तरह पीछे देखना ही उचित समझा, नहीं तो उसकी निगाह जैसे उसकी गर्दन के पार हो जाएगी।

प्यासी आंखों वाली बुढ़िया धन्य हो गई। उसके हाथ उनकी वेणी से खेलने लगे। बोली, "तुम्हारी सास साथ नहीं रहतीं क्या? ऐसी हालत में तुम्हें घूमने-फिरने देती हैं?"

शकुन्तला को काठ मार गया।

"हां, यहां से सीधे डाक्टरनी के यहां जाना औरजो कुछ वह बताए, उस पर अमल करना। देखो, न टिकुली, न बिंदी, न सिंदूर! तुम हिन्दू नहीं हो क्या?"

"नहीं मां जी, हम हिन्दू नहीं हैं?"

हिन्दू होती तो आज उसकी जान ही निकल गई होती! यह बुढ़िया मां क्या कह रही है, क्या कह रही है, यह बुढ़िया मां! हे प्रभु, उसकी आंखों में यह कैसा प्यार छलका पड़ता है। यह मुझे चक्कर-सा क्यों आने लगा है? मैं क्यों नहीं कह देती कि मेरी तो अभी तक शादी भी नहीं हुई है, बूढ़ी मां के संदेह व्यर्थ हैं! मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, स्वास्थ्य से अधिक मन ठीक नहीं है।

वह तांगे से उतरकर दो कदम भी नहीं चल सकी। पास में बिजली के खम्भे का सहारा लेकर उसने अपने सिर में बढ़ती हुई घुमेरको संभाल लिया और बेटी के घर में जाने से पहले ही वह पास में संयोग से दीख पड़ने वाली लेडी डाक्टर के दवाखाने में चली गई।

कैसी-कैसी रोगिणियां वहां प्रतीक्षा कर रही थीं। शकुन्तला की नजरें नीची होती जा रही थीं। अंदर से उबकियां उभरती आती थीं, लेकिन वह अपनी सम्पूर्ण इच्छाशक्ति से उन्हें रोक रही थी। लेडी डाक्टर अंदर से एक रोगिणी को देखकर निकलीं कि उबकियां रोकना उसकी शक्ति से परे हो गया और डाक्टर ने उसकी हालत पर रहम खाकर उसे तत्काल अंदर भी बुला लिया।

किस तरह उसका दिल धक्-धक् कर रहा था! तांगे वाली बुढ़िया

उसकी आँखों में तैरने लगी थी। बस यही अच्छा था कि वह मोहल्ला दूर सा है और बात के बढ़ने से पहले ही वह वहाँ से भाग सकती है।

देखते-देखते, भारी-भरकम डाक्टरनी के चेहरे पर मुस्कान फैल गई। बोली, "आपके पति क्या करते हैं, क्या यह आपका पहला कन्सेप्शन है?"

"हाँ, डाक्टर पहला ही है। है भी या नहीं, मैं इस रहस्य को भी समझ नहीं सकी। मेहरबानी करके इन उल्टियों का कुछ करिए। मेरी तो जान ही निकल जाएगी।"

"नहीं-नहीं, जान किसीकी नहीं निकलती है। हम दवाई देंगे। कम हो जाएंगी लेकिन आपको सावधानी रखनी चाहिए। इस तरह उछल-कूद नहीं करनी चाहिए। इस तरह आप धूप में भटक रही हैं? क्या आप अपने पति के साथ अकेली रहती हैं? उन्हें यहाँ लाना, हम कहेंगे, उन्हें आपकी बहुत देखभाल करनी चाहिए। सच ए स्वीट वाइफ!"

मधुलता के मन में अब कोई घबराहट नहीं थी। उसने अपरिहार्य को स्वीकार कर लिया था। इतनी ही देर में जैसे एक युग बदल गया है, जैसे एक बड़ी क्रांति हो गई है। जैसे वह किसी सुरक्षित किले में पहुँच गई है और अब अपनी सुरक्षा के लिए वह किसीका सहारा नहीं लेगी। अब वह अन्दर ही अन्दर मुस्करा रही है और डाक्टरनी के प्रश्नों का उत्तर दे रही है मेरे पति एक राजनीतिक नेता हैं, बहुत बड़े नेता हैं! हाँ, डाक्टर, कितनी जल्दी ये बच्चे-कच्चों का पचड़ा सिर पर आ जाता है! वे तो कुछ ख्याल ही नहीं करते। करें भी बेचारे कहाँ तक! सारी दुनिया का दर्द अपने सीने में सहेजे फिरते हैं। ऐसे लोगों को शादी ही नहीं करनी चाहिए, क्यों है न डाक्टर!

और अपनी कल्पना में वह डाक्टर के चेहरे पर लिखा समर्थन देख रही है। हाय, वह उस देवी से यह तो पूछना ही भूल गई कि उनके कितने बच्चे हैं! लेकिन उससे पहले तो यह जानना जरूरी था कि उनका विवाह हुआ कि नहीं!

कैसा अजीब यह विवाह हुआ। पर न जाने वे नन्हे-मुन्ने कब सुन्दर होंगे। कब वह उन्हें उस बूढ़ी अम्मा और इस डाक्टर की मधुर [illegible] की कहानियाँ चाव चाव लगाकर सुना सकेगी! ठंडे-ठंडे झोंके दुलरा रही है। अब फिर दुनिया वीरान नजर आने लगी है। अब फिर दिवाकर के लिए उसका मन छटपटाने लगा है। पाप और [illegible] हो गए हैं, किसी के कंधे का सहारा लेने के लिए जो छटपटा रहा है

ग्रेटी का घर आ गया है। घर की हालत सुधरी-सी लगती है। गमलों में पौधे फूल रहे हैं, खिल रहे हैं। झाड़ काफी-ऊंचे से लगते हैं। उनके पीछे बेंत की कुरसी पर क्या श्रीमती विलियम उसी तरह विस्फारित नेत्र बैठी होंगी ?

लेकिन श्रीमती विलियम वहां नहीं थीं। उनकी बेंत की ध्वस्तप्राय कुर्सी के स्थान पर चार आधुनिक खूबसूरत कुर्सियां पड़ी थीं। मेज पर खूबसूरत पर्दा लहरा रहा था, खिड़कियों पर आधे पर्दे करीने से लगे थे। सब कुछ खुशगवार थे, खुशहाली के सूचक थे।

न जाने ग्रेटी ने उसे कहां से देखा और किधर से वह उसके पीछे आई और जब उसने शकुन्तला की आंखें ही बंद कर लीं, तब उसे पता चला कि ग्रेटी है।

"बताओ कौन है ?"

वही आह्लादमय कंठ, वैसी ही मुलायम हथेलियां और वैसा ही स्नेहसिक्त आलिंगन। दोनों सहेलियां आमने-सामने आ गईं। ग्रेटी चीखी, "ओह, शिक्की, तुम तो चार महीने में ही पूरी औरत हो गई हो। कैसे हैं तुम्हारे वे ?"

"अच्छे हैं, तुम कैसी रही। मालूम पड़ता है लाटरी तुम्हारे नाम आ गई है।"

"हां, हां, लाटरी ही समझनी चाहिए। वह तुम्हारा प्रेमी धर्मप्रचारक मेरे नाम अच्छी-खासी पूंजी बैंक में जमा करके अमरीका लौट गया।"

"ओह, अच्छा हुआ। तुमसे कैसे बचकर जा सकता था। अब तुमने कोई कलात्मक विद्यालय खोला कि नहीं ? प्रिय, इससे उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी।"

"छोड़ो भी उसकी शान्ति को शिक्की। अपनी बोलो, कैसे मिले, क्या-क्या हुआ, कितना अच्छा आदमी है ? बहुत अच्छी तरह प्रेम करता है न ? जरूर करता होगा ! वे चुपचाप रहने वाले लोग अकेले में बड़े रंगीन हो जाते हैं, क्यों है न !"

"जी हां, अकेले में ही और सार्वजनिक स्थानों पर भी। पीछे एक हड़ताल का आयोजन किया था, वहां सारा सिर रंगीन करके अस्पताल में भर्ती हो गए और अब नजरबन्द कर लिए गए हैं। बहुत अच्छी तरह से प्रेम करते हैं !"

"क्या गुस्ताखे-बदतमीज़ी है। अगर ज्यादा चोट आ जाती, तो ! मेरी गरीब शिवरी, तुमने भी क्या अजीब आदमी चुना। अब न जाने कब छूटेगा। और यह तुम्हारी ममी। यह तुम्हें जीने देती है!"

"न भी जीने देगी तो भी जीना तो पड़ेगा। कुछ भी कहो बेटी, उन लोगों के बीच में जाकर मैंने अच्छा मर्म समझा। जिस तरह लोग बरस के बरस उम्र की उम्र अपने स्वप्नों और आदर्शों के लिए समर्पित कर देते हैं! और एक हम लोग हैं जो छोटी-छोटी कुंठाओं को सिर का बोझ बना लेते हैं!"

"तुम आज भी बदली नहीं हो शिवरी! मैं तुम्हारे इसी रूप को प्यार करती हूं। न जाने कहां जाकर छिप गई थीं। तुम्हें एक चिट्ठी लिखने का ध्यान भी नहीं आया।"

अब दोनों सहेलियां जैसे विमान से उतरकर ठेठ धरातल पर बैठ गई थीं। और शकुन्तला देख सकती थी कि बेटी अन्दर से थोड़ी थोड़ी हो गई है। उसकी आंखों के नीचे कालिमा उतर आई है और अब वह स्वाभाविक आह्लादयुक्त स्वस्थ बच्ची अभी नहीं है, अब वह भी एक औरत हो गई है। वह बेटी के शिशु सदृश जिज्ञासु चेहरे को देखती रह गई।

बेटी बोली, "उनके नज़रबन्दी से मुक्त होने तक तो यहीं रहोगी न ?"

"क्या कहा जा सकता है, तुम्हारे कथनानुसार आदमी तो आदमी बना रहना चाहता है, कोई उसे आदमी बना रहने दे तब न ! अगर मुझे घर पर कोई रहने देगा तो क्यों नहीं रहूंगी। खैर, मेरी बात छोड़ो, तुम अपनी कहो। क्या पादरी साहब इतनी सम्पत्ति छोड़ गए हैं कि जीवनपर्यंत और कुछ नहीं करना होगा। क्या वे लौटकर आएंगे?"

"लौटकर आए भी तो उनके लिए मेरे दिल में जगह होगी। शिवरी उसने मेरी सहायता ऐसे समय की है कि अगर कुछ देर हो जाती तो मेरी लाश बड़े तालाब में तैर रही होती या मैं जलकर राख हो गई होती।"

"क्यों ऐसा क्या हो गया था।" शकुन्तला की जिज्ञासा बढ़ी।

"वही, जो मेरे रास्ते पर चलने वालों का होता है, मेरे जिस्म का रोम-रोम फूट पड़ा था। पादरी ने पैसा दिया, परिचर्या कराई, मां को अस्पताल में दाखिल कराया और एक दिन आंखों में आंसू लेकर बोला : 'आत्महत्या का नाम लेना भी पाप है, लेकिन जब मैं आप जैसी बच्ची लड़कियों को इस तरह मजबूरियों का शिकार बनते देखता हूं, तो मरने के अलावा कुछ...

कोई रास्ता नहीं सूझता।' मेरा मन होता था कि उसके पांव पकड़ लूं और वहीं पर अपने प्राण गंवा दूं।"

"मैं कल्पना कर सकती हूं। वह अपनी दिवंगत प्रेयसी की स्मृति में किस तरह पागल हो उठा था। मालूम होता है, उसके रोम-रोम में मानव-प्रेम की सरिताएं बहती हैं। सभी सच्चे प्रेमी इतने ही महामानव होते होंगे। वह लौटकर नहीं आएगा?"

ग्रेटी ने उत्तर नहीं दिया। वह उस तरुण पादरी की याद में डूब गई थी। शकुन्तला सोचती रही : उस पादरी में वासना नहीं थी, उसमें कृतज्ञता भी नहीं थी, न जाने क्या था, जिसे किसी व्यक्तिगत भाव से अभिव्यक्त करना संभव न था। शकुन्तला अपना दुःख भूल गई। उस भावना में ऐसी विभोर हुई कि वह अपना मंतव्य भी भूल गई। उसने अपनी साड़ी के छोर से अपनी सहेली की आंखों से बहते आंसू हुए पोंछते हुए कहा, "आदमी को समझने में कितनी भूल होती है। मैंने समझा था : वह कितना कुंठित साधु है। हे प्रभु!"

ग्रेटी ने उसे आलिंगन में आबद्ध कर लिया। और काफी देर तक वैसी ही निस्पंद आलिंगनपाश में जकड़ी बैठी रही। फिर पाश ढीला हो गया। शायद भावनाओं के सैलाब में से मस्तिष्क की गंजी चट्टान नजर आने लगी थी। ग्रेटी ने ही फिर बात प्रारंभ की।

"बालकृष्ण का नाम सुनकर तो तुम चौंक ही उठोगी!"

"क्यों क्या हुआ उसे? क्या किसीने गोली मार दी?"

ग्रेटी सुनकर एक क्षण के लिए खामोश रह गई। उसके चेहरे पर अजीब-सी कोमलता उभर आई। लेकिन यह भी स्पष्ट था कि शकुन्तला के लिए उसका स्नेह-सत्कार का भाव अविच्छिन्न बना हुआ था। शकुन्तला आश्चर्य-चकित-सी बोली, "क्यों तुम्हें चोट पहुंची? क्या उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली?"

"यही तो तुमसे कहने के लिए इतने दिन से तड़पती रही हूं। एक दिन अचानक मद्रास से उसकी चिट्ठी आई थी। वह चिट्ठी मैंने बहुत दिन तक तुम्हारे पढ़ने के लिए संभाल कर रखी थी!"

"चिट्ठी नहीं। असिल बात बताओ!"

"उसने लिखा कि वह बहुत सख्त बीमार है। बस, जैसे अंतिम क्षण निकट आ पहुंचा है और वह मुझसे अपने गुनाहों की मांफी मांगना चाहता

की दुपहरी तपती थी, किस तरह शाम के छिड़काव के बाद धरती की सोंधी-सोंधी उच्छ्वास से गलियारा भर जाता था। काश ! वह जबलपुर न गई होती !

वक्त बदल जाता है, लेकिन ऐसा वक्त शायद कोई नहीं आता, जब आदमी किसी न किसी चुनौती का सामना न करता हो। आज भी वह ऐसे संघर्ष से गुज़र रही है कि अगर उसने अपनी निकर्ष-बुद्धि से काम न लेकर अपने को संयोग के सहारे छोड़ दिया तो उसे क्या कुछ देखना नहीं पड़ सकता। नीना और कीर्ति दीदी को पत्र लिखे कई दिन बीत गये हैं। उनका उत्तर न जाने कैसा होगा !

वह जानती थी कि नीना और कीर्ति के पत्रों में जो कुछ भी लिखा होगा, केवल उसके आधार पर भविष्य का निर्माण नहीं हो सकता, लेकिन समय की एक-एक कड़ी से भविष्य की इमारत बनती है और जिस अनागत की कल्पना से कल तक वह सिहरती रही है, आज मन की अनिश्चित स्थिति को देखते हुए भी न जाने क्यों उसके मन में कोई ऊहापोह पैदा नहीं होती। उबकियां अब शनैः-शनैः शांत होती जाती हैं। कभी-कभी एक गुद-गुदी जैसा भाव उसे अपने पेट में अनुभव होता है और तब उसकी समस्त देह रोमांचित हो उठती है। अनेक कल्पनाएं मानस पर छा जाती हैं, अनेक मूर्तियां क्षितिज पर उभर आती हैं। एक अलौकिक सुख के अतिरेक से वह भर उठती है और फलों से लदी आम्रलतिका के समान विनीत होकर जैसे वह धरती की ओर झुक जाती है।

कभी-कभी इन अव्यक्त भावनाओं के वशीभूत उसकी मुग्धावस्था में व्यतिरेक भी होता है। आज से पहले इस घर में शकुन्तला एक चकित मृगी के समान कुलांचें लिया करती थी, अब वह अपने ही बोझ से दबी, सहमी-सहमी-सी रहती है और ग्रेटी के यहां जाते समय वृद्धा माता ने जो स्नेह-सिक्त उपदेश उसे दिया था, मन के किसी कोने में प्रकाशदीप के समान उसे वह संजोकर रखती है और अनेक बार कल्पना करती है कि काश वही वृद्धा माता उसकी सास होतीं और दिवाकर के साथ वह उसीकी स्नेहसिक्त छाया में अपने नये जीवन का श्रीगणेश करती। मां ने एकाध बार उसकी परिवर्तित मनःस्थिति की ओर इशारा भी किया है, लेकिन कोई आश्वासन-युक्त उत्तर न पाकर भी उन्होंने शकुन्तला को क्षमा करना ही बेहतर समझा है। क्योंकि वे जानती हैं कि

करता है, उतनी ही आसानी से उसे दूर नहीं किया जा सकता। फिर भी उनकी पुत्री अपनी संपूर्ण निष्ठा के साथ उनके आदर्शों के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास कर रही है। यही सोचकर वे अपने स्वभावजन्य विकारों से उसकी साधना में बाधा नहीं डालना चाहतीं।

शकुन्तला ने निश्चय किया कि ब्रेटी के घर पहुंचकर वह नीना और कीर्ति के पत्रों को देखकर अपने भविष्य का निर्णय करेगी। ब्रेटी के घर पहुंचकर उसे एक नहीं, वरन् दो-दो पत्र प्राप्त हुए। कांपते हुए हाथों से उसने सबसे पहले कीर्ति का ही पत्र खोला। पत्र, में लिखा था :"मेरी प्यारी शिक्की, जब से तुम गई हो, कई पत्र तुम्हें डाले। सतोष यही है कि उन पत्रों में ऐसा कुछ नहीं लिखा था, जिसे पढ़कर पापा के मन को ठेस पहुंचे। लेकिन मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि मां ने मेरे पत्र तुम तक नहीं पहुंचने दिए। यहां स्थिति ज्यों की त्यों है। नीना लगातार मेरे पास आती है और दिवाकर के बारे में सभी सूचनाएं दे जाती है। उसका विचार है दिवाकर शायद जल्दी नहीं छूटेगा। लंबी सज़ा चाहे न हो, लेकिन कम से कम एक वर्ष उसे नज़रबंदी में रहना पड़ेगा। इसमें धीरज खोने की बात नहीं है। दिवाकर से दूर रहने से जो असमंजस की स्थिति तुम्हारे सामने आ गई है, उसका सामना करने में ही हम सबका हित है। मेरा परामर्श यह है कि तुम इस वर्ष यूनिवर्सिटी में दाखिला ले लो और निर्द्वन्द्व होकर पढ़ाई में अपना मन लगाओ।

"इस दुःखद स्थिति में भी एक नई आशा की किरण मुझे दिखाई देती है। शान्ता कपूर ने दिवाकर की पार्टी में पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लिया है और अब नज़रबंदी से मुक्त होने के बाद भी उसे पार्टी में अपना पुराना पद प्राप्त नहीं हो सकेगा। इतने बड़े बलिदान का यह पुरस्कार पाकर भी फिर इसे अपना दुर्भाग्य ही मानना होगा। मेजर साहब कश्मीर आने के लिए बराबर तकाज़ा कर रहे हैं, लेकिन नीना का आग्रह है कि दिवाकर के बारे में निर्णयात्मक स्थिति का पता चलने से पूर्व मुझे कश्मीर नहीं जाना चाहिए, लेकिन, शायद इस स्थिति को अधिक समय तक बनाए नहीं रखा जा सकता। बच्चे तुम्हें बहुत याद करते हैं। तुम्हारी बहिन—कीर्ति।"

इस पत्र को पढ़ने के बाद कीर्ति का दूसरा पत्र खोलने का उत्साह उसे नहीं था। नीना ने पत्र में क्या लिखा होगा, इसकी पूर्वकल्पना वह कर सकती थी, लेकिन उसे इन पत्रों से उलझते हुए देखकर जेंड्र ब्रेटी ने किसी अलौकिक प्रेरणा से उसके मर्म को जान लिया था। शकुन्तला माथे पर हाथ रक्खे

खुले हुए पत्र को हाथ में लिए बैठी रह गई थी और तीन पत्र अब भी उसके सामने बंद पड़े थे। ग्रेटी स्नेह से विह्वल होकर उसके निकट आ गई थी और उसकी पीठ पर हाथ रखकर कह रही थी—"चिंता करने से कुछ लाभ नहीं होगा।"

"जानती हूं, लेकिन चिंता के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। एक वर्ष तक कौन-सा सहारा लेकर उनकी प्रतीक्षा करूंगी!"

"पत्र में क्या लिखा है?" ग्रेटी ने पूछा।

शकुन्तला ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक गहरी सांस जो अभी तक सीने में दबी हुई थी, सहसा उच्छ्वसित हो उठी, "ग्रेटी, तुमसे मैंने अब तक बहुत कुछ छिपाया है। ये तीनों पत्र खोलकर देखो और मुझे बताओ कि मैं क्या करूं?"

ग्रेटी ने एक-एक करके तीनों पत्र खोल डाले और उसके सामने रख दिए। शकुन्तला का अनुमान गलत नहीं था। नीना कपूर के पत्र में वही कुछ था, जो कीर्ति के पत्र में था। उसके दोनों पत्रों में निराशा भी थी, उत्साह भी था और भविष्य का मुकाबला करने के लिए भरसक सहयोग करने का आश्वासन भी था। पार्टी कामरेडों के विश्वासघातपूर्ण आचरण के प्रति क्षोभ भी था और यह लिखा था कि दिल्ली से उसका मन ऊब गया है। दिवाकर के बारे में निर्णयात्मक स्थिति को जान लेने के बाद वह किसी भी समय लखनऊ भाग जाना चाहती है। लन्दन से उसके पत्र का कोई उत्तर नहीं आया है। पार्टी कामरेडों में आजकल यह फुसफुसाहट चल रही है कि कपूर, जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लन्दन गया था, उसे छोड़कर उसने विलायत में ही रह जाने का निश्चय कर लिया है। पार्टी कामरेड नीना से सहानुभूति करने की बजाय उसकी व्यक्तिगत मित्रता प्राप्त करने का प्रयास अपने-अपने ढंग से कर रहे हैं और ग्लानि से उसका मन इतना भर गया है कि वहां एक क्षण भी रहना भारी मालूम होता है और अंत में उसने लिखा था कि यदि किसी प्रकार शकुन्तला दिल्ली पहुंच सके, तो वे दोनों मिलकर भविष्य का मुकाबला कर सकती हैं।

इन पत्रों में भविष्य के प्रति किसी प्रकार की आशा का संकेत नहीं था। शकुन्तला ग्रेटी से कुछ नहीं कह सकी। ग्रेटी के आदेश से हल्का कलेवा मेज़ पर लग गया था। अपनी बांह का सहारा देकर ग्रेटी ने शकुन्तला को उठाया और खाने की मेज़ पर उसे ले गई, लेकिन शकुन्तला के मन में कोई उत्साह

नहीं था। सहसा उसने ग्रेटी के कंधे पर अपना सिर टिका दिया। अश्रुधारा उसकी आखों से बह चली। वह बोली, "ग्रेटी, मैंने अब तक तुम्हें हमेशा नीति और सदाचार की सीख दी है, लेकिन आज जान सकी हूं कि सीख देना और उसे अपने जीवन में उतारना ये दोनों अलग बातें हैं।"

"मानती हूं कि अलग बातें हैं, इसीलिए मैंने उनका बुरा नहीं माना। तुम्हारे स्नेह के प्रति हमेशा कृतज्ञता के भाव का ही अनुभव किया है, पर तुम ऐसा क्यों कहती हो? तुमने ऐसा कौन-सा आचरण किया है कि इतना क्षोभ और आत्मग्लानि तुम्हारे मन में घर गई है?"

"क्षोभ भी नहीं है, आत्मग्लानि भी नहीं है, पर जो है, वह सबसे बड़ी हकीकत है। मैं अब मां बन गई हूं ग्रेटी! किसी सामाजिक रस्म को पूरा किए बिना, मां-बाप का आशीर्वाद लिए बिना, अपने मन से, अपने कर्म से और आज उसका परिणाम भोगने के लिए अकेली रह गई हूं। अब मैं क्या करूं?'

उसके धैर्य का बांध टूट गया था। ग्रेटी को उसने अपने आलिंगन में जकड़ लिया था। करुणा की मूर्ति ग्रेटी स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेर रही थी। कल तक ग्रेटी को शकुन्तला से धैर्य और आश्वासन प्राप्त होता था, आज यह कर्तव्य अनायास उसके सिर पर आ गया था। भर्राए हुए कंठ से वह बोली, "घबराने की कोई बात नहीं है। तुम जैसा चाहोगी, वैसा ही होगा। अगर चाहोगी, तो इस बंधन से हम मुक्त भी हो सकते है। तुम्हारी ग्रेटी इन सब कलाओं में पारंगत हो चुकी है और अगर चाहोगी तो तुम मरियम बन सकती हो और तुम्हारे ईसामसीह को अपना मानकर दुनिया के सामने मैं पेश करूंगी, लेकिन तुम धीरज रखो। अगर तुम्हारा कामरेड इस मर्यादा को निबाहने से भागता है, तो भी घबराने की क्या जरूरत है! तुम मुझे उसका पता दो, जहां कहीं भी होगा, उसे गिरफ्तार करके तुम्हारे कदमों में हाजिर कर दूंगी। मेरे रहते तुम्हारा बाल भी बांका नहीं हो सकता।"

कितना आश्वासन, कितनी ममता और कितना आत्मविश्वास ग्रेटी के कंठ से मुखरित हो रहा था और उसके स्पर्श में कितना व्यामोह और संवेदना भर उठी थी! शकुन्तला को जैसे अपने आचरण के प्रति संपूर्ण समाज का समर्थन मिल गया हो।

उसने सिर उठाकर ग्रेटी की आंखों में देखा और पाया कि जैसे ग्रेटी इतनी ही देर में अपने मानवीय अस्तित्व से पृथक् होकर समस्त मानव-जगत् की

एक विशाल मूर्ति बन गई है। जिसमें पाप, पुण्य, नीति और अनीति, सदाचार और दुराचार निष्कंपित होकर एक अलौकिक भाव में परिवर्तित हो गए हैं, जहां केवल करुणा का अधिवास है और यह करुणा अपनी शत-शत धाराओं से उसके अंतर को परिपूत कर रही है।

असमर्थता का जो भाव अलक्षित रूप से उसके मन पर छा गया था, वह हल्का हो रहा था। ग्रेटी ने दिवाकर को गिरफ्तार करके उसके समक्ष उपस्थित करने की बात कहकर निराशा की धारा को आशा में बदल दिया। अब वह अपने चारों तरफ के वातावरण और आसपास रखी हुई चीज़ों को देख सकती थी और यह भी देख सकती थी कि नाश्ता मेज पर लगा हुआ है। ग्रेटी ने उसके परिवर्तित मनोभाव को जानकर एक चाय का गर्म प्याला उसके लिए बना दिया और खाने का संकेत करने के लिए कुछ नमकीन और मीठे की तश्तरी भी उसके सामने कर दी, लेकिन मीठे के प्रति उसके मन में अनासक्ति का भाव पैदा हो गया था और खट्टे के प्रति स्वाद ही नहीं मोह बनता जा रहा था। वह ग्रेटी से बोली : "मेरा गला कुछ सूख रहा है। चाय नहीं, नीबू का शरबत मिले, तो अच्छा हो। खट्टा संतरा ही हो, तो भी चलेगा।"

"यही दोनों चीजें, क्यों ? हमारे यहां एक से एक स्वादिष्ट पिकिल्स (अचार) रखे हुए हैं। जब मां ही बनी हो, तो मातृत्व की पूरी मर्यादा निभाओ।" ग्रेटी ने कहा।

इस मधुर हास्य-उक्ति से अनायास उसका चेहरा खिल उठा। बोली : "हां, मैं काफी दिन से इस अचरज में पड़ी थी कि क्यों रह-रहकर इन्हीं चीजों के प्रति मेरा मन ललकता है, लेकिन घर में किसीने अब तक वह बात क्यों नहीं कही, जो डाक्टरनी ने मुझे बताई। तांगे में जो बूढ़ी मां मिली थीं, वह तो शायद कोई डाक्टरनी भी नहीं थीं। मुझे भी पता नहीं लगा, लेकिन उन्हें कैसे लग गया ! और मेरी अपनी मां, जो शैतान की आंत में छिपे हुए रहस्य को भी जान लेती हैं, वे भी इस रहस्य को न जान सकीं। यह केवल संयोग ही हो सकता है। तुम्हीं बताओ ग्रेटी, क्या मैं सचमुच मां लगती हूं ?"

"लगती तो हो, लेकिन अगर तुम न बताती, तो मुझे भी यह सन्देह नहीं हो सकता था ! अभी कितने महीने हुए हैं ? देखने में तो कुछ नहीं लगता, पर अब तुम घर में किस तरह रह सकोगी, यही आश्चर्य मुझे होता है। शायद मां का ध्यान इधर इसलिए नहीं गया है कि बेटी के प्रति उनके मन में बहुत अधिक सफाई है। शायद वे यह कल्पना ही नहीं कर सकतीं कि उनकी भोली-

माली बेटी अनब्याही मां भी बन सकती है। लेकिन, जिस दिन पता चलेगा, तो क्या होगा ?"

"यही सोचकर तो मेरे प्राण निकलते हैं। कई बार मन में आता है कि जो कुछ हुआ है, उसे साफ-साफ कह दूं।"

"नहीं, नहीं, यह गलती न करना। केवल मां और बाप की स्वीकृति तक बात सीमित नहीं होती है। रिश्ते, नातेदार हैं, पड़ोसी हैं, समाज है, उनके दूसरे बेटे हैं, नाती-नातिन हैं, सबको अपना समाज-धर्म निबाहना होता है। कितना बड़ा तूफान खड़ा हो जाएगा! मेरा विश्वास करो कि यह खबर सुनते ही तुम्हारी मां पागल हो जाएगी।"

"फिर मैं क्या करूं? तुम्हीं बताओ। दिल्ली जा सकती हूं, लेकिन उसके लिए कोई कारण नहीं है, विद्रोह करके ही जाना होगा। कीर्ति दीदी कहां हैं, उनको लिख सकती हूं और उनका सहारा ले सकती हूं।"

"क्यों किसीका सहारा लेती हो। अपने ही आदमी का सहारा क्यों नहीं लेती? क्या उसपर तुम्हें यकीन नहीं है?"

"यकीन तो बहुत है ब्रेंटी, लेकिन वे आजकल नजरबंद हैं। न जाने कब छूट कर आएं। अगर ऐसा न होता, तो कोई समस्या ही नहीं थी। उन्हें साथ लेकर मां-बाप के सामने खड़ी हो जाती।"

"तब तो ठीक है। तुम कीर्ति दीदी को ही लिखो और इसके पूर्व कि सड़कों पर घूमने वाली दादी-नानियां तुम्हारे भविष्य का गणितफल तुम्हें बताएं, तुम यहां से निकल जाओ। अकेले जाने में घबराहट होती हो, तो मैं साथ चलूंगी।"

शकुन्तला सहसा कोई उत्तर न दे सकी। उदासी का भाव फिर मन में उभर आया। आखों [redacted] फिर आसू बहने लगे। ब्रेंटी ने उसके आंसू पोंछते हुए कहा: "क्या तुम्हें नहीं मालूम है कि मन के संस्कार ही पेट में पलने वाले शिशु का निर्माण करते हैं! अगर तुम इसी तरह दुःखी और चिंतित रहीं और व्यर्थ के विचारों में फंसकर अपने को सताती रहीं, तो बच्चा भी उतना ही मरगिल्ला, विचारहीन और आस्थाहीन होगा। आस्थाहीन को ब्रैकेट में बंदी कर लो।"

"कर लो उपहास, अब तुम्हारा समय आया है। मेरी तरह तुम भी आस्थावान होती, तो इस तरह बुलबुल की तरह न चहकती होती। या तो आत्महत्या करके मर चुकी होती या अब तक दर्जनों बच्चे तुम्हारे आंगन में

खेलते हुए होते।"

"और कौन किसका बाप है, इसकी सूचना केवल मुझे ही होती।" ग्रेटी ने उपहास को और भी घना कर दिया, "और बच्चों के बड़े होने के बाद तो शायद मुझे भी इस रिश्ते को सही-सही जोड़ने में कठिनाई होने लगती। पर मैं यह मानती हूं कि सिर्फ वे सब बच्चे ठीक उसी तरह से बच्चे होते, जिस तरह तुम्हारा होगा या औरों के होते हैं। स्त्री और पुरुष के कायिक-मिलन से बच्चे पैदा होते हैं। तुम्हारी जगह अगर मैं होती तो धड़ाके के साथ निर्द्वन्द्व भाव से अपने गर्भ में सहेज कर रखती। उसे अदृश्य सत्ता को लोरियां सुनाती। खुद चहकती, गुनगुनाती और हर समय आनन्द में विभोर रहती और एक स्वस्थ, तेजस्वी महामानव को जन्म देकर अपने मातृत्व को सार्थक बनाती। मैं तुम्हारी तरह आंखों में आंसू लेकर लुटे मुसाफिर की तरह विलाप करने-वाली नहीं हूं, वैसे चाहे जितनी आस्थाहीन होऊं।"

शकुन्तला ग्रेटी के चेहरे की ओर देखती रह गई। वह बोल न सकी पर उसने अंदर ही अंदर उन सभी शब्दों को एक बार दोहरा लिया, जो अभी-अभी ग्रेटी ने उससे कहे हैं और फिर कुर्सी के हत्थों को मजबूती के साथ पकड़ लिया। निमिष मात्र में उसके समस्त व्यक्तित्व का कायाकल्प हो गया और गंभीर स्वर से वह बोली : "मैं भी ऐसा ही करूंगी। तुम चाहे उप-हास करो, लेकिन मेरी आस्था डिगी नहीं है। तुम्हारे समान दुर्धर्ष विद्रोहिणी मैं भले ही न बन सकूं, लेकिन उस आत्मा का अपमान नहीं करूंगी, मेरे ही शरीर से जिसका निर्माण हो रहा है। विश्वास रखो, अपनी अंतिम सांस तक शरीर में रक्त की एक बूंद भी रहने तक। जो नारी-तत्त्व तुममें है, वे ही मुझमें भी हैं। इसीलिए तो तुम्हारे पास आई हूं। इसीलिए तुम जैसी मित्र पर भरोसा किया है।"

ग्रेटी के मुखमंडल पर हर्ष की एक लहर दौड़ गई। पागलों की तरह उसने शकुन्तला का खूबसूरत चेहरा अपने हाथों में ले लिया और बेशुमार चुंबनों से उसे भर डाला। दो नारी-शक्तियां दो विभिन्न धाराओं के समान जैसे एक ही महासागर में विलीन होती हैं और उसी एक महान सत्ता का अविभाज्य अंग बनती हैं, जिसके अनेक रूपों को सरिता, जलाशय, वर्षा, मेह और शबनम के नाम से पुकारा जाता है। इस संकट की घड़ी में वे अव्यक्त भाव से एकात्म इसीलिए हो गईं। शकुन्तला की पीड़ा अब उसकी शक्ति बन चुकी थी और आज कितने दिन बाद वह पुनः अपनी कमर में आंचल के

छोर को ग्रस रही थी।

उसने ग्रेटो से पत्र लिखने का कागज़ मांगा और कीर्ति को पत्र लिखने लगी।

"प्यारी जीजी,

"तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में इतने दिन गुजार सकी हूं। इन पत्रों के अतिरिक्त मां ने न तुम्हारा और न नीना का कोई पत्र मुझ तक पहुंचने दिया है। पता नहीं क्यों मेरी अन्तश्चेतना में पहले ही यह आ गया था कि वे ऐसा ही करेंगी। खैर, मेरे इस संघर्ष में वे किसी भी अवसर पर उदारता से काम लेंगी, यह विश्वास न मुझे कभी था और न भविष्य में होगा। पापा को अपनी पीड़ा बताकर मैं और अधिक मानसिक संघर्ष में डालना नहीं चाहती।

"आपने अत्यंत होशियारी रखने का जो सुझाव दिया है, उसपर अमल करना मुश्किल न हो सकेगा। उसका कारण लिखते हुए मेरी आत्मा कांपती है; जानती हूं तुम मन से उदार हो और मेरे कर्मअ-कर्म तुम्हारे लिए समान ही हैं, पर जीजी! जो कुछ हो गया है, वह असाधारण है। नहीं समझती कि तुमपर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी। पर मेरे लिए जीवन में तुम्हारे अतिरिक्त अब किसीका सहारा नहीं रह गया है।

"मैं अब मां बन गई हूं। तुम्हारी गोद के अतिरिक्त दुनिया में शायद कोई जगह ऐसी नहीं है, जहां रहकर मैं इस मातृत्व को प्रतिष्ठित कर सकूं, पर यह मानती हूं कि यह काम मैंने असावधानी से नहीं किया। दिवाकर को मन में जिस पति पद पर आसीन किया है, वह कोई छलना नहीं थी, भले ही समाज से उसे समर्थन न मिला हो। दुनिया का कौन-सा ऐसा रहस्य है, जो तुम्हारी मार्मिक दृष्टि से छिपा हो? मुझसे अधिक उचित-अनुचित को जानने की सामर्थ्य तुममें है। अब तुम्हीं रास्ता दिखाओ कि मैं क्या करूं? यह भी हो सकता है कि मैं साहसपूर्वक सारी स्थिति मां और पापा के सामने रख दूं और जिस रास्ते पर वे चलाना चाहें, उसे स्वीकार कर लूं। दूसरा रास्ता यह है कि तुम्हारे पास आ जाऊं। इस बीच में यदि दिवाकर नज़रबन्दी से छूटकर आ जाते हैं, तो कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि नहीं आते हैं, तो भी मैं पीछे नहीं हटूंगी। जैसा भी तुम मुनासिब समझो, मुझे तत्काल लिखो। मेरे मन पर क्या बीत रही है, यह तुम स्वयं जान सकती हो।

"नीना को अलग से पत्र लिख रही हूं, लेकिन रस्मी बातचीत से आगे

नहीं। लेकिन चाहो तो उसे बुलाकर स्वयं स्थिति समझा देना।

बच्चों को प्यार। पत्र की मैं व्यग्रतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही हूं।

तुम्हारी—
शिक्की"

शकुन्तला ने पत्र लिख लिया, उसे बंद करते समय उसके हाथ कांप रहे थे। ग्रेटी यह सब देख रही थी। पत्र में क्या लिखा गया है, यह उसने बिना बताए ही जान लिया था। उसने लिफाफा शकुन्तला के हाथ से लिया और टिकट चिपकाते हुए बोली, "यह सबसे अच्छा हो कि तुम कीर्ति बहिन के पास चली जाओ। लेकिन यह निर्णय जल्दी ही होना चाहिए। जिस तरह अब तक घर में बात छिपी रह सकी है, उसी तरह आगे भी आचरण करना चाहिए। लेकिन घबराना नहीं है। मेरे नागपुर में रहते तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।"

शकुन्तला जब चलने लगी तो उसे याद आया कि श्रीमती विलियम के बारे में उसने अभी तक नहीं पूछा। श्रीमती विलियम उस समय डाक्टर के यहां गई हुई थीं। उनके रोग की चिकित्सा हो रही थी और उनकी दशा में तेजी के साथ सुधार हो रहा था। चलते-चलते उसने ग्रेटी से कहा, "अगर सीख कहकर मजाक न उड़ाओ, तो यह कहना चाहती हूं कि बालकृष्ण को मायूस मत करना। शायद पुरुष के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। कम से कम दुनिया ऐसी नहीं मानना चाहती। आज जो कुछ सामने आ रहा है, उसे बहुत सोच-समझकर अस्वीकार करना चाहिए। बाकी तुम मुझसे ज्यादा समझदार हो। मेरे पत्र के उत्तर आने पर क्या मेरे घर आकर सूचना दे सकोगी ?"

बेटी ने आश्वासन दे दिया। लेकिन इस आश्वासन के बाद भी शकुन्तला के मन में स्थिरता नहीं आ पाती थी, कभी वह सोचती कि अगर घर में इस रहस्य का पर्दाफाश हो गया, तो न जाने उसे क्या कुछ देखना पड़ेगा और इस भाव में भी उसकी अपनी ही दुर्बलता छिपी हुई थी। यह क्या हो गया! जो कुछ हो गया, इसके लिए यदि वह धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर सकती। संभवतः, अगर वह आग्रहपूर्वक माता-पिता के समक्ष अपने मन को खोलकर रख देती और साहसपूर्वक कहती कि वह दिवाकर से ही विवाह करेगी, अन्यथा विवाह ही न करेगी। हो सकता था माँ चीख-पुकार करती, पिता को मानसिक आघात पहुंचता, लेकिन जो आघात इस रहस्य के उद्घाटन के पश्चात् उन्हें पहुंचेगा, क्या वैसा आघात उसके स्वस्थ विद्रोह से पहुंच सकता था! ऐसा सोचते-सोचते उसके अवयव शिथिल होने लगते और ऐसा प्रतीत होता कि जैसे समस्त देह निष्प्राण हो गई है। अब जीने में जैसे सार्थकता ही नहीं है क्योंकि आज उसे यह अनुभव होता जा रहा था कि जीवन का उद्देश्य केवल अपने ऐंद्रिक सुख की प्राप्ति करना मात्र नहीं है। सुख तो संभवतः अपने जीवन को दूसरों की मान्यताओं के अनुरूप कर देने में ही है और रक्त से संबंधित अपने परिजनों के स्वप्नों को चरितार्थ करने में है। परिजनों को संतोष देने की अभिलाषा में उसने अपने जीवन को इतना अधिक बांध लिया कि वह मर्यादा की सीमाओं को तोड़कर सैलाब की तरह उमड़ उठा और यह एक बच्चे की माँ है, लेकिन फिर भी वह अभिमान के साथ यह नहीं कह सकती कि उसने अपने जीवन को परिपूत किया है और सच्चे मानव-धर्म को निबाहा है। हे प्रभु! अब क्या होगा?

निराशा और साहस के भाव एक के बाद एक उसके मन में अवतरित होते रहते। कभी वह अपने कर्म के प्रति साहस से भर उठती और जीवन को अपनी तरह से जीने के लिए उसकी अभिलाषा शत-शत धाराओं का रूप धारण करके उमड़ उठती और तब उसके मन में उदर में पलनेवाले शिशु के रूप में अनंत जीवन का एक दिव्य रूप चित्रित हो जाता। तब उसके

मने न मान्यताएं होतीं, न परिजनों का आह्लाद होता और न दूसरों के सुख अपने सुख की अनुभूति करने की भावना होती। मां अथवा पिता का स्तित्व जैसे लुप्त हो जाता और वह अनेक सुखद कल्पनाओं में खो जाती।

विपरीत भावनाओं के हिंडोले में झूलती हुई शकुन्तला एक-एक कदम ी सावधानी के साथ रखती। जितने समय घर में रहती, कुछ न कुछ पढ़ती हती और जब कभी बाहर जाने का मन होता तो किसी पार्क में जाकर कांत स्थान में बैठ जाती और आंखें बंद करके कभी अपने अंतर के संसार ो मूर्तिमंत हुआ देखती और कभी बाहर की दुनिया, जो उसकी दृष्टि से रे थी, वह अपने समक्ष उपस्थित पाती। इस दुनिया में दिवाकर भी था, जरबंदी की कोठरी भी थी और उसमें विभिन्न भावनाओं से भरा हुआ दिवाकर जैसे उसके सामने बैठा हुआ दिखाई पड़ता और तब वह उससे बात-चीत करती हुई होती। दिवाकर की गंभीर मुखाकृति, उसका स्थिर मन, आत्मत्याग और समस्त लौकिक आकर्षण के प्रति उसका संन्यस्त भाव एक-एक करके उसके अपने मन में उतरता आता और तब वह सोचती उस समस्त जीवन-संघर्ष के बारे में, जिसे दिवाकर ने एक इकाई में रूप में मूर्त किया है। उसके ओजस्वी भाषण, पारे की तरह पारदर्शी उसका मन और दूसरों के जीवन में सुख का संचार करने की उत्कट अभिलाषा—ये सभी भाव-तत्त्व उसके अपने व्यक्तित्व के अंग बनने लगते। अनेक बार वह सोचती कि उन गरीब कामगारों का क्या हुआ होगा, जिन्होंने दिवाकर के आदर्शों से प्रेरित होकर अपना सर्वस्व बाजी पर लगा दिया। क्यों उन्होंने अपना सर्वस्व बाजी पर लगा दिया? क्या वे सभी अपने सुख और सुविधा के लिए उस संघर्ष में आंख मींचकर उतर पड़े थे और उन शहीदों के मन में क्या अपने ही स्वार्थों की पूर्ति की इच्छा रही होगी, जिन्होंने अन्याय के विरुद्ध लड़ते-लड़ते खुशी से शहादत कबूल की।

इन उदात्त विचारों में भटकती हुई शकुन्तला को अपना दुःख भूल जाता और वह भावी जीवन के अनेक मानचित्र बनाने लगती। कभी वह सोचती कि वह दिल्ली जाकर उन पीड़ितों के लिए काम करेगी। नीना उसके साथ होगी और केवल नीना ही क्यों, वह अनेक अपने जैसी बहिनों को साथ लेकर उनके मायूस और अभावग्रस्त जीवन में आशा का संचार करेगी और यदि वह उस स्वप्न को पूरा करने में कुछ भी सफल हो सकी, तो उसका अपना जीवन धन्य हो जाएगा। सोचते-सोचते वह इतनी व्यग्र हो उठती कि यदि उसके

पंख होते, तो वह उड़कर उन गरीब कामगारों की झोंपड़ियों में पहुंच जाती, जिनके काम छूट गए हैं और उन बहिनों के साथ उन झोंपड़ियों के ऊबड़-खाबड़ फर्श पर बैठकर उनसे सुख-दुख की बातें करती और फिर उन अभावों की पूर्ति के लिए साधन जुटाने में अपनी सुध-बुध भूलकर जुट जाती।

इसी प्रकार अनेक कल्पनाओं और दुश्चिंताओं के भार से उसका मस्तिष्क दबा होता। भूख और प्यास के प्रति जैसे उसके मन में विरक्ति पैदा होती जाती थी। घर में वह इधर-उधर घूमती, लेकिन घरवालों को जैसे उसके अस्तित्व का पता हो न हो। मां को आश्चर्य यह होता था कि जार्ज बराबर पोस्ट आफिस जाता है, लेकिन शकुन्तला के नाम कोई पत्र नहीं आता, फिर भी उनके मन में संदेह नहीं था। शकुन्तला के घर और बाहर किसी भी स्थान में जाने पर कोई निषेध नहीं था, लेकिन अपनी इच्छा से ही वह कहीं न जाती। कीर्ति के पत्र की प्रतीक्षा में वह अंदर ही अंदर उद्विग्नता अनुभव करती। उसका मुंह मुरझाता जाता था, लेकिन उसके शब्दों में व्यथा का कोई आभास नहीं होता था। इसी प्रकार उसने प्रतीक्षा के तीन दिन गुजार दिए। किसी भी क्षण वह ब्रेटी के आ पहुंचने की कल्पना करती रहती। जब तीसरा दिन भी समाप्त हो गया, तो उसने स्वयं ब्रेटी के घर जाने का निश्चय कर लिया।

ब्रेटी के घर वह पहुंची ही थी कि पोस्टमैन डाक लेकर बाहर निकल रहा था। अनिश्चित भविष्य की आशंका सिहरन बनकर उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गई। शकुन्तला को देखते ही ब्रेटी ने उसका पत्र उसके हाथ में दे दिया। पत्र में लिखा था :

"प्रिय शिक्की,

"तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर एक बार तो मुझे मूर्छा ही आ गई। तुम्हारी व्यथा को मैं अच्छी तरह समझ सकती हूं। घबराने की जरूरत नहीं है। मेरा विचार है कि पूर्व इसके कि घरवालों को इस रहस्य का पता चले, तुम मेरे पास आ जाओ। अभी तक सोच नहीं पाई हूं कि क्या कहकर तुम्हें यहां बुलाऊं, लेकिन अब बहाने बनाकर बुलाने का समय शायद खत्म हो गया है।

"मुझे यही आश्चर्य हो रहा है कि अब तक भी तुम किस तरह इतनी बड़ी हकीकत को रहस्य बनाकर रह सकी हो। मैं कल्पना में तुम्हारी मुखाकृति देख सकती हूं, लेकिन तुम्हारे ही द्वारा सूचना मिलने पर भी मुझे इस बात पर यकीन नहीं होता था कि ऐसा हो चुका है। अपने मन में धैर्य बनाए

रखना। घबराहट में कोई गलत काम नहीं कर बैठना।

"नीना मेरे पास आई थी। कह रही थी कि दिवाकर को नैनी जेल में नज़रबन्द रखा जाएगा। उसके वहां स्थानांतरित होने से पूर्व तुम्हारा उनसे मिलना बहुत ज़रूरी है, लेकिन उनकी पार्टी के साथियों की उदासीनता और नीना की अपनी असमर्थता होने के कारण ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है कि उन्हें नैनी जेल कब भेजा जाएगा। अभी तक भी सरकार उनके बारे में शायद कागज़ी कार्रवाई पूरी तरह से नहीं कर पाई है। केस चलाए जाने के लिए भी उनके साथियों की ओर से सरकार पर दबाव दिया जाना बेहद ज़रूरी है, लेकिन उम्मीद नहीं है कि ऐसा किया जाएगा। नीना जिस समय सारी परिस्थितियों के बारे में चर्चा कर रही थी, तो उसके नेत्रों में आंसू छलक आए थे। कह रही थी कि लगभग चार महीने से उसके पति का पत्र नहीं आया है। ऐसा लगता है कि सारी दुनिया के दुःखी लोग संयोग से एक स्थान पर ही आ मिले हैं।

"हालांकि इस समय राजनीति पर विचार करने का अवसर नहीं है, लेकिन मुझे आश्चर्य होता है कि यह कैसी पार्टी है, जिसमें इतने पुराने, तपे हुए और त्यागी साथियों के प्रति इतनी उपेक्षा का भाव साथियों के मन में पैदा हो सका। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि दिवाकर के मन में अभी भी अपनी पार्टी के प्रति ज्यों की त्यों निष्ठा बनी हुई है और उन्हें विश्वास है कि उनके लौटकर आने के बाद परिस्थितियां सब ठीक हो जाएंगी।

"लेकिन उनकी परिस्थितियां ठीक हों या न हों, हमें अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखना है। तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में मैं अपना कश्मीर जाना टाल रही हूं वरना कुमार के पत्रों में आने का आग्रह आदेश का रूप धारण करता जा रहा है। यदि तुम यहां आ जाओगी, तो यह मकान हमारे पास बना रहेगा और मुमकिन हो सका तो नीना तुम्हारे पास आकर रहेगी। रामप्रसाद को भी यहां छोड़ा जा सकता है, लेकिन अभी भी यह समझ में नहीं आया है कि कौन-सा बहाना बनाकर तुम्हें यहां बुलाऊं, लेकिन शीघ्र ही कोई रास्ता ढूंढने की कोशिश कर रही हूं।

"लौटती डाक से अपने विचार लिखना।

तुम्हारी,
कीर्ति"

कीर्ति के पत्र में काफी आश्वासन था। शकुन्तला को यह विश्वास था

कि उसकी बहिन उसे इस संकट से उबार लेगी और इस पत्र से उस विश्वास की पुष्टि ही होती है, लेकिन फिर भी सारे पत्र से असमर्थता का भाव व्यक्त होता है। संभवतः दुनिया में कोई भी उसका ऐसा मित्र, परिजन अथवा हितैषी नहीं होगा, जो इस स्थिति की सूचना पाकर एक बार लाचार होकर न रह जाए। शकुन्तला के चेहरे पर असमर्थता का यह भाव इतना गहरा लिख गया था कि प्रीटी ने उसके हाथ से पत्र ले लिया और एक सांस में ही उसे पढ़ गई और बोली कि यह स्थिति ही ऐसी है बहिन, कि इससे ज़्यादा वह कुछ नहीं लिख सकती।

"यही मैं सोचती हूं।" शकुन्तला ने बंधे हुए स्वर में कहा। यह मैं क्या कर बैठी! अपनी ही खुशियों को अपने हाथ से बर्बाद कर दिया। जानती हूं हर आदमी की दुनिया में अपनी समस्याएं होती हैं। कीर्ति के पत्र में जो लाचारी दिखाई पड़ती है, वह स्वाभाविक ही है, लेकिन कम से कम एक सहारा तो है। पर यह नहीं सूझता कि क्या कहकर यहां से दिल्ली जाऊं। मैं जानती हूं कि दिल्ली जाने का नाम लेने से ही सारे घर में एक तूफान खड़ा हो जाएगा और उनके सामने उस तूफान में यह सारा रहस्य अगर खुल गया, तो मेरे सामने मरने के अलावा कोई चारा नहीं रह जाएगा। मैं मरना नहीं चाहती। अपने मातृत्व को प्रतिष्ठित किए बिना मेरे प्राण नहीं निकल सकते।"

"जितनी तुम घबराई हुई हो, उतने घबराने की बात नहीं। लोक-मर्यादा, मां-बाप के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह ये बड़ी चीज़ें हैं। लेकिन सोचकर देखो कि अगर तुम्हारे माता-पिता दिवाकर के साथ तुम्हारा विवाह करने के लिए खुशी के साथ मंजूरी दे देते, तो तुम ऐसी स्थिति में कभी न आती। तुम यह क्यों-नहीं सोच लेती कि तुम्हारा जीवन तुम्हारा अपना जीवन है और उसे अगर ऐसी स्थिति में भी खुले दिमाग से नहीं चलाओगी तो एक के बाद दूसरी कठिनाइयां तुम्हारे मार्ग में आती जाएंगी और एक दिन उनके शिकंजे में तुम इस तरह फंस जाओगी कि निकलना मुश्किल हो जाएगा। अगर मेरी बात मान सको तो चुपचाप यहां से निकल जाओ और अपनी स्थिति के बारे में एक पत्र अपने मां-बाप के लिए लिख जाओ। जब इतनी बड़ी हकीकत का उन्हें पता चलेगा तो उससे समझौता करेंगे, वरना मन मार कर बैठ जाएंगे। इस तरह भटका हुआ मन लेकर तो तुम दो कदम भी आगे नहीं चल सकतीं।"

शकुन्तला को ग्रेटी के परामर्श में सार नजर आने लगा था और वह यह निश्चय करना चाहती थी कि इस रहस्य के उद्घाटन से घर में कोई तूफान खड़ा होने से पहले वह वहां से निकल जाए। अब उसके मस्तिष्क में केवल एक ही विचार था कि किस तरह उसे गाड़ी का टिकट मिले और वह चुपचाप नागपुर छोड़ दे। ग्रेटी यहां भी अपनी सेवाएं लेकर पूरे उत्साह के साथ उसकी सहायता करने के लिए तत्पर हो गई। निश्चय हुआ कि उसी दिन शाम तक कोशिश करके ग्रेटी उसके लिए गाड़ी में स्थान सुरक्षित करवा लेगी। शकुन्तला के पास उस समय पैसे नहीं थे, शायद यह कहने की आवश्यकता भी नहीं थी। आंखों ही आंखों में ग्रेटी ने उसे समझा दिया था कि उस बारे में उद्विग्न होने की जरूरत नहीं है। ग्रेटी के घर से विदा होते समय वह कीर्ति के दूसरे पत्र आने की प्रतीक्षा भी नहीं करना चाहती थी। अब वह यह सोच रही थी कि विदा होते समय माता-पिता को क्या लिखकर जाएगी। टिकट मिलने के समय की अनिश्चित स्थिति के बारे में वह प्रतीक्षा करना नहीं चाहती थी। ज्योंही उसे टिकट मिल जाए, इस पत्र को छोड़कर वह चुपचाप निकल जाना चाहती थी।

घर-भर में केवल जार्ज ही उसका सहारा था। वह उन क्षणों को अभी नहीं भूली थी जब उसकी मानसिक व्यग्रता से द्रवित होकर दिल्ली में जार्ज ने दिवाकर को लाकर उसके सामने खड़ा कर दिया था, लेकिन दिल्ली से आने के बाद जार्ज उससे खिचा-खिचा रहने लगा है। शायद मन ही मन मां के आग्रह पर बहिन के साथ विश्वासघात करने की अपराध-भावना के कारण वह उसके सामने आने का साहस न कर पाता था, पर शकुन्तला जानती थी कि अगर जार्ज को भी इस स्थिति का पता चलेगा तो वह शायद उसे सहन नहीं कर सकेगा। इसलिए उसने निश्चय कर लिया था कि अपने इस सफर में वह किसीका सहारा नहीं लेगी।

शाम का झुटपुटा हो रहा था। पिता प्रार्थना-सभा में गए थे और मां बाजार से घर के लिए सामान खरीदने के लिए जार्ज को साथ लेकर बाहर गई हुई थीं। उसी समय टैक्सी उसके घर आकर रुकी और मुस्कराती हुई ग्रेटी उसमें से बाहर निकली। पता नहीं ग्रेटी को टिकट मिल सका अथवा नहीं। एक-एक क्षण में उसके सारे शरीर में अनेक विकल्प सिहरन बनकर दौड़ गए। ग्रेटी अंदर आ गई थी : "लो, यह तुम्हारा टिकट है और यह पर्स शिक्की को उसकी प्यारी सहेली की भेंट है और सच पूछो तो यह भेंट सहेली

की नहीं है। इसमें जो कुछ है, वह शिक्की की ही देन है।"

भावातिरेक में शिक्की ने ग्रेटी को आलिंगन में आबद्ध कर लिया था। कृतज्ञता और अपनत्व की भावना में वह इतनी विह्वल हो उठी थी कि उसकी आँखें डबडबा आईं। "किन शब्दों में तुम्हें धन्यवाद दूँ!"

"धन्यवाद देने की अभी जरूरत नहीं है," ग्रेटी ने कहा, "अभी बहुत कुछ करना बाकी है। शायद यह सौभाग्य की बात है कि इस समय घर में कोई नहीं है। चाहो तो अपना सामान मुझे दे सकती हो। गाड़ी सवा दस बजे छूटती है। झुटपुटा तो हो ही गया है। अभी थोड़ी देर में सब लोग वापस लौटते होंगे—जल्दी करो।"

शकुन्तला को अधिक सोचने का समय नहीं था। अपना कपड़ों का बक्स और एक अटैची-केस उसने कांपते हाथों उठाकर दरवाज़े में रख दिए। जितने निःशंक भाव से ग्रेटी ने वह सामान टैक्सी में रख लिया कि अगर घर में सब कोई होते, तो भी यह संदेह नहीं हो सकता कि वह किसी षड्यंत्र में सहायक हो रही है और उतने ही आत्मविश्वास के साथ उसने कहा, "ठीक साढ़े नौ बजे तैयार होकर मेरे पास आ जाना और उसके ठीक पौन घंटे बाद तुम गाड़ी में बैठकर दिल्ली के लिए सफर कर रही होगी और उसके ठीक आधा घंटे बाद मैं टेलीग्राम से कीर्ति को सूचित कर दूँगी कि वह तुम्हें स्टेशन पर लेने आ जाए।"

इतना कहकर ग्रेटी अन्तर्धान हो गई और शकुन्तला जैसे उन्मत्त अवस्था में वर्तमान की सभी सीमाओं को भूल गई। उसने कागज़-कलम उठाया और लिखना प्रारंभ किया।

"पूज्य पापा और मां,

"मुझे मालूम है कि मेरा यह पत्र पाकर आपको बहुत बड़ा आघात लगेगा। मैं जा रही हूं। अपनी स्थिति की इससे अधिक जानकारी देना मेरे वश की बात नहीं कि मैं मां बन गई हूं। जिन आशाओं को लेकर आपने मुझे जन्म दिया और पालन-पोषण किया, उन सबको निराशा में मैंने बदल दिया है। फिर भी मेरे मन में आपके प्रति न कोई वितृष्णा है और न शिकायत ही। केवल इतनी अनुनय है कि आप अब मेरी चिंता न करें। यदि मेरे भाग्य में आपकी सेवा करना लिखा होगा, तो किसी दिन दिवाकर के साथ ही आकर आपका चरण-स्पर्श करूंगी।

"शायद आप सोचें कि यह कदम उठाने से पूर्व मैंने आपके समक्ष सारी

स्थिति खोलकर क्यों नहीं रखी। उसका एक ही कारण है कि ऐसी स्थिति में इस घर में एक क्षण भी रहना अपने लिए मुश्किल पाती हूं। मैं आपके सामने आंख नहीं उठा सकती और मुझे पूरा विश्वास है कि आप संभवतः मुझे क्षमा नहीं कर सकते, लेकिन आपकी नज़र में मेरा यह कर्म अपराध नहीं बनेगा, यही प्रार्थना करती हूं। मुझे वापस बुलाने की कोशिश न करें। मैं आपको अपना मुंह नहीं दिखा सकती और जब तक अपनी इस स्थिति को सामाजिक मर्यादा से प्रतिष्ठित न कर लूंगी, तक तब आपके समक्ष उपस्थित होने का साहस न कर सकूंगी।

"क्षमा प्रार्थना सहित,

आपकी,
शिक्की"

शकुन्तला यह पत्र बंद ही कर रही थी कि उसी समय पापा प्रार्थना से वापस आ गए। इतने दिन में ही उनकी कमर पहले से कुछ अधिक झुकी हुई नज़र आने लगी है। चेहरे पर एक भयानक स्तब्धता है और उनके हर कदम में थकान मालूम होती है। सहसा शकुन्तला को अनुभव हुआ कि उसका यह पत्र पढ़ने के बाद पापा की हालत बिगड़ जाएगी और उसे लगा कि जैसे बिगड़ गई है। भावातिरेक में उसने पत्र दराज में बंद कर दिया और पापा के निकट पहुंच गई और स्नेहसिक्त स्वर में बोली, "पापा, आपको अब घूमना-फिरना छोड़ देना चाहिए। जब तक स्वास्थ्य पूरी तरह से अच्छा न हो जाए, तब तक सभाओं में सम्मिलित होना बंद कर दीजिए।"

आज कितने दिन बाद पापा की प्यारी बिटिया उनसे पहले की तरह बोली है। आह्लाद से उनका चेहरा खिल उठा, "तो हम यह समझें कि हमारी बिटिया ने हमें माफ कर दिया है?"

शकुन्तला के दिल में एक हल्की-सी टीस पैदा हो गई। वह कल्पना भी कर सकती थी कि उसके मन की चाह को पूरा करने की असमर्थता ही उसके पापा को एक-एक सांस में बुढ़ापे की ओर ढकेल रही है और अब अगर यह नया आघात उन्हें लगेगा तो भगवान जाने, उनकी क्या हालत होगी। मन ही मन कामना कर रही थी कि 'हे प्रभु, मेरे पापा ने आज तक न जाने कितनी निराश आत्माओं को प्रेरणा तथा बल दिया है। इस आघात को सहन करने की शक्ति उन्हें प्रदान करना।'

जिस उछाह से वह पापा के निकट गई थी, उतनी ही घनीभूत पीड़ा से

उसका अंतर छटपटा उठा। हृदय इतना विह्वल हो उठा कि साड़ी का छोर उसने अपने मुंह में दबा लिया कि सहसा रुदन कंठ से न फूट पड़े। उस घर का एक-एक कोना जैसे करुणा से भरकर उसे रोकने की पुकार कर रहा था। एक सन्नाटा उसके मन में छा गया था और रेगिस्तान से आनेवाली किसी पुकार के समान उसकी असमर्थता अव्यक्त रूप से उसके मन-प्राण में भरती जा रही थी। डबडबाई आंखों और अवरुद्ध कंठ को लेकर वह पापा के सामने से हट गई। बाहर बगीचे में उसके रोपे हुए पौधे जैसे उसकी शिकायत कर रहे हों कि उसने उनकी उपेक्षा की है। एक-एक क्यारी और उसमें लगे हुए एक-एक पौधे के जन्म से लेकर पुष्पित होने तक का समय न जाने कितनी आत्माओं के इतिहास का रूप धारण करके उसके मानस में छा रहा था। हर कदम में एक व्यथा भर गई थी और हर नजर के साथ एक गहरी उसास उसके कंठ से निकल आती थी। कौन जाने, अब इस फुलवारी में वह वापस लौट सकेगी या नहीं!

गाड़ी का समय नजदीक आता जा रहा था। उसकी समझ में ही न आता था कि वह क्या कहकर घर से बाहर निकलेगी। फुलवारी से घर के अंदर प्रवेश करने का मन ही नहीं होता था, लेकिन विवेक अब भी कहीं जाग रहा था और उसे यह चुनौती दे रहा था कि यदि उसने इस समय अपने ऊपर अधिकार खो दिया तो न जाने क्या हो। फिर भी वह नल से पानी खींचकर गुलाब के उस पौधे को सींचना चाहती थी, जिसे आज से छः मास पूर्व वह स्वयं नर्सरी से लाई थी और अब एक बड़ा गुलाब का फूल उसके शीर्ष पर मुस्करा रहा था। वह सोच रही थी कि ऐसा ही एक गुलाब का फूल मेरे मानसरोवर में खिल रहा है। और इस विचार से ही करुणा का भाव द्विगुणित होकर उस उपेक्षित गुलाब के पौधे के प्रति उसके मन में भर उठा।

मां बाजार से लौटकर आ गई थी और मि० जोजेफ से मिलने के लिए अनेक भक्त लोग बड़े कमरे में पहुंच गए थे। शकुन्तला बगीचे से लौटकर अपने कमरे में आई और दरवाज़े की कोर में से अंदर के दृश्य को देखने लगी। उसके पिता हमेशा की तरह एक प्रशांत मुद्रा में बैठे थे और उनकी मुखाकृति से मंद-मंद हास्य बिखर रहा था। शकुन्तला का मन होता था कि जाए और उनकी बाहों में लिपटकर अपनी समस्त अन्तर्व्यथा को उड़ेल दे। 'मेरे पिता कभी मुझे गलत नहीं समझेंगे। हे भगवान! न जाने मेरे चले जाने के बाद उनकी क्या स्थिति होगी।' भावनाविभोर होकर उसने पत्र के अंतिम ~ में

उन्हें लिखना प्रारंभ कर दिया। "मेरे साधु पिता, मैं जा रही हूं, लेकिन आपकी स्नेहसिक्त छाया से अपने को वंचित करते हुए दुःख से मेरा कलेजा फटने को होता है। गलती मुझसे अवश्य हुई है, लेकिन आपकी प्रतिष्ठा के लिए ही मैं आपसे दूर हो रही हूं। यदि आप मुझसे घृणा न भी करें तो भी मैं आपको अपने प्रेम की सौगंध देकर कहती हूं कि मुझसे मिलने की कोशिश न करें। मैं आपको अपना मुंह नहीं दिखा सकती, मेरा मुंह इस योग्य रह भी नहीं गया है कि आप जैसे पवित्र पिता के समक्ष उपस्थित हो सके।"

उसने पत्र फिर बंद कर दिया। अब प्रश्न यह था कि वह पत्र रखकर कहां जाए। कहीं ऐसा न हो कि यह पत्र उन्हें मिले ही नहीं और घबराहट में वे रात-बेरात उसे खोजते-खोजते स्वयं ही संकट में पड़ जाएं। पुलिस में रिपोर्ट भी लिखा सकते हैं। तब तो बात और भी बिगड़ जाएगी। घर से निकल चलने का वक्त होता जा रहा है। आखिर वह उस पत्र को कहां रखे! सारे घर में भीड़ जमा हो रही थी और आगंतुकों की ओर से कई बार उसके नाम की चर्चा की जा चुकी थी और उसकी बुलाहट भी हो चुकी थी, लेकिन उसे आश्चर्य होता था कि पापा जो किसी भी काम के लिए या कभी-कभी केवल काल्पनिक कार्य के लिए हमेशा शकुन्तला को आवाज़ देकर बुलाना पसंद करते थे, न जाने आज ऐसा क्यों नहीं कर रहे हैं, लेकिन अंदर ही अंदर उसे इस बात पर संतोष था और वह अपने पापा के प्रति कृतज्ञता के भाव से भरती जा रही थी। घड़ी में साढ़े नौ बजने को आए। भीड़ वहां से छंटने का नाम ही नहीं लेती थी। शकुन्तला ने तय किया कि वह पत्र घर में नहीं छोड़ेगी। ग्रेटी ने जब इतना किया है, तो थोड़ा-सा खतरा मेरे लिए और भी उठा सकती है। मुझे गाड़ी में बिठाने के बाद क्यों न वही इस पत्र को हमारे घर दे जाए।

आखिरकार वह घड़ी आ गई जब उसे घर से बाहर कदम रखना था। वह सामने से होकर नहीं जा सकती थी। बागीचे के पीछे जो लकड़ी का कच्चा बाड़ा लगा हुआ था, उसका बाड़ा उचकाकर आहिस्ता से निकल गई। जाते समय उसने इसी बाड़े को घर की ड्योढ़ी समझकर नमन किया और एक गहरी सांस लेकर पीछे की अंधियारी गली में गायब हो गई। इस समय से लेकर गाड़ी छूटने के समय तक उसे होश नहीं था कि वह कहां है, क्या कर रही है और किधर जा रही है और ग्रेटी को पत्र देने का होश भी उसे तब आया जब गाड़ी ने चलने के लिए सीटी दे दी थी। ग्रेटी आश्चर्यचकित रह गई।

"पत्र तो मैं दे दूंगी शिक्की" ब्रेटी ने कहा, "लेकिन अगर सब के सब मेरे ही सिर पड़ गए तो क्या होगा ?"

"सिर नहीं पड़ेंगे। मैं आत्महत्या तो करने नहीं जा रही हूं। पत्र में साफ लिखा है कि मैं कीर्ति बहन के पास जा रही हूं। सच बात यह है ब्रेटी, कि मैं अपने पापा को दुःखी नहीं देखना चाहती। पहले ही उनका दिल कमजोर है। मेरी प्यारी ब्रेटी, जब तुमने इतना सहारा दिया है, तो यह मेरी आखिरी बात भी रख लो। अगर तुम्हारा अपमान होता है तो अपनी मित्र के लिए सह लेना। मेरे मन का आधा दुःख इसीसे खत्म हो जाएगा।" और तब ब्रेटी ने उसे अपने आलिंगन में कस लिया। ऐसा प्रतीत होता था कि वे दोनों एक-दूसरे में समा जाएंगी और उनकी बाहें कभी वियुक्त न होंगी। गाड़ी चल पड़ी थी। ब्रेटी फिर भी नहीं जाना चाहती थी और अब आंखों में आंसू भर कर शकुन्तला उससे अनुनय कर रही थी कि जाओ ब्रेटी, तुम्हें जाना ही होगा। जनाना डिब्बे में बैठी अन्य महिलाएं इस अपूर्व मिलन और विछोह को हतवाक् होकर देख रही थी।

प्रेटी चली गई तो शकुन्तला कुछ क्षण के लिए प्रायः हतचेत हो गई। में बैठी हुई दूसरी यात्री महिला ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "आपकी तबीयत तो ठीक है न ?"

शकुन्तला ने आंखें खोल दीं।

उस महिला ने पुनः कहा, "आप लोगों में बहुत अधिक स्नेह है न !"

"जी हां ! एक-दूसरे से अलग होने के जब-जब अवसर आते हैं, यही होता है। मेरी बचपन की सहेली है। हम एक ही साथ खेले हैं, पढ़े हैं और शैतानियां की हैं, लेकिन शायद स्त्री जाति का यह दुर्भाग्य है कि वह अपने बचपन के स्नेह-संबंधों को नहीं निभा सकती। जगहें बदल जाती हैं, दिशाएं बदल जाती हैं और मन-प्राण में रमा हुआ स्नेह धीरे-धीरे एक छाया बनकर रह जाता है !"

शकुन्तला ने वह बात इतने करुण स्वर में कही कि उसका भाव डिब्बे में बैठी हुई सभी महिलाओं के कंठों से प्रतिध्वनित हो उठा और फिर लगभग एक घंटे तक सभी महिलाओं ने अपने बाल-स्नेहों की चित्र-विचित्र कथाएं कहनी प्रारंभ कर दीं। इस नये वातावरण में कुछ क्षण के लिए शकुन्तला अपना दुःख भी भूल गई। अपनी-अपनी रामकहानी सुनाकर सभी महिलाएं सोने का उपक्रम करने लगी थीं।

शकुन्तला अब भी जाग रही थी। आज से कुछ मास पूर्व भी उसने दिल्ली की यात्रा की थी। तब जार्ज उसके साथ था। सब कुछ भिन्न था और उसे याद आया कि किस तरह एक यात्री महिला का नन्हा-सा शिशु खिसकता-खिसकता बिलकुल उसके निकट आ गया था। आज तो वह स्वयं एक शिशु को अपने गर्भ में धारण किए हुए है। अब तक के मानसिक संघर्ष में वह अपने इस शिशु के अस्तित्व को ही भूल गई थी। अब वह शिशु को लेकर अनेक कल्पनाएं करती रही। डिब्बे में नीली बत्ती का धीमा प्रकाश अंधियारे को एक विलक्षण गरिमा प्रदान कर रहा था। अनेक कोमल भाव-नाओं में भटकती-भटकती वह सो गई।

प्रातःकाल जब वह उठी, तो उसे लगा कि शायद वही सबसे अधिक सोई है। बेयरा आया तो उसने चाय के लिए आर्डर कर दिया और तब पहली बार उसने देखा कि ब्रेटी ने जो पर्स उसे दिया था, उसमें क्या है। कितना पैसा उसने इस पर्स में रख दिया है! सौ-सौ के नोट! एक-दो-तीन-चार, हे प्रभु! क्या उसने पादरी से मिली सारी पूंजी इसी पर्स में रख दी है! ब्रेटी के प्रति कृतज्ञता के भाव से उसका मन इस तरह भर उठा कि वह ठगी-सी बैठी रह गई। काफी देर बाद वह उस विमुग्ध मनःस्थिति से बाहर निकली।

कल रात ही ब्रेटी ने उसका पत्र घर पहुंचा दिया होगा। घर में सबके चेहरों पर कितनी मायूसी होगी।

फिर वह कल्पनाएं करती रही कि कौन कहां होगा, क्या करता होगा और यदि शकुन्तला वहां होती तो घर की स्थिति क्या होती!

जैसे-जैसे समय गुज़रता जाता था, उसका अतीत पीछे छूट रहा था और भविष्य सामने आता जाता था। अब वह यह भी सोचने लगी थी कि स्टेशन पर कीर्ति उसे लेने आएगी अथवा नहीं। ब्रेटी ने तार ज़रूर दे दिया होगा। कीर्ति ज़रूर आएगी। शायद मीना भी आए। शायद दिवाकर का भी कोई समाचार वह साथ में लाए। क्या ही अच्छा हो कि दिवाकर छूट ही गया हो और वह भी उनके साथ स्टेशन पर मुझे लेने आए। पर ऐसा नसीब लेकर वह कहां आई है!

कीर्ति और मीना स्टेशन पर खड़ी थीं। व्यग्रता के साथ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। गाड़ी के पहुंचने के कुछ ही समय पूर्व ब्रेटी का तार मिला था और कीर्ति मीना को लेती हुई यहां आ पहुंची थी। गाड़ी से सामान उतार कर टैक्सी में रख लिया गया और तब कहीं आपस में बातचीत शुरू हो सकी। कीर्ति की मुखमुद्रा काफी गंभीर थी। मीना ने कहा, "आपने बहुत अच्छा किया, जो यहां चली आईं।" और दबे स्वर से कीर्ति ने कहा, "क्या पापा से कहकर आई हो?"

"नहीं। कहने का साहस ही नहीं हुआ।" शकुन्तला ने कहा, "लेकिन ब्रेटी के हाथ रात को ही पत्र भिजवा दिया था। उन्हें मालूम हो गया होगा कि मैं तुम्हारे पास ही जा रही हूं।"

"यह तुमने बहुत अच्छा किया शिवकी! मैं तो चिंता में पड़ गई थी कि पापा का दिल कमज़ोर है। इतना बड़ा आघात शायद वे सह न सकते।

तुमने बहुत अच्छा किया। ज्यादा से ज्यादा यही होगा कि वे तुम्हें लेने यहां आ जाएं, लेकिन शायद बात उनकी समझ में आ जाएगी। अब उन्हें समझ लेना चाहिए कि हमारे सामने दूसरा कोई रास्ता नहीं है।"

घर पहुंचते-पहुंचते नीना कहने लगी थी, "सब ठीक हो जाएगा बहिन ! शायद दिवाकर भी जमानत पर रिहा हो जाएं। पार्टी के वकील अपनी व्यक्तिगत स्थिति में उनके जमानत पर रिहा होने और बाद में मुकदमा चलाए जाने के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं, लेकिन हमारी पार्टी के साथियों ने अभी तक कोई विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई है। इस षड्यन्त्र के पीछे शान्ता का हाथ है और शफीक मियां शान्ता के हाथ में कठपुतली की तरह नाच रहे हैं। शफीक मियां के मन में यह आशा बंधने लगी है कि दिवाकर का स्थान उन्हींको प्राप्त होगा। हमारे पुराने साथी विश्वनाथन ही उनका विरोध कर रहे हैं, लेकिन मैं जानती हूं कि उनका विरोध सफल नहीं होगा।"

"मैं तो यह सोचती हूं कि अगर चार दिन के लिए भी दिवाकर जमानत पर रिहा हो जाए तो इनका रिश्ता हो जाना चाहिए।" कीर्ति ने कहा, "अगर ऐसा हो जाता है तो पापा को समझा लेने की जिम्मेदारी मेरी है। हमारे पापा बहुत अच्छे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि वे विरोध नहीं करेंगे और अगर विरोध करें भी तो इससे आगे चारा क्या है ?"

इसी तरह बातचीत करते-करते घर नजदीक आ गया। पीटर और टिन्नी को लिए हुए रामप्रसाद अपनी चिरपरिचित वात्सल्य भावना से भरा हुआ, लाल अंगोछा कंधे पर डाले, आनेवालों की प्रतीक्षा कर रहा था। वह दौड़-दौड़कर टैक्सी से सामान उतार रहा था और कह रहा था कि अब तो बड़ी बिटिया चाहे कश्मीर चली जाएं, हम बच्चों को परदेस में नहीं जाने देंगे। अब तो छोटी बीबी आ ही गई हैं। हम सबको यहां रहने में कोई तकलीफ नहीं होगी।

रामप्रसाद की बातें सुनकर शिक्की, नीना और कीर्ति मुस्कराने लगीं।

नीना दोबारा आने का वायदा करके चली गई और स्नान करने के बाद शकुन्तला चायपान करने बैठी, तो उसके मस्तिष्क में उद्विग्नता कम थी। नीना की कही हुई बात उसके दिमाग में उलझी हुई रह गई थी। कीर्ति से उसने कहा, "क्या वाकई यह मुमकिन हो सकता है कि दिवाकर जमानत पर रिहा हो जाएं ?"

"जहां तक मुमकिन होने का सवाल है, दुनिया में कौन-सी चीज ऐसी है,

जो नहीं हो सकती। हड़ताल अवैध नहीं थी, इसलिए यह मामला फौजदारी का नहीं हो सकता। जमानत पर भी रिहा हो सकते हैं और मुकदमा चलने पर माफ छूट भी सकते हैं। सवाल सिर्फ इतना ही है कि उनकी पार्टी वाले लोग उनके बारे में पैरवी करना चाहते हैं या नहीं!"

"नीना की बातचीत से तो यही पता चलता है कि शान्ता और शफीक जब तक पार्टी में अपनी जड़ें गहरी नहीं जमा लेंगे, तब तक शायद दिवाकर को वे याद भी न करना चाहें, लेकिन क्या हम लोग उन वकील साहब के पास जा सकते हैं, जो उनकी जमानत पर रिहाई के लिए और मुकदमा चलाए जाने के बाद कोशिश कर रहे हैं?"

"हां, हां, जरूर! अभी नीना को टेलीफोन करते हैं। वकील साहब से समय निश्चित करके हम तीनों वहां चलेंगी और जैसी भी स्थिति होगी, हमारे सामने आ जाएगी।"

नीना से टेलीफोन करके कीर्ति ने यह तय कर लिया कि किसी भी तरह हो, अगले दिन प्रातःकाल का समय वकील साहब से मिलने के लिए वह तय कर ले और सीधी इधर आ जाए।

नीना प्रातःकाल ही आ पहुंची। साढ़े आठ बजे का समय वकील साहब से मिलने के लिए निश्चित हो गया था। जल्दी-जल्दी तैयार होकर वे तीनों वकील साहब के घर के लिए चल पड़ीं।

एडवोकेट प्रेमजीतलाल पार्टी के बहुत पुराने वकील हैं। अपने विद्या-काल से ही उन्होंने पार्टी के बहुत मरमर्म कार्यकर्ता की हैसियत से काम किया है। वे पार्टी की सदस्यता प्राप्त करना चाहते थे, लेकिन घर वालों के विरोध और आगे चलकर स्वयं पार्टी के साथियों के परामर्श से वह पार्टी के सदस्य न बनकर केवल सहयोगी ही रह गए। प्रेमजीतलाल की वाणी में कानून बोलता था और वे सामान्य वकीलों की तरह पैसा पैदा करने के लिए कानून के साथ खिलवाड़ नहीं करते थे, वरन् कानून उनके हाथ में न्याय की प्रतिष्ठा का प्रबल अस्त्र बनकर आया था। प्रेमजीतलाल दिवाकर के दोस्तों में थे। यूं दोस्त वे पार्टी के सभी साथियों के थे, लेकिन दिवाकर के व्यक्तित्व, उसके विचार और उसकी कार्य-प्रणाली के प्रति उनके मन में गहरी निष्ठा थी। दिवाकर की तरह वे भी यह मानते थे कि अपने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए कूटनीति का प्रयोग न करके सीधी कार्रवाई करने की नीति को अपनाना चाहिए और उचित परिस्थितियों की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा

जो भी स्थिति सामने है, उसके प्रति अधिकतम बलिदान करके अपने विचार, आदर्शों और ध्येयों के प्रति जनता के मन में आदर की भावना पैदा करनी चाहिए। दिवाकर ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'जयभारत मिल' में हड़ताल कराई थी और प्रेमजीतलाल के अनुसार वह हड़ताल बहुत कामयाब हुई थी, लेकिन साथियों ने आपसी वैमनस्य भावना और व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से दिवाकर के मंच से हटने के उपरांत पूरी हड़ताल को लेकर पार्टी में जिस तरह की साज़िशें शुरू कीं, वे प्रेमजीतलाल को पसंद नहीं थीं। यही कारण था कि साथियों की नाराज़ी जानते हुए भी वे दिवाकर की रिहाई के लिए कोशिश कर रहे थे।

जिस समय नीना, कीर्ति और शकुन्तला उनके दरवाज़े पर पहुंचीं, वकील साहब चाय की तैयारी कराने के बाद अपनी स्टडी में मुकदमे के कागज़ात देख रहे थे। नीना ने दरवाज़े पर दस्तक दी। अपने गंभीर कंठ से स्वागत करते हुए प्रेमजीतलाल ने अपना चश्मा उतारकर मेज़ पर रख लिया और कहा, "आइए, आइए, यहीं आ जाइए। मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि दिवाकर की रिहाई में अब कितनी देर बाकी है।" संकोच से सिमटती हुई कीर्ति और शकुन्तला भी कमरे के अंदर चली आईं। प्रेमजीतलाल ने नीना की ओर अभिमुख होते हुए कहा, "आज मैं अपने इन अद्भुत अतिथियों का स्वागत करके बहुत प्रसन्न हूं।"

विनयभाव कीर्ति और शकुन्तला के चेहरों पर और भी घनीभूत हो उठा। नीना ने मेहमानों का परिचय कराते हुए कहा, "आप हैं मिस शकुन्तला जोज़ेफ और आप हैं आपकी बड़ी बहन श्रीमती कीर्ति कुमार—और वकील साहब का परिचय देने की ज़रूरत मैं नहीं समझती। सिर्फ इतना कहना ज़रूरी होगा कि आप दिवाकर के अनन्य मित्रों में हैं। यह मित्रता केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि इनके विचार भी केवल उनसे ही मिलते हैं। इनके तीसरे साथी हैं मि० कपूर, लेकिन शायद उनके लिए अब भूतकालिक संज्ञा ही प्रयोग करनी पड़ेगी।"

नीना की बात सुनकर प्रेमजीतलाल के कंठ से गंभीर हास्य का ऐसा प्रवाह फूटा कि श्रोताओं के सुख-दुःख के जितने भी भाव थे, सब उसकी लपेट में आ गए। हंसी के वेग को रोकने के बाद प्रेमजीतलाल बोले, "नीना ठीक कहती हैं। मेरे विचार दिवाकर से मिलते हैं। मैं यह मानता हूं कि अपने ध्येय की पूर्ति के लिए अधिक से अधिक कुर्बानी करना ही सबसे बड़ी कूट-

नीति है। अगर हमारी पार्टी भी अवसर की खोज में समय बिताने की नीति पर अमल करती है तो फिर दूसरों में और हममें फर्क ही क्या हुआ। अगर सिर्फ विचारों से लोग प्रभावित हुआ करते, तो अच्छे विचारों की कमी दुनिया में नहीं है। जीवन में सबको समान अवसर प्राप्त होने की और इंसानी आज़ादी की हम पैरवी करते हैं। हम किसीको मुगालते में नहीं डालना चाहते। और हम यह भी नहीं चाहते कि हमारी की हुई कुर्बानी का फल हमीको मिले। इसलिए अगर इंसानियत और सच्चाई के लिए हमें अपने खून से भी क्रान्ति के बिरवे को सींचना पड़े तो सोचना चाहिए। कुर्बानी ही रंग ला सकती है। बलिदान ही सबसे बड़ा तर्क है।"

प्रेमजीतलाल के स्वर में तेज था, और उससे भी अधिक उनके स्वर में सन्निहित विचार उनके चेहरे की एक-एक भावभंगिमा में मुखर हो रहे थे। शकुन्तला सोच रही थी कि वे कितने प्रभावशाली वक्ता होंगे। उनकी बड़ी-बड़ी आंखें उन्नत ललाट और उनके शरीर के प्रत्येक आंदोलन में जैसे आत्म-विश्वास और ध्येय-निष्ठा कूट-कूटकर भरी थी। मन ही मन उसे विश्वास हो चला था कि वह वकील दिवाकर को रिहा कराकर ही छोड़ेगा, लेकिन फिर भी तीनों श्रोताओं में से कोई भी उनके समक्ष बोलने का साहस न कर सका।

मीना जो उन्हें अच्छी तरह जानती थी, सोच रही थी कि वकील साहब को पुनः यदि किसी आदर्शवादी वक्तृता में बह जाने दिया, तो शायद कुछ बातचीत नहीं हो पाएगी। वह यह मानती थी कि प्रेमजीतलाल जो कुछ कर रहे हैं, वह अपनी दिलचस्पी से कर रहे हैं, लेकिन फिर भी वे क्या कर रहे हैं, इसकी जानकारी प्राप्त हुए बिना शकुन्तला और कीर्ति को आश्वासन नहीं मिल पाएगा। शकुन्तला और दिवाकर के सम्बन्ध में वह पहले ही उनको बता चुकी है। हालांकि उसने अभी तक यह नहीं बतलाया था कि स्थिति कहां तक पहुंच चुकी है।

इस थोड़े-से समय में भाषण करते हुए भी प्रेमजीतलाल ने शकुन्तला की ओर इतनी मार्मिक और अन्वेषक दृष्टि से देखा था, और उसके बाद अपनी खोज के परिणाम को उन्होंने मीना के समक्ष दो ही भ्रू-भंगिमाओं में यह स्पष्ट कर दिया था कि वह स्थिति से अवगत हो चुके हैं और इसकी गंभीरता को समझते हैं। इसलिए बहुत झिझकते हुए और संकोच से भरकर उसने प्रेमजीतलाल से कहा—"कामरेड, अब यह बताइए कि दिवाकर कब

तक ज़मानत पर रिहा हो सकते हैं ? मिस शकुन्तला जोज़ेफ नागपुर से आने के बाद अब जल्दी ही वापस लौटना नहीं चाहतीं !"

प्रेमजीतलाल से वह स्थिति छिपी नहीं रह सकी। वे बोले, "मजिस्ट्रेट को मैंने शायद ६६ फीसदी राज़ी कर लिया है। वह जानते हैं कि अगर उन्होंने मुनासिब फैसला न किया, तो मैं अगली अदालत से न्याय प्राप्त कर लूंगा, लेकिन इसमें मजिस्ट्रेट का दोष नहीं है। पुलिस की ओर से जान-बूझकर जांच में ढील डाली जा रही है, लेकिन इतना मैं जानता हूं कि सरकारी पक्ष में जान नहीं है। ज्योंही कागज़ात अदालत में पहुंचते हैं, मेरे खयाल से एक ही पेशी में मैं उन्हें ज़मानत पर रिहा करा लूंगा। हमारे मेहमानों को हमपर विश्वास करना चाहिए। हमें उनकी भावनाओं का अपने से भी अधिक ज़्यादा खयाल है।"

शायद प्रेमजीतलाल को इससे अधिक कुछ नहीं बोलना था। उन्होंने डाइनिंग रूम की तरफ इशारा करते हुए कहा, "अगर हमारे मेहमान कुछ थोड़ा जलपान कर लें, तो इससे मुझे खुशी होगी।"

सभी लोग खाने की मेज़ पर आ गए। अभी तक कीर्ति मौन ही रही। परिस्थिति की अनुकूलता से प्रेरित होकर उसके मस्तिष्क में उद्विग्नता नहीं रह गई थी। अभी-अभी उस योद्धा वकील ने जो विचार प्रकट किए थे, वह उन्हींकी उधेड़-बुन में लगी हुई थी। चाय के प्याले में भरे हुए तरल पदार्थ में न जाने कितने विचार उसे मूर्तिमान दिखाई पड़ने लगे। उसने वकील साहब से अत्यन्त आग्रहहीन स्वर में पूछा, "आपके विचारों से मैं सहमत हूं। केवल जिज्ञासा करना चाहती हूं। ध्येय की पूर्ति के लिए तत्काल अपने सर्वस्व का बलिदान करना मैं भी इष्ट मानती हूं। प्रभु ईसा मसीह अकेले थे। उनका बलिदान आज इंसानियत का सबसे बड़ा मुहाफिज़ बन चुका है, लेकिन वह बलिदान उन्होंने स्वेच्छा से नहीं किया था। शायद वे जीना चाहते हों और अपने दिव्य ज्ञान का संदेश और भी अधिक आत्माओं तक पहुंचाना चाहते हों और यदि ऐसा हो सकता तो शायद हमारे बीच में प्रेम के साथ घृणा का जो तत्त्व आ गया है, वह न आता। इसलिए मैं जानना यह चाहती हूं कि ध्येय की पूर्ति आत्मबलिदान से प्रारंभ होनी चाहिए अथवा आत्मबलिदान से उसकी चरम परिणति होनी चाहिए ?"

प्रश्न शायद इतना अनुकूल था कि प्रेमजीतलाल का चेहरा खुशी से भर उठा।

उन्होंने कहा, "हम सिर्फ यही कहना चाहते हैं कि ईसा मसीह बलिदान के अरमान से ज्ञान का प्रसार नहीं करना चाहते थे। प्रेम ही उनकी अभिव्यक्ति का पुनीत साधन था, लेकिन प्रेम का प्रतिदान हमेशा ही प्रेम में प्राप्त हो, उनके ही दृष्टांत से यह बात सिद्ध नहीं होती। ईसा मसीह क्रास पर चढ़ गए, लेकिन उसके बाद न जाने कितने और ईसा मसीह पुनः जीवित हो उठे। अगर ईसा मसीह आज के कूटनीतिज्ञों के समान किसी ऐसे अवसर की खोज में बर्बर, अत्याचारी लोगों के हाथ से भागते रहते, तो शायद वे बलिदान कर ही नहीं सकते थे और आज ईसा मसीह प्रभु के इकलौते पुत्र के रूप में समादृत न हो पाते। इसलिए हम समझते हैं कि हर उद्धारक को सिर्फ कफन बांधकर घर से निकलना चाहिए और बलिदान के सर्वप्रथम अवसर के उपस्थित होने पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देना चाहिए। वह यह क्यों सोचे कि उसका कर्तव्य अपने कर्म तक ही सीमित है और अगर उसका पक्ष न्यायसंगत है, तो उसका अच्छा परिणाम होगा ही और उसके पक्ष को अपनाने वाले मिलेंगे ही ?"

प्रेमजीवनलाल शायद अपनी ही विचारधारा को अभिव्यक्ति दे रहे थे। कीर्ति की जिज्ञासा उनके मस्तिष्क में थी ही नहीं। यह नहीं कहा जा सकता था कि वह प्रश्न को समझे ही नहीं, लेकिन वाक्‌चतुरा नीना ने वह बात स्पष्ट कर दी। "कामरेड, कीर्ति बहन यह पूछना चाहती हैं कि ध्येय की पूर्ति आत्मबलिदान से प्रारंभ होनी चाहिए और यदि होनी चाहिए तो क्या यह बेहद व्यक्तिवादी दृष्टिकोण नहीं है ? क्या राजनीति में यह दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है ?"

"जरूर अपनाया जा सकता है। राजनीति जीवन के लिए है, केवल राजनीतिक संघर्षों के लिए नहीं है। विचारों के प्रसार का मतलब अगर यह समझा जाता है कि उनमें प्रतिद्वन्द्वी विचारों को पराभूत करने से हम अपने को प्रबल बना सकते हैं, तो बात मैं नहीं मानता। विचार का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं। विचार की सृष्टि परिस्थितियों से, धारणाओं से, पूर्वग्रहों से और विशेष रूप से अपने अभीष्ट के आधार पर होती है। किसी स्तर पर दूसरों से विचार साम्य की अपेक्षा करना आत्मछलना है। हमारा ध्येय सत्य और मानवता के पक्ष को प्रबल बनाना है। और उसके प्रति दूसरे तभी आकर्षित हो सकते हैं, जबकि हम यह सिद्ध कर दें कि अपने विचारों के प्रति कम से कम हमारे अपने मन में पूर्ण निष्ठा है। इस निष्ठा के प्रति हम आलस्य ... ही

दूसरे लोगों के मन में श्रद्धा उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए साधक, कोई राजनीतिक कार्यकर्ता हो अथवा साधु, मेरे विचार से उसका आचरण एक ही होना चाहिए। इस दृष्टिकोण को व्यक्तिवादी कहनेवाले बहुत हैं, लेकिन उन्हें सफलता भी उतनी ही मिल रही है, जितने के वे हकदार हैं। लेकिन यह सही है कि जब तक राजनीति में ध्येयनिष्ठ लोग नहीं आते, तब तक राजनीति व्यापार के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकेगी।"

कीर्ति की जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। शांत संभवतः हो भी नहीं सकती थी क्योंकि वह अपने मन में जो प्रश्न लेकर बैठी थी, उसका सम्बन्ध राजनीति से उतना नहीं था जितना दिवाकर से। वह शायद इस निष्कर्ष पर पहुंच जाना चाहती थी कि रिहा होने के बाद भी दिवाकर क्या पुनः राजनीति में जाना पसन्द करेगा? क्या अपने साथियों के आचरण से उसके मन में इतनी वितृष्णा न भर जाएगी कि वह उससे विमुख हो जाए? यह जिज्ञासा शांत नहीं हुई और वह अब अधिक जानना नहीं चाहती थी। वह सदैव अपने वर्तमान के प्रति निष्ठावान रही और भविष्य के प्रति पूर्ण आशावादिता के साथ उसने अपने संकल्प का निर्माण किया है। वकील साहब के इस कथन में उसे कोई नई बात नहीं लगी।

इस समस्त विचार-विनिमय में शकुन्तला मौन ही रही। वह भी यह नहीं समझ पाई थी कि वह वर्चस्वी वकील किस सिद्धांत की वकालत कर रहा है, पर उसे इतना अनुभव अवश्य हो गया था कि अपने विचारों के प्रति उसमें निष्ठा है, एक व्यथा भी है और शायद उस अव्यक्त व्यथा की प्रेरणा से ही वह अपने साथियों की नाराज़ी को सिर पर लेकर दिवाकर की पैरवी कर रहा है। उसके लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना ही काफी था।

जलपान समाप्त होने के बाद प्रेमजीतलाल ने शकुन्तला के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "भरोसा रखिए। सब ठीक हो जाएगा।"

इस आश्वासन में एक विश्वास ऐसा था कि शकुन्तला की समस्त घबराहट एक नई आशा के रूप में बदल गई। मन के किसी कोने में कीर्ति के वे वाक्य उभर आए थे। उसने दिवाकर और शकुन्तला के विवाह की बात केवल चर्चा के रूप में कही थी। इस विचार के मन में आते ही उसे पुनः स्मरण हो आया कि नागपुर से वह किन परिस्थितियों में चली है और भविष्य की कल्पनाओं के चरितार्थ होने में अभी मां और पापा का बड़ा सहयोग अथवा असहयोग हो सकता है।

घर जाने के बाद कुमार का पत्र उन्हें मिला। इस पत्र में पुनः यह आग्रह किया गया था कि अगर अधिक नहीं तो कुछ समय के लिए अवश्य कश्मीर आ जाए।

इन परिस्थितियों में कीर्ति का कश्मीर जाना संभव नहीं था, लेकिन फिर भी वह स्पष्ट कारण पत्र में नहीं लिख सकती थी। अगर शकुन्तला की स्थिति की सूचना कुमार को देनी भी हो, तो व्यक्तिगत रूप से ही देनी उचित है। कीर्ति के असमंजस को देखकर शकुन्तला ने कहा, "या तो तुम तत्काल यह निश्चय करो कि कश्मीर जाना है अथवा मुझे यह इजाज़त दो कि मैं मेजर साहब को अपनी तरफ से पत्र लिख दूं कि मैं पुनः दिल्ली आ गई हूं, इसलिए कीर्ति बहन मुझे छोड़कर नहीं आ सकतीं और यदि उन्हें मिलने की इस क़दर बेसब्री है तो, थोड़े दिन के लिए स्वयं ही इधर आ जाएं।"

शकुन्तला की शैतानी से भरी मुस्कान का कीर्ति सहसा उत्तर न दे सकी। शायद उसने उत्तर देना पसंद ही न किया, क्योंकि उनके अतीत की एक-एक घटना से सुपरिचित होने के बाद शकुन्तला के मन में आसानी से यह विश्वास पैदा नहीं हो सकता था कि कुमार के आग्रह में पवित्र प्रेम की विह्वलता रही होगी। उसने कहा, "इतने अधिक पत्र उनके आए हैं कि अब मुझे साहस ही नहीं होता कि कोई बहाना भी बनाऊं। अच्छा हो कि तुम ही एक पत्र लिख दो। शायद थोड़े दिन के लिए खुद ही इधर आ पहुंचें। हालांकि अभी छुट्टी मिलने की कोई गुंजाइश नहीं दिखाई देती।"

शकुन्तला ने पत्र लिख दिया और इसके बाद लगभग दो दिन इसी तरह गुज़र गए। दोनों बहनों के मन में अब यह व्यग्रता उत्पन्न हो गई कि मां और पापा का पत्र अवश्य आना चाहिए। अगर अनुकूल नहीं तो प्रतिकूल ही हो। कम से कम इस घटना का उनपर क्या प्रभाव हुआ है, इसका पता तो चलना ही चाहिए। वे आपस में चर्चा ही कर रही थीं कि इतने में पोस्टमैन डाक लेकर आया। इस डाक में पापा का पत्र तो नहीं मिला, लेकिन बेटी का पत्र ज़रूर था। शकुन्तला ने बेताबी के साथ पत्र खोल डाला। लिखा था :

"प्रिय निक्की,

मुझे पूरा विश्वास है कि कीर्ति बहन को तार ठीक समय पर मि[illegible] गया होगा और वे तुम्हें सकुशल घर ले गई होंगी। तुम्हारे पत्र से

में एक नई निष्ठा का उदय हो गया है। ऐसा प्रतीत होता था कि तुम्हारी मम्मी और पापा तुम्हारी स्थिति से परिचित थे। घबराए हुए ज़रूर थे, लेकिन पत्र पाते ही उन्होंने उसे मेरी ही उपस्थिति में खोल लिया और मुझसे बैठने का आग्रह किया। पत्र पढ़ते-पढ़ते तुम्हारे पापा की आंखों में आंसू आ गए थे। बहुत अधिक नहीं बोले, लेकिन उन्होंने यह ज़रूर कहा, 'तुमने बहुत अच्छा किया बेटी, जो अपनी सहेली को दिल्ली चले जाने का परामर्श दिया। गलती हमारी है कि हमने उसके रास्ते में इतनी मजबूरियां पैदा कीं। स्थिति जो बन गई थी, उसमें इसके अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था। तुम उसे पत्र लिखना और हमारी तरफ से भरोसा दे देना हम भी पत्र लिखेंगे।'

"शायद उनका पत्र भी तुम्हें मिल गया हो। इतनी उदारता दिखाने के बावजूद लगता था कि जैसे उनके चेहरे पर जीवन के चिह्न निःशेष हो गए थे। तुम्हारी मां न मेरे पास आईं और न उन्होंने मुझसे बातचीत की, लेकिन वे बेहद गंभीर थीं। शायद वह स्वाभाविक ही था कि क्योंकि जो कुछ हो गया है, शायद उसकी उन्होंने कल्पना भी न की होगी।

"मद्रास से विलियम का पत्र आया है। उसमें लिखा है कि मेरी शायद इंगलैण्ड वापस आ जाएगी। तुम्हें शायद मैंने यह बता दिया था कि विलियम भी मद्रास की एक फर्म में इंजीनियर बनकर आ गया है। बालकृष्ण से वह अब बराबर मिलता है। बालकृष्ण का आग्रह और भी ज़ोरों के साथ आ रहा है कि मैं शादी की तारीख जल्द से जल्द तय कर लूं। तुमने अपने आदमी के बारे में कुछ नहीं लिखा। क्या हालचाल हैं, क्या संभावनाएं हैं, कम से कम यह तो लिखना चाहिए था। मेरे मन की अभिलाषा तो यह है कि अगर मिस्टर दिवाकर छूटकर आ जाएं, और मैं भी अपने मन को राज़ी कर सकूं तो तुम्हारा और हमारा विवाह एक ही दिन होना चाहिए।

तुम्हारी,
ग्रेटी"

पत्र पढ़कर शकुन्तला का मन उछाह से भर उठा और कीर्ति के हाथ में उसे देते हुए उसने कहा, "ऐसा मालूम होता है कि सभी नक्षत्र हमारे अनुकूल पड़ रहे हैं। लेकिन बहिन, यह बात समझ में नहीं आती कि पापा ने किस प्रकार मुझे क्षमा किया होगा और अब जब क्षमा कर ही दिया है तो अपना आशीर्वाद क्यों नहीं दे रहे हैं!"

"बुरा मानने की बात क्या है ! जैसे उनके संस्कार हैं, उन्हें देखते हुए कितनी बड़ी कुर्बानी करके तुम्हें क्षमा किया होगा, लेकिन यह क्षमा केवल कर्तव्य की भावना की ही सूचक है। उनके मन पर क्या कुछ नहीं गुजर रही होगी। शायद सब-कुछ ठीक होने में देर लगेगी। लेकिन देर आयद, दुरुस्त आयद।" और फिर पत्र को पढ़कर बोली, "यह लड़की, बेटी, देखने में तो बड़ी तेज-तर्रार मालूम पड़ती है, लेकिन शायद बहुत अच्छी लड़की है। मैं अब तक उसे गलत ही समझती रही हूं।"

नीना इन दिनों में लगातार आती रही है और जिस दिन नहीं भी आई है तो टेलीफोन से उसने बातचीत जरूर की है। आज जब वह आई, तो उसके हाथ में एक पत्र भी था। पत्र खुला हुआ था और नीना के नाम लिखा गया था। दिवाकर का पत्र था।

उसमें लिखा था कि पिछले पखवारे में प्रेमजीतलाल दो बार मिलने उससे आ चुके हैं। उन्हें विश्वास है कि जमानत मंजूर हो जाएगी और शायद मुक़दमे का फैसला भी अंतिम ही होगा। शायद शान्ता और शफीक ने उनके परामर्श को मान लिया है और पार्टी मेरे मामले को लेकर अब आंदोलन करेगी। ये बातें कीर्ति बहिन को बता दी जाएं और अगर वह मुनासिब समझें तो शकुन्तला को भी इसका संकेत कर सकती हैं। यदि इस बीच शकुन्तला नागपुर से वापस आ सके तो अच्छा होगा।

पत्र शकुन्तला ने पढ़ लिया और बोली, "अगर प्रेमजीतलाल उनसे मिले हैं, तो हमारे मिलने की चर्चा जरूर करनी चाहिए थी।"

"शायद अब मिलेंगे, तो जरूर करेंगे। देखती नहीं हो कि यह पत्र कब का लिखा हुआ है। नज़रबंदों के पत्रों पर कितना कड़ा सेंसर होता है ! देख नहीं रही हो कि पत्र के काफी हिस्से पर गहरी स्याही पुती हुई है। शायद इनमें कोई ऐसी राजनीतिक बात रही हो, जो सरकार के कर्मचारी पार्टी तक नहीं पहुंचने देना चाहते। सरकार के कर्मचारी राजनीतिज्ञ तो नहीं होते, उन्हें क्या मालूम कि उनके मन में दिवाकर की चाहे कितनी ही खतरनाक तस्वीर हो, लेकिन उनकी अपनी पार्टी में उनके पत्रों का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। फिर भी मुझे आसार कुछ ऐसे नजर आ रहे हैं कि प्रेमजीतलाल की कोशिशों के साथ पार्टी की तरफ से थोड़ा भी आंदोलन खड़ा कर दिया गया, तो दिवाकर की रिहाई जरूर हो जाएगी।"

नीना यह सूचना देकर चली गई। शकुन्तला के मन में एक नया तूफान

पैदा कर गई। एक अजीब-सी सिहरन उसके सारे शरीर में फैल गई थी और अपने अंतर में जो नई जीवन-रचना हो रही थी, उसके प्रति पुनः वह भाव-विभोर हो उठी थी। सोते-उठते-बैठते और बातचीत करते उसके मन में यही विचार रहता कि आज नहीं तो कल दिवाकर आ जाएगा और हम विवाह के सूत्र में बंध जाएंगे। और तब वह नागपुर जाएगी। इतनी जल्दी नहीं जाएगी। अपने नन्हे मुन्ने को गोद में लेकर जाएगी।

यह चौथा महीना चल रहा था और गर्भ में बढ़ता हुआ शिशु कभी-कभी थिरकता प्रतीत होता था। इस थिरकन से उसके मन-प्राण में एक नये जीवन का संचार हो जाता। जाने कैसा चाव मन में भर उठता कि वह कीर्ति के साथ बाजार जाती तो उसे दूकान पर छोड़कर खिलौनों की दूकान पर पहुंच जाती और टिन्नी के नाम से अनेक अच्छे-अच्छे खिलौने खरीद लेती। कीर्ति के बार-बार मना करने पर भी घर में खिलौनों की बाढ़ आती जा रही थी। कीर्ति भी अधिक आग्रह न करती। वह समझ सकती थी।

पीटर और टिन्नी के प्रति शकुन्तला के व्यामोह में एक अलौकिक परिवर्तन हो गया था। अब वह अनेक बार कीर्ति से कह उठती कि वह कश्मीर चली जाए। मेजर कुमार उसके बिना सचमुच बेचैन हो रहे होंगे। अगर इधर कोई नई परिस्थिति उत्पन्न होती है तो उसे तार से सूचना देकर बुला लिया जाएगा।

कीर्ति छोटी बहन के इन सभी आग्रहों के मर्म को समझती थी। वह केवल मुस्कराकर रह जाती। जितना मुमकिन हो सकता था, वह उसे बच्चों में ही लगा रहने देती थी। अनेक बहाने बनाकर उसने बाजार से नवजात शिशुओं के वस्त्र लाने शुरू कर दिए थे और कोमल से कोमल ऊन भी घर में आ गई थी और अच्छे से अच्छी डिजाइन वाली पत्रिकाएं तथा बिनाई के नमूने घर में इकट्ठे होते जा रहे थे। शकुन्तला एकांत में होती, तो बड़े शीशे के सामने खड़े होकर देखती कि उसके स्वरूप में कितना परिवर्तन हो रहा है। उसके चेहरे पर पीतकांति उभरती आ रही थी और उसका अल्हड़पन छूटता जा रहा था।

इसी बीच सहसा एक दिन पापा का पत्र भी आ पहुंचा :

"प्यारी शिक्की,

"जब से तुम गई, हमारे घर का हर्ष और आह्लाद समाप्त हो गया है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम अपने संस्कारों से ऊपर न उठ सके और तुम्हारे

अपने मनचीते ध्येय की प्राप्ति में बाधा ही बने रहे। लेकिन जो कुछ भी हुआ, अच्छा ही हुआ। तुम अब भी अपने ही घर में हो। हमें विश्वास है कि तुम्हारी बहिन हमारे स्थान की पूर्ति करने का सौभाग्य पा सकी है।

"हमारी चिंता न करना। तुम्हारी मां अब आश्वस्त हो चुकी हैं। छोटी-छोटी बात पर उनकी आंखें भर आती हैं। तुम जानती हो कि उन्होंने अपनी गलती को स्वीकार करना कभी नहीं जाना, पर उनके आचरण से साफ जाहिर होता है कि तुम्हारे बारे में उनका जो आग्रह था, वे उसका प्रायश्चित्त कर रही हैं। तुम्हारे प्रति उनके मन में कितनी ममता है, यह तुम्हारे चले जाने के बाद मुझे मालूम हुआ।

"किसी प्रकार की चिंता अपने मन में न रखना। जरूरत पड़ने पर निस्संकोच हमें लिखना। इसी सप्ताह तुम्हारे लिए चेक भेज रहे हैं। उसे भुनाकर अपनी जरूरत की चीजें ले लेना। पत्र में लिखना कि मिस्टर दिवाकर के क्या हालचाल हैं। उनके छूट कर आने पर हमें तार से सूचित करना।

"बच्चों को प्यार! जार्ज तुम्हारी बहुत याद करता है। जब कभी प्रार्थना-सभाओं में जाता हूं, सभी लोग तुम्हारे बारे में पूछते हैं।

तुम्हारा,
जोजेफ"

शकुन्तला को विश्वास न होता था कि दुनिया की सारी चीजें किस प्रकार उसके अनुकूल होती जा रही हैं। फिर एक दिन सहसा समाचारपत्रों में उसने दिवाकर का चित्र और पार्टी की ओर से शीघ्र रिहा न करने की स्थिति में जबर्दस्त आंदोलन चलाने की चुनौती भी पढ़ी। यह प्रचार बढ़ता ही चला गया। एक दिन नीना ने आकर कहा कि प्रेमजीतलाल कहते हैं कि अब किसी भी दिन दिवाकर जमानत पर छूटकर आ सकते हैं। पार्टी में विचित्र हलचलें पैदा हो गई हैं। ऐसा लगता है कि शान्ता और शफीक मियां के बीच में फिर कोई कटुता उत्पन्न हो गई है। पहले तो लगता था कि जैसे ये दोनों शीघ्र ही विवाह-सूत्र में आबद्ध हो जाएंगे, लेकिन अब शान्ता का ध्यान उनकी तरफ से हट गया है और वे मायो विश्वनाथन के साथ घूमती नजर आती हैं। यह प्रचार आंदोलन भी उन्हींकी प्रेरणा का परिणाम है। शायद दुनिया के बड़े से बड़े रहस्य को समझने में मुझे कठिनाई नहीं होती, लेकिन इस औरत को मैं समझ नहीं सकी हूं। यह क्या करती है, यह आज

तक किसीकी समझ में नहीं आया ।"

वस्तुतः इस रहस्यमयी नारी के बारे में शकुन्तला आज तक बहुत-कुछ सुनती आई है, लेकिन कभी गंभीरतापूर्वक उसके बारे में सोचा ही नहीं, और आज भी हालांकि सोचने का कोई कारण नहीं है, लेकिन न जाने क्यों, उसके नागपुर पहुंचने और दिवाकर को ले जाने की घटना सहसा उसके मन पर छा गई। एक विचित्र जिज्ञासा उसके मन में भर उठी और अपने आप पर से विश्वास उठता हुआ-सा प्रतीत होने लगा । नीना की बातें सुनकर वह खामोश रह गई । फिर भी उस औरत को वह जानना चाहती थी और यह समझना चाहती थी कि ऐसा कौन-सा गुण अथवा कला उसे प्राप्त है, जिसके आधार पर वह व्यक्तियों को ही नहीं, बल्कि संस्थाओं को भी अपनी उंग-लियों के इशारे पर नचा सकती है ।

दिवाकर के छूटने की सूचना लेकर प्रेमजीवनलाल स्वयं शकुन्तला और कीर्ति के पास आए। पार्टी की ओर से उनका स्वागत करने की जबर्दस्त तैयारियां की गई थीं और प्रेमजीवनलाल ने स्वयं यह आग्रह किया था कि यदि वे लोग भी दिवाकर के स्वागत के लिए चलना चाहें, तो उनकी ही कार में जा सकती हैं। कीर्ति ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। प्रेमजीवनलाल नीना, कीर्ति और शकुन्तला को लेकर जेल की ओर चले और निकट पहुंचकर देखा कि मजदूरों का इतना बड़ा समूह उमड़ उठा है कि शायद शकुन्तला के लिए उस भीड़ में घुसना न तो मुमकिन होगा और न उचित ही होगा।

कार से उतरकर शकुन्तला कीर्ति के साथ दूर एक कोने में खड़ी हो गई और वहीं खड़े होकर उसने पहली बार शान्ता को देखा। उस क्षण वह यह भी भूल गई थी कि वह दिवाकर की रिहाई के स्वागत-समारोह में शरीक होने आई है। उनके वहां पहुंचने के कुछ ही देर बाद शान्ता अपनी कार में बैठकर आई थी। कार से जब वह बाहर निकली, त्यों ही शकुन्तला का ध्यान उधर आकर्षित हो गया था और बिना परिचय के ही उसने जान लिया था कि यही शान्ता है। शान्ता के हाथ में एक अत्यंत सुरुचिपूर्ण पुष्प-हार था। शायद समय से पहले ही उसने मोल लिया था और अपनी बाईं बांह में संभाल लिया था। उसके हर कदम में आत्मविश्वास था। छरहरी देह, ऊंचा कद और गठन ऐसा था कि जैसे किसी मूर्तिकार ने अपनी अनुपम प्रतिमा में प्राण फूंक दिए हैं। उसकी वेशभूषा सादी थी, लेकिन फिर भी वह पूर्ण आधुनिका प्रतीत होती थी। उसके समस्त व्यक्तित्व में सबसे महत्वपूर्ण उसकी आंखें थीं। ऐसा विलक्षण भाव उन आंखों में था, जिसके समक्ष विरोधी को निरस्त्र न होना असंभव प्रतीत होता था। नीना ने उसके बारे में अब तक जो कुछ भी उसे बताया था, उसे देखकर वह सब निश्चय से कुछ भी अधिक न जान पड़ता था; वह मन ही मन बुदबुदा रही थी, "क्या वास्तव में यह औरत अच्छी नहीं है? नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। यह बुरी नहीं हो सकती। बुरे लोगों को अपने विरोधियों और साथियों को पराभूत करने की शक्ति कैसे

प्राप्त हो सकती है ?"

शान्ता भीड़ में आगे बढ़ गई। मज़दूरों और कार्यकर्ताओं का वह बदहवास तूफान जैसे उसके हर कदम के साथ छंटता जाता था और उसके लिए रास्ता साफ करता जाता था। निमिष-मात्र में ही वह जेल के दरवाज़े पर पहुंच गई थी और उसीने सबसे पहले दिवाकर के गले में माला डाली थी। माला डालते समय उसके चेहरे पर क्या भाव थे, शकुन्तला उन्हें न देख सकी और उस मानसिक द्वन्द्व को शांत करने के लिए किसी निष्कर्ष पर भी न पहुंच सकी। दिवाकर से मिलना संभव नहीं था।

कीर्ति और शकुन्तला को यह विश्वास था कि सार्वजनिक सभा से मुक्ति पाने के बाद दिवाकर उनके पास ज़रूर आएगा, लेकिन उसके पहुंचते-पहुंचते रात के ग्यारह बज चुके थे। नीना उसके साथ थी और वह थका हुआ-सा नज़र आता था। घर में पहुंचने के बाद जो हर्ष और उत्साह की आभा उसके चेहरे पर खिल उठी थी, उसके पीछे भी खिन्नता और मानसिक संघर्ष की एक झलक दिखाई पड़ जाती थी। शकुन्तला तो जैसे मौन ही हो गई थी। ड्राइंग रूम में सभी एक साथ बैठे थे। शकुन्तला दिवाकर के पास बैठना नहीं चाहती थी, लेकिन उसे बैठा दिया गया था। इस संसर्ग से उसके प्राणों में एक नयी उमंग का संचार हो गया था, जिसे रोकना कठिन हो रहा था। कीर्ति तो जैसे अपना सब्र खो चुकी थी। उसने सामान्य आवभगत और नज़रबंदी के दिनों में कुशलक्षेम की बातें करने से पहले यही प्रस्ताव रखना उचित समझा कि दिवाकर को अगले दिन सब काम छोड़कर विवाह के लिए मजिस्ट्रेट के पास आवेदन-पत्र भेज देना चाहिए। इस प्रस्ताव का सभी ने एक स्वर से समर्थन किया।

नीना, जो सिविल मैरिज के कायदे-कानूनों से वाकिफ थी, इस सभा का नेतृत्व कर रही थी। कह रही थी, "मजिस्ट्रेट तब तक इजाज़त नहीं देंगे, जब तक मां-बाप की सहमति प्राप्त नहीं हो जाती। क्या वे इस संबंध के लिए अपनी सहमति इस बीच भेज नहीं देंगे ?"

"केवल सहमति ही नहीं भेज देंगे," कीर्ति ने बात आगे बढ़ाई—"अगर आप लोग चाहेंगे तो वे स्वयं भी उपस्थित हो सकते हैं।"

बातचीत इसी प्रकार आगे बढ़ती रही। विवाह की सभी तैयारियों के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा होती रही और इस चर्चा के समाप्त होते-होते लगभग एक बज गया। शकुन्तला इस बीच कुछ भी नहीं बोली थी। वह

सिर्फ कनखियों से दिवाकर की ओर देख भर लेती थी। वह केवल यही देख रही थी कि इतने दिनों की नज़रबंदी में उसके चेहरे के भावों में कितना परिवर्तन हो गया है। आंखों के नीचे हल्की-सी स्याही आ गई है और चेहरे की सुर्खी पीलेपन में बदल गई है। स्नेह और करुणा का एक तूफान उसके मन में उमड़ चला था और जब शयन-कक्ष में वह उसके पास पहुंची तो उसके सीने में लगकर फफक उठी थी।

आंसुओं को शायद भाषा की आवश्यकता नहीं होती। प्रेमियों के संवेदनशील हृदय अनायास ही उनकी व्यापक परिभाषा कर लेते हैं। दिवाकर यह अनुभव कर सकता था कि शकुन्तला ने उसकी अनिश्चित नज़रबंदी की सम्भावनाओं के रहते कितने मानसिक संघर्षों में दिन गुज़ारे होंगे, जब कि मां-बाप नहीं चाहते थे कि वह दिवाकर के प्रति अपने मन में निष्ठा रखे। उसके मन में आवेगों का एक के बाद दूसरा सैलाब उमड़ता आ रहा था और मोह केवल भावनात्मक कृतज्ञता का नहीं था। उसकी बांहों में वह शकुन्तला थी, जिसकी उपासना में उसके सारे जीवन का रास्ता ही बदल गया था।

आलिंगन-पाश की जकड़ और भी कठिन होती जा रही थी। दिवाकर अब एक उन्मत्त नायक की तरह उसके मुख-मंडल को चुंबनों से भरता जा रहा था और शकुन्तला एक सम्पूर्ण विकसित पुष्प के समान जैसे चुंबनों की आभा से और भी खिलती जा रही थी। उसके मौन में एक आत्मिक संतोष था, जो उनींदी आंखों में नशे की तरह भरता जा रहा था। यह उन्माद का वेग समाप्त हुआ। शायद वे अपनी वियोग-व्यथा की चर्चा करना चाहते थे। दिवाकर ने टेबल पर रखे लैंप को प्रकाशित कर दिया और तब देखा कि शकुन्तला के चेहरे पर एक हल्की-सी पीतकान्ति मुखर हो उठी है। वह बोला, "प्रिय, क्या इन दिनों तुम्हें बहुत अधिक कष्ट हुआ है? क्या मां और पापा ने तुम्हारी बेहद उपेक्षा की है? किस तरह तुम्हारा चेहरा बेहाल हो गया है?"

शकुन्तला अब उससे सटकर बैठ गई थी और नीची निगाहें करके अपनी साड़ी के छोर से खेलने लगी थी, लेकिन अभी भी वह बोल नहीं सकी थी।

"कुछ बोलती नहीं हो।" दिवाकर अब जैसे व्यथित हो उठा। "क्या मुझसे बहुत ज़्यादा ख़फ़ा हो। मैं अपना अपराध मान सकता हूं, लेकिन जो कुछ हो गया है, उसके लिए यदि तुम्हारे मन में ग्लानि है, तो मेरा जीवन ही निस्सार हो जाएगा। ऐसे जीवन को लेकर जीने से क्या फायदा?"

घबराकर शकुन्तला ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया। वह जो कुछ कहना चाहती थी, कह भी न सकी कि वह हाथ जैसे चुंबक की तरह वहीं दिवाकर के होठों से चिपक गया। इस प्रेम-व्यापार में पहली बार शकुन्तला की ओर से कोई सक्रियता प्रकट हुई थी और उससे प्रेरित होकर दिवाकर का अवरुद्ध उन्माद पुनः मुखर हो उठा था। इस बार शायद वह आंख मींचकर प्रेम करना चाहता था, लेकिन बार-बार शकुन्तला उसकी बांहों से खिसकने जैसा भाव प्रकट करती थी।

लगभग एक पहर तक इसी प्रकार प्रेमालिंगन की स्थिति के उपरांत दिवाकर ने पहली बार व्यग्र होकर पूछा, "तुम्हें हो क्या गया है शकुन? क्या इतने दिन तुमने पश्चात्ताप में ही गुज़ारे हैं?"

"मुझे गलत समझने की कोशिश न कीजिए" शकुन्तला ने कहा। "क्या नीना ने अभी तक आपको कुछ बताया नहीं है?"

"क्या नहीं बताया है? बताने का अवसर ही अब तक उसे कहां मिला है! चारों तरफ भीड़-भाड़, शोर-पुकार और साथियों के स्नेह-सत्कार, अभिवादन और धिक्कार ही इन कुछ घंटों में मेरे पुरस्कार बने हैं, लेकिन ऐसी क्या नई बात हो गई है कि तुम सीधे मुंह मुझसे बातचीत नहीं कर सकती हो? नीना के माध्यम से ही मुझ तक पहुंचना चाहती हो?"

अब तक शायद शकुन्तला ने यही समझा था कि नीना ने दिवाकर से मिलकर सबसे पहले उसके अपने रहस्य का उद्घाटन किया होगा और वह चाहती थी कि दिवाकर अपने स्नेहसिक्त स्वर में उसके सौभाग्य का अनुवाद करे, लेकिन उसे तो कुछ भी नहीं मालूम है। लज्जा का ऐसा भाव उसके मन में उमड़ा कि हाथों में मुंह छिपाकर वह उससे दूसरी तरफ हट गई और फुसफुसाहट के स्वर में कहा, "मैं मां बन गई हूं।"

हर्ष का ऐसा वेग दिवाकर के मन में उमड़ा कि शकुन्तला की ठोड़ी पकड़कर उसका मुंह उसने अपनी तरफ किया तो उसे देखता ही रह गया। शकुन्तला की भावभंगिमाएं इन्द्रधनुष की तरह रंग बदल रही थीं। वह जानना चाहती थी कि दिवाकर ने इस नये संवाद को कैसे स्वीकार किया है क्योंकि इसी स्वीकृति पर उसका भविष्य निर्भर था और उपेक्षा की एक भी नज़र से उसके जीवन का समस्त संचित पुण्य अभिशाप का रूप धारण कर सकता था। लेकिन दिवाकर तो जैसे मौन समाधि में लीन हो गया है। वह उस विमुग्धावस्था को भंग ही नहीं करता था। शकुन्तला ने कहा, "प्रिय,

क्या इस नये बंधन में बंधकर तुम अपने को असमर्थ पाते हो ? लेकिन मैं तुम्हारे जीवन का रोड़ा कभी नहीं बनूंगी । तुम चाहे जितने संघर्ष करो, केवल तुम्हारी स्मृति को मन में रखकर मैं अपने एकांत को सह लूंगी ।"

"लेकिन किसने तुमसे कहा है कि मुझे संघर्ष ही प्रिय है ? जीवन की क्षमता मेरे अंदर नहीं है ? उद्देश्य की पूर्ति में जो साधना करनी होती है, संघर्ष उसमें आते हैं और जब कभी आएंगे, मैं अकेला ही नहीं वरन् तुम भी उसमें शरीक होओगी । यह तपस्या और एकांतवास तुम्हारे अपने त्याग के सूचक हो सकते हैं, लेकिन मेरे मन की स्थिति को भी क्या तुमने समझा है ? क्या मेरे प्रेम का तुम्हें यही पुरस्कार मिला है कि तुम अकेली रहकर जीवन का भार ढोती रहो और मैं सारी दुनिया में टकराता फिरूं ?"

और फिर शकुन्तला के मुखमंडल को चुंबनों से कम्पित करते हुए उसने कहा, "हमारा और तुम्हारा प्रेम केवल आध्यात्मिक नहीं है । तुम शायद अपने उस जादू से अभी तक परिचित नहीं हो, जिसकी सृष्टि करके विधाता ने दुनिया को छलने के लिए जमीन पर छोड़ दिया है । जानती हो, नागपुर से विदा होने समय मेरे मन की स्थिति क्या थी ! शायद कीर्ति न मिलती, तो मैं पागल हो जाता । तुम्हारा वियोग मुझे तिल-तिल करके घोल रहा था और अब तो मैं बाप बन चुका हूं । अब मेरे जीवन का एक उद्देश्य समाज-सेवा है और दूसरा उद्देश्य उन कर्तव्यों की पूर्ति करना है, जो कि व्यक्ति के माध्यम से मानवीय धर्म का रूप धारण करते हैं । कल तक पहले दुनिया थी और बाद में मैं था और अब पहले तुम होओगी और बाद में मैं, और मेरे माध्यम से हमारे जीवन में आनेवाली दुनिया ।"

शकुन्तला का मन दिवाकर के मुह से यही शब्द सुनने के लिए अब तक छटपटाता रहा था । हालांकि उसे विश्वास था कि दिवाकर कभी पीछे कदम नहीं हटाएगा; लेकिन मन के किसी कोने में यह आशंका छिपी अवश्य थी कि अगर दिवाकर का मन बदल जाए, तो क्या होगा ! इस व्यथा को उसने आज तक किसीसे भी नहीं बताया था । उसके दर्द को अकेले ही सहा था, लेकिन अब इस आश्वासन से उसका मन शीशे की तरह साफ हो गया था। उसकी आत्मा जैसे आप्यायित हो उठी थी और अब दिवाकर के सीने में सिर रखकर वह गहरी नींद में सो जाना चाहती थी ।

प्रात:काल दिवाकर ने सबसे पहला काम यह किया कि टेलीफोन से नीना को बुलाया और मजिस्ट्रेट के यहां से फार्म लाने और क्या कुछ होना है, इसकी जानकारी प्राप्त करने का कार्य उसके सिपुर्द कर दिया। बाद में वह पार्टी के दफ्तर में पहुंचा। अब तक वह जिस कमरे में रहता था, उसकी स्थिति बदल चुकी थी। हालांकि अपना कहने योग्य कोई वस्तु कभी उसके पास नहीं रही है, फिर भी कुछ पुस्तकें थीं और उसकी डायरियां थीं, जिनमें समय-समय पर उसने कुछ लिखा था। वे चीजें वहां पर नहीं थीं। पता चला कि शफीक साहब कभी-कभी वहां सोते रहे हैं और पुस्तकों पर मिस शान्ता ने अधिकार जमा लिया है।

विश्वानाथन से उसने कहा, "किसका किससे संबंध बदला है, इससे मेरा कोई वास्ता नहीं है, लेकिन मेरी पुस्तकें और मेरे नोट्स तो आपको सुरक्षित रखने चाहिए थे। शान्ता उन्हें क्यों ले गई? अगर आप नहीं संभाल सकते थे, तो नीना संभाल सकती थी। अब उनका क्या होगा?"

विश्वनाथन भावुक व्यक्ति नहीं हैं। शायद पुस्तकों अथवा डायरी में लिखे गए नोटों से वंचित होने की तकलीफ को भी वे नहीं समझ सकते थे। उन्होंने कहा, "कामरेड, आपके गिरफ्तार होने के बाद यहां की फिजां इस तरह बदली कि कौन चीज़ कहां है, किसीको होश ही नहीं था। नीना ने हमको आपकी इन चीज़ों के बारे में बताया था, लेकिन तब तक वे शान्ता के यहां पहुंच चुकी थीं। उस औरत से बातचीत करना हमें अच्छा नहीं लगता। आज पार्टी की बैठक में आप ही उससे बातचीत कर लीजिएगा।"

पार्टी की बैठक दोपहर के बाद जिस समय हुई, तो दिवाकर से सभापति का पद ग्रहण करने का अनुरोध नहीं किया गया। शफीक मियां ने ही यह पद सुशोभित किया। उनके दाहिनी तरफ मिस शान्ता और बायीं तरफ प्रोफेसर कमलकान्त विराजमान थे। दिवाकर को अपना वक्तव्य देना था और उसे अब यह अनुभव होने लगा था कि उसकी अपनी स्थिति एक अभियुक्त की ही रह गई है। फिर भी इस वक्तव्य से पहले शफीक साहब

ने उस बैठक के बुलाए जाने के उद्देश्य पर जो संक्षिप्त भाषण दिया, उससे साफ़ जाहिर था कि दिवाकर को या तो सक्रिय राजनीति से अवकाश ग्रहण करना होगा या फिर उनके नेतृत्व को स्वीकार करना होगा। शफ़ीक़ साहब ने अपनी तक़रीर में पार्टी का नया थीसिस बताया।

"साथियो, जयभारत मिल्स की हड़ताल के नाकामयाब होने से हमारी पार्टी को एक गहरा धक्का पहुंचा है। यह अफ़सोस की बात है कि इतनी बड़ी कुर्बानी देने के बाद भी हम मजदूरों में अपनी पार्टी के प्रति कोई श्रद्धा पैदा नहीं कर सके और उसका सबब यह था कि हमने बिना सोचे-समझे यह कदम उठाया और यह नहीं समझ सके कि उसका क्या नतीजा होगा। आज हक़ीक़त यह है कि जो मजदूर इस जद्दोजहद में काम आए, उनके बेसहारा परिवार हमें कोस रहे हैं और छुआछूत की तरह उनकी बद्दुआएं सारे मजदूर अमले में फैल रही हैं। शायद आनेवाले दिनों में हमारे लिए उनके सामने खड़े होना भी दुश्वार हो जाएगा!

"इस हड़ताल में हमारे कई ऐसे साथी कुर्बान हो गए, जिनपर हमें नाज़ था। और उसका नतीजा कुछ भी नहीं निकला। इस बारे में हमारे साथी मिस्टर दिवाकर इस हड़ताल के नतीजों पर कुछ कहेंगे।"

दिवाकर बहुत कुछ कहना चाहता था। दरअसल शफ़ीक़ साहब ने जो कुछ कहा था, हड़ताल शुरू होने से पहले की बैठक में उसने भी कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। हो सकता है कि ये बातें उसके अपने उसूल के खिलाफ़ थीं और शकुन्तला को लेकर उसके मन में जो कमजोरी आ गई थी, उसी की वजह से उसने वैसा कहा था। लेकिन साथियों के आग्रह पर उसने हड़ताल की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी और अपने हित को पार्टी के अनुशासन के लिए कुर्बान कर दिया था और अब वह एक अभियुक्त की तरह सफ़ाई पेश करने के लिए इस कटघरे में खड़ा कर दिया गया है। उससे भी अधिक तकलीफ़ उसे इस बात से हो रही थी कि जैसे-जैसे शफ़ीक़ मियां बोलते जाते थे, शान्ता की एक-एक नज़र में उसका भाग्य मुखर होता जाता था और वह शायद दिवाकर को यह बताना चाहती थी कि उसे अब पार्टी का नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। घृणा का एक ऐसा भाव दिवाकर के मन में उठ आया कि वह अपने पक्ष की वकालत करना तो दूर, उस सभा से बाहर चला जाना चाहता था। उसने आहिस्ता से कहा, "साथियो, हड़ताल का जो भी नतीजा निकला है, उससे आप ज्यादा वाकिफ़ हैं।

हड़ताल का कदम उठाया गया, तो उसके लिए किसी एक आदमी को जिम्मे-दार नहीं कहा जा सकता। मेरी अपनी राय उस वक्त भी इतना बड़ा कदम उठाने की नहीं थी, लेकिन पार्टी चाहती थी कि हड़ताल की जाए और उस फर्मान के सामने मैं एक मामूली सिपाही की तरह खड़ा हो गया था। लेकिन मैं अब किसी तरह की सफाई नहीं देना चाहता। आप दोनों ने जो सोचा और समझा है, वह ठीक ही है। भविष्य के लिए जो नीति आप निर्धारित करेंगे, वह मुझे कबूल होगी और जो काम मुझे सौंपा जाएगा, मुझे मंजूर होगा।

"मेरी गैरहाज़िरी में जो नई ज़िम्मेदारियां आप लोगों ने संभाली हैं, उनके लिए मैं मुबारिकबाद देता हूं। अब नया चुनाव करने की ज़रूरत नहीं है। पार्टी के सचिव की हैसियत से मैं अपना त्याग-पत्र आप लोगों के समक्ष पेश कर दूंगा।"

दिवाकर के इस निश्चय से सभा में कोई जुम्बिश नहीं हुई। न वैसा होने की उम्मीद थी। शफीक मियां जो तकरीर करने की उम्मीद लेकर आए थे, वह भी पूरी नहीं हो सकी और सबसे ज्यादा मायूसी शान्ता के चेहरे पर नज़र आने लगी थी। दिवाकर को यही आश्चर्य हो रहा था कि उसके इस तरह हथियार डाल देने से उसे खुशी होनी चाहिए थी, लेकिन उसकी नज़रें नीचे क्यों झुक गईं! अब वह इस पार्टी को अपनी उंगलियों के संकेत पर नचा सकती थी। लेकिन उसके सारे शरीर में बेचैनी क्यों दिखायी देने लगी!

लेकिन शान्ता को लेकर जो विचार दिवाकर के मन में आए, वे ज्यादा नहीं टिक सके। वह हार्दिक रूप में यह चाहता था कि जिन लोगों ने पार्टी की कमान संभाली है, वे सभाले रहें। इस बीच उसे अपने व्यक्तिगत दायित्वों की पूर्ति करने का अवसर मिल जायेगा। शफीक साहब से इजा-जत लेकर वह अपने कमरे में इस्तीफा लिखने के लिए चला गया।

इसके बाद क्या हुआ, उसे नहीं मालूम। वह शायद जानना भी नहीं चाहता था। जो कुछ भी निर्णय होंगे, उनकी जानकारी बाद में हो ही जायेगी और जब इस्तीफा लेकर वह पुनः बैठक में आया, तब तक बैठक खत्म हो चुकी थी। शान्ता विश्वनायन से बातचीत कर रही थी। दिवाकर ने इस्तीफा उसके हाथ में दे दिया और उनकी बातचीत में बाधा न हो, इसी कारण अपने कमरे में वापस आ गया। कमरे के किवाड़ उसने भेड़ दिए थे

और अपनी बांहों में मुंह छिपाकर वह चटाई पर लेटा हुआ था। सहसा किवाड़ खुले और किसी के अंदर आने की आहट सुनाई पड़ी। उसने मुंह उठाकर देखा तो शान्ता अन्दर आ गई थी। वह उसके पास ही चटाई पर बैठ गई थी। दिवाकर खामोश था और उसकी नजर नीची थी। वह इस संयोग के लिए तैयार नहीं था। इसलिए सामान्य औपचारिकता भी उसके स्वागत में पूरी न कर सका।

शान्ता ने कहा, "तो क्या अब आपने सन्यास लेने की तैयारी कर ली है?"

"जहां तक मुझे मालूम हुआ है, आपको मेरे इस इरादे से खुशी होनी चाहिए। क्या आप मुझे मुबारिकबाद देने नहीं आई हैं?" दिवाकर ने कहा।

"जरूर आई हूं, लेकिन राजनीति से सन्यास लेने के लिए नहीं। आपकी इस खुशकिस्मती के लिए कि आपका नया प्रेम कामयाब हो रहा है। सुना है, वह ईसाई लड़की आजकल दिल्ली में ही है और आप उससे शादी कर रहे हैं।"

"जरूर कर रहा हूं। ठीक उसी तरह से, जिस तरह से आप कर रही हैं। मैं आपको मुबारिकबाद देना चाहता हूं।"

"मैं क्या कर रही हूं? मैं भी किसीसे शादी कर रही हूं? आप मुझे इस पार्टी में इसीलिए लाए थे कि मैं किसी और से शादी करूंगी?"

उसके प्रश्न के उत्तर में जो यह नया प्रश्न शान्ता की ओर से आया था, उसका उत्तर दिवाकर के पास नहीं था। आज वह उसका उत्तर देने की स्थिति में भी नहीं है और वह भी नहीं चाहता कि पिछले अनेक वर्षों का इतिहास उसके सामने रखकर वह यह साबित करे कि इतनी कुर्बानियां करने के बाद भी वह अपने को विवाह की पात्रा नहीं बना सकी। आज भी उसके मन में यह घटना ज्यों की त्यों अंकित है, जबकि शान्ता भी [illegible] की तरह मां बन गई थी और इस मातृत्व के बंधन से अपने को मुक्त करने के बाद वह काफी दिन तक बिस्तर पर पड़ी रही थी और फिर प्रेम की नई-नई कल्पनाएं लेकर उसके समक्ष उपस्थित हुई थी। आखिर दौर में दिवाकर को उसके इस साहस पर प्रसन्नता ही हुई थी, लेकिन शायद उस समय वह यह अनुभव नहीं कर सका था कि उसके अन्तर्मन में शान्ता के इस आचरण के प्रति कितनी गहरी घृणा और विरक्ति पैदा हो चुकी है। शायद यही

कारण था कि शान्ता को लेकर वह जीवन में उन दायित्वों को ओढ़ना नहीं चाहता था जो वैवाहिक संबंध के नाते व्यक्ति के सिर पर आते हैं और इसीलिए थोड़े समय के लिए पार्टी के कामों से संन्यास लेकर उसने नागपुर की यात्रा की थी, लेकिन इस बीच शान्ता ने जो कुछ किया, जिस-जिस प्रकार नये-नये संबन्ध बनाये, उसे अपमानित किया और अपने षड्यन्त्र में इस सीमा तक सफलता भी प्राप्त की कि आज वह पार्टी का सबसे महत्व-हीन सदस्य है, तो फिर वह जले पर नमक छिड़कने के लिए क्यों उसके पास आई है, यह रहस्य दिवाकर की समझ में नहीं आता था। वह मौन रह गया था। इस मौन को भंग करते हुए शान्ता ने फिर कहा, "मैं आज आपसे माफी मांगने आई हूं। मैं अपनी हार स्वीकार करती हूं। कम से कम पार्टी तो न छोड़ो!"

शान्ता की आंखों से आंसू बह चले थे। उसका कंठ गद्गद हो गया था। वह फिर बोली, "इतना सब करने के बाद भी जो पाना चाहती थी, वह नहीं पा सकी। शायद अब भाग्यवाद का ही सहारा लेना पड़ेगा। विवाह के बाद नया घर.बसाने के लिए बहुत चीजों की जरूरत पड़ेगी। अगर गुस्ताखी न समझें, तो मेरी यह भेंट स्वीकार करें। कल तक पार्टी की सदस्यता से मेरा भी इस्तीफा दफ्तर में पहुंच जायेगा। अब मेरी लड़ाई खत्म हो चुकी है।"

पर्स उसने दिवाकर के पैरों के नजदीक ही सरका दी थी और फिर साड़ी के अंचल से अपने भीगे चेहरे को पोंछकर वह बिजली की तेजी से कमरे के बाहर निकल गई। दिवाकर को इतना भी अवसर न मिल सका कि वह उसका पर्स उसे वापस लौटा दे।

शान्ता तो चली गई, लेकिन दिवाकर के मन में अनेक उलझनें छोड़ गई। वह सोच रहा था कि लड़ाई लड़ने का यह कैसा विचित्र तरीका है! क्या इस हड़ताल को नाकामयाब कराके और पार्टी में उसे असमर्थ बनाकर वह यह चाहती थी कि वह उसके पास जाता और उसका समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे अपनी भावनाओं का अर्घ्य अर्पित करता? क्या उसे हमेशा ही उसकी समस्त गतिविधियों का पता रहा है और वस्तुतः क्या उसका राजनीति में आना केवल उसके ही कारण था? यदि आज उसके इस्तीफा दे देने की बात को सच भी मान लिया जाये तो क्या इतने थोड़े समय में इतने अधिक लोगों के प्रति अपनी मैत्री जाहिर करके वह मेरे मन में केवल

ईर्ष्या के भाव जगाना चाहती थी ?

यह सब कितना रहस्यमय प्रतीत होता है !

उसने शान्ता की दी हुई पर्स को खोल लिया। उसमें ढेर-से नोट भरे थे और वह अंगूठी भी रखी हुई थी जो मुहूर्तों पहले दिवाकर ने शान्ता को उसी के पैसे से खरीद कर दी थी। शान्ता के पर्स को खोलते समय उसका अतीत मूर्तिमंत हो उठा। कितने अवसर ऐसे आए थे, जब उसने उसकी पूंजी को अपनी ही पूंजी समझा था और वह पर्स बेगाना नहीं मालूम पड़ता था। आज भी उसे हाथ में लेकर कुछ वैसा ही भाव दिवाकर के मन में उभर आया था और वह इस उलझन के हास्यास्पद स्वरूप से प्रेरित होकर सहसा एक अट्टहास कर उठा, जिसका संभवतः कोई विशेष प्रयोजन नहीं था। लेकिन उस असमर्थतापूर्ण अट्टहास से उसके कानों में प्रतिध्वनित होनेवाला अतीत डूब गया था और वह पुनः ऐसी मनःस्थिति में आ गया था कि शान्ता के इस आचरण को किसी भी आगन्तुक के साथ चर्चा करके, उड़ा सकता था।

कुछ ही देर बाद नीना उसके पास आ पहुंची। दिवाकर के मन में वह कुतूहल जाग रहा था और वह उसे किसी भी दूसरे व्यक्ति के साथ बांट देना चाहता था। संकेत के सहारे दिवाकर ने नीना को उस पर्स को उठा लेने का आग्रह किया और कहा, "जानती हो, यह किसका पर्स है ?"

"जी नहीं ! दूसरों के बटुओं से जान-पहचान करने की विशेषता अभी मेरे अंदर पैदा नहीं हो सकी है। आप खुद बता सकते हैं," नीना ने उत्तर दिया।

"बकौल तुम्हारे यह पर्स बड़ी सरकार का है। क्या नाटक किया है उन्होंने," दिवाकर पुनः अट्टहास में डूबना चाहता था। "क्या नाटक किया है, कहती थीं, कि पार्टी से इस्तीफा दे रही हैं और इस पर्स में नोट भरे पड़े हैं। कहती थीं, नया घर बसाओगे तो पैसे की जरूरत पड़ेगी, इसे काम में ले लेना।"

"ठीक ही तो कहती थीं।" नीना सहसा गंभीर हो उठी, "कितनी औरतें दुनिया में देखी, लेकिन बड़ी सरकार का मुकाबला नहीं है और यह बड़ी सरकार का खिताब आपने ही उन्हें दे दिया था ! कहा जाता है कि पुरानी मुहब्बत कभी-कभी अचानक जाग पड़ती है। आपको अपने दिल पर भरोसा तो है ?"

अट्टहास में डूबता हुआ दिवाकर सहसा इस तरह खामोश हो गया कि जैसे बरसात में जमीन के अंदर बोलता हुआ झींगुर ऊपर से कदम पड़ने पर

कारण था कि शान्ता को लेकर वह जीवन में उन दायित्वों को ओढ़ना नहीं चाहता था जो वैवाहिक संबंध के नाते व्यक्ति के सिर पर आते हैं और इसीलिए थोड़े समय के लिए पार्टी के कामों से संन्यास लेकर उसने नागपुर की यात्रा की थी, लेकिन इस बीच शान्ता ने जो कुछ किया, जिस-जिस प्रकार नये-नये संबन्ध बनाये, उसे अपमानित किया और अपने षड्यन्त्र में इस सीमा तक सफलता भी प्राप्त की कि आज वह पार्टी का सबसे महत्त्व-हीन सदस्य है, तो फिर वह जले पर नमक छिड़कने के लिए क्यों उसके पास आई है, यह रहस्य दिवाकर की समझ में नहीं आता था। वह मौन रह गया था। इस मौन को भंग करते हुए शान्ता ने फिर कहा, "मैं आज आपसे माफी मांगने आई हूं। मैं अपनी हार स्वीकार करती हूं। कम से कम पार्टी तो न छोड़ो !"

शान्ता की आंखों से आंसू बह चले थे। उसका कंठ गद्‌गद हो गया था। वह फिर बोली, "इतना सब करने के बाद भी जो पाना चाहती थी, वह नहीं पा सकी। शायद अब भाग्यवाद का ही सहारा लेना पड़ेगा। विवाह के बाद नया घर.बसाने के लिए बहुत चीज़ों की ज़रूरत पड़ेगी। अगर गुस्ताखी न समझें, तो मेरी यह भेंट स्वीकार करें। कल तक पार्टी की सदस्यता से मेरा भी इस्तीफा दफ्तर में पहुंच जायेगा। अब मेरी लड़ाई खत्म हो चुकी है।"

पर्स उसने दिवाकर के पैरों के नज़दीक ही सरका दी थी और फिर साड़ी के अंचल से अपने भीगे चेहरे को पोंछकर वह बिजली की तेजी से कमरे के बाहर निकल गई। दिवाकर को इतना भी अवसर न मिल सका कि वह उसका पर्स उसे वापस लौटा दे।

शान्ता तो चली गई, लेकिन दिवाकर के मन में अनेक उलझनें छोड़ गई। वह सोच रहा था कि लड़ाई लड़ने का यह कैसा विचित्र तरीका है ! क्या इस हड़ताल को नाकामयाब कराके और पार्टी में उसे असमर्थ बनाकर वह यह चाहती थी कि वह उसके पास जाता और उसका समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे अपनी भावनाओं का अर्घ्य अर्पित करता ? क्या उसे हमेशा ही उसकी समस्त गतिविधियों का पता रहा है और वस्तुतः क्या उसका राजनीति में आना केवल उसके ही कारण था ? यदि आज उसके इस्तीफा दे देने की बात को सच भी मान लिया जाये तो क्या इतने थोड़े समय में इतने अधिक लोगों के प्रति अपनी मैत्री जाहिर करके वह मेरे मन में केवल

ईर्ष्या के भाव जगाना चाहती थी ?

यह सब कितना रहस्यमय प्रतीत होता है !

उसने शान्ता की दी हुई पर्स को खोल लिया। उसमें ढेर-से नोट भरे थे और वह अंगूठी भी रखी हुई थी जो मुद्दतों पहले दिवाकर ने शान्ता को उसी के पैसे से खरीद कर दी थी। शान्ता के पर्स को खोलते समय उसका अतीत मूर्तिमंत हो उठा। कितने अवसर ऐसे आए थे, जब उसने उसकी पूंजी को अपनी ही पूंजी समझा था और वह पर्स बेगाना नहीं मालूम पड़ता था। आज भी उसे हाथ में लेकर कुछ वैसा ही भाव दिवाकर के मन में उभर आया था और वह इस उलझन के हास्यास्पद स्वरूप से प्रेरित होकर सहसा एक अट्टहास कर उठा, जिसका संभवतः कोई विशेष प्रयोजन नहीं था। लेकिन उस असमर्थतापूर्ण अट्टहास से उसके कानों में प्रतिध्वनित होनेवाला अतीत डूब गया था और वह पुनः ऐसी मनःस्थिति में आ गया था कि शान्ता के उस आचरण को किसी भी आगंतुक के साथ चर्चा करके, उड़ा सकता था।

कुछ ही देर बाद नीना उसके पास आ पहुंची। दिवाकर के मन में वह कुतूहल जाग रहा था और वह उसे किसी भी दूसरे व्यक्ति के साथ बांट लेना चाहता था। संकेत के सहारे दिवाकर ने नीना को उस पर्स को उठा लेने का आग्रह किया और कहा, "जानती हो, यह किसका पर्स है ?"

"जी नहीं ! दूसरों के बटुओं से जान-पहचान करने की विशेषता अभी मेरे अंदर पैदा नहीं हो सकी है। आप खुद बता सकते हैं," नीना ने उत्तर दिया।

"बकौल तुम्हारे यह पर्स बड़ी सरकार का है। क्या नाटक किया है उन्होंने," दिवाकर पुनः अट्टहास में डूबना चाहता था। "क्या नाटक किया है, कहती थीं, कि पार्टी से इस्तीफा दे रही हूँ और इस पर्स में नोट भरे पड़े हैं। कहती थीं, नया घर बसाओगे तो पैसे की जरूरत पड़ेगी, इसे काम में ले लेना।"

"ठीक ही तो कहती थीं।" नीना सहसा गंभीर हो उठी, "कितनी औरतें दुनिया में देखी, लेकिन बड़ी सरकार का मुकाबला नहीं है और यह बड़ी सरकार का खिताब आपने ही उन्हें दे दिया था ! कहा जाता है कि पुरानी मुहब्बत कभी-कभी अचानक जाग पड़ती है। आपको अपने दिल पर भरोसा तो है ?"

अट्टहास में डूबता हुआ दिवाकर सहसा इस तरह खामोश हो गया कि जैसे बरसात में जमीन के अंदर बोलता हुआ झींगुर ऊपर से कदम पड़ने पर

खामोश हो जाता है। हंसी के स्थान पर एक आक्रोशपूर्ण गंभीरता उसके अंतर में भर उठी। बोला, "अगर पुरानी मुहब्बत में कोई सार होता तो नई मुहब्बत की शुरुआत ही न होती। इतने दिन साथ रहने के बाद तुम्हें मेरे चरित्र पर विश्वास बन जाना चाहिए था।"

"फिर इस पर्स को आपने क्यों रख लिया ? अगर शकुन्तला को इसका पता लगेगा तो आपको यकीन है कि वह बुरा नहीं मानेगी ! और उसको बुरा नहीं मानना चाहिए ?"

"वह पर्स यहां छोड़ गई और इतनी तेजी के साथ बाहर निकल गई कि मैं हक्का-बक्का-सा बैठा रह गया। पार्टी की बैठक के वक्त तुम कहां रह गई थीं ? मैंने आज अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया है, लेकिन नीना, ताज्जुब यह था कि जिस वक्त बैठक शुरू हुई, शान्ता के तौर-तरीके शरारत से भरे हुए थे, लेकिन मेरे इस्तीफा देने पर उसने चेहरा इस तरह लटका लिया कि जैसे कोई बहुत बड़ा आघात उसके मन को लगा हो। इस रहस्य को समझने की कोशिश तुमने नहीं की है ?"

"मैं उसके इस आचरण में किसी प्रकार का रहस्य नहीं देख पा रही हूं। औरतों के लिए इस तरह की हरकतों को समझना मुश्किल नहीं होता। यह आखिरी शरारत है, जो उसकी तरफ से की गई है। मुझे पूरा यकीन है कि आप इस बारे में बातचीत करना बंद कर देंगे। सोचना आप बंद करें या न करें, मन पर कोई दूसरा किस प्रकार अधिकार कर सकता है ?"

अब तो दिवाकर बेचैनी के साथ कमरे में घूमने लगा था। उसने कहा, "मैं तुमसे एक प्रार्थना करता हूं, किसी तरह मेरी किताबें और डायरियां उसके घर से ले आओ। मैं अब पार्टी के दफ्तर में नहीं रहना चाहता। मैं किसी ऐसे तत्त्व से अपना संपर्क नहीं रखना चाहता, जिससे मेरे मन में द्वन्द्व की स्थिति बने। साथी लोग जो कुछ करना चाहते हैं, उसके लिए उन्हें पूरा मौका मिलना चाहिए। मेरे यहां रहने से उनकी गतिविधियों में तो बाधा पड़ेगी ही। हो सकता है, मुझे भी अपने पक्ष की वकालत करने के लिए प्रेरित करने की कोशिश की जाए। सचाई यह है कि मैं कुछ दिन के लिए एकांत में रहना चाहता हूं।"

"मैं जानती हूं, कुछ ही दिन के लिए क्यों, आप जीवन-पर्यन्त एकांत में रहना चाहते हैं। आपका संघर्षमय जीवन अब समाप्त हुआ। मैं भी कुछ दिन के लिए लखनऊ जाना चाहती हूं। घर से पत्र आया है कि पिताजी सख्त

बीमार है।" उसने एक पत्र निकाला और दिवाकर के हाथ में दे दिया और बोली, "अब साथी लोग अपनी सुविधा के लिए एकांत जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त करना चाहते हैं। किसीके सामने कोई ध्येय नहीं है। आपसी झगड़े पार्टी के उद्देश्यों से ऊपर हो गए हैं। फिर मैं ही क्यों यहां अपना जीवन व्यर्थ बर्बाद करूं? कम से कम मां-बाप की सेवा करने का श्रेय तो प्राप्त कर लूं।"

दिवाकर फिर चकित रह गया था। वह सोच रहा था कि कल तक यह लड़की चाहती थी कि मैं पार्टी के कामों से छुट्टी पाकर अपने कर्तव्य को निबाहूं और अब, जब सब कुछ संपन्न होने की स्थिति आ गयी है, तो वह ऐसे बोल रही है कि जैसे अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए मैंने पार्टी को छोड़ दिया है। उसने मीना से पूछा, "क्या तुम सचमुच मानती हो कि मैं पार्टी के प्रति अपनी निष्ठा से डिग रहा हूं?"

"हां, जरूर मानती हूं। विवाह करने का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि व्यक्ति अपने सिद्धान्त से मुंह मोड़ ले। आपको अपने पक्ष की वकालत करनी चाहिए थी और नेतृत्व को संभाले रखना चाहिए था। इन दरिंदों के साथ पार्टी में कौन आयेगा, जो सिद्धांत से ज्यादा अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को महत्व देते हैं। कम से कम मेरी पटरी उनके साथ नहीं बैठ सकती। आप दुनिया को इतना समझते हैं, फिर भी यह नहीं समझ सके कि शान्ता के साथ दो मीठे शब्द बोलकर आप सारे वातावरण को अपने अनुकूल कर सकते थे। अगर कुछ खोया भी तो फिर से प्रेम-प्रसंग लेकर मेरे सामने बैठना चाहते हैं?"

"तो तुम चाहती थी कि मैं भी षड्यंत्रकारियों में अपना नाम लिखा लूं? अगर मेरे विरुद्ध जहर उगलने से ये लोग मजदूर अमले में पार्टी के प्रति वफादारी पैदा कर सकते हैं, तो उससे ज्यादा बड़ा उद्देश्य पूरा हो जायेगा। हमारी जिंदगी छोटी नहीं है। कल फिर ऐसा माहौल बन सकता है कि उन्हें मेरी सेवाओं की जरूरत पड़े, तब अगर मैं पीछे कदम हटाऊं, तो कह सकती हो कि मैंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सिद्धांत को छोड़ दिया है। रही तुम्हारी बात, अभी तो कुछ दिन के लिए तुम लखनऊ जाना चाहती ही हो, और फिर कुछ थोड़े दिन मेरे स्वार्थ की पूर्ति में भी तो तुम्हें पुरोहित का काम करना है। इतने में राजेंद्र भी लौटकर आ जायेगा, फिर तुम्हारे जीवन में खुशियां ही खुशियां दिखाई पड़ने लगेंगी।"

के आवरण से बाहर निकल सकी। इस थोड़े समय में ही अपनी व्यथा से वह इतनी आक्रांत हो चुकी थी कि दिवाकर को यह बताना भूल ही गयी कि यदि कीर्ति नागपुर को पत्र लिखकर अपने पिता का समर्थन इस विवाह-प्रस्ताव के लिए प्राप्त कर लेगी तो संभवतः एक हफ्ते के अंदर ही यह कार्य संपन्न हो सकता है। उसके लिए तैयारियां भी करनी होंगी। शकुन्तला हालांकि जानती है कि आप कोई बहुत धनाढ्य आदमी नहीं हैं, लेकिन फिर भी कुछ न कुछ तो करना ही चाहिए।"

"क्या करना चाहिए, मैं कुछ सोच ही नहीं सकता हूं। जो कुछ करना है, तुम्हीं करोगी।"

मीना ने पर्स हाथ में उठा लिया था और वह उसको उलट-पुलट कर देख रही थी। वह बोली, "अगर आपमें इस पैसे को इस्तेमाल करने की हिम्मत है, तो फिर सब काम पूरे हुए समझिए। इसमें शकुन्तला के लिए कुछ उपहार लाने के लिए काफी पैसा है।"

"यह पैसा मैं इस्तेमाल नहीं करूंगा। यह सही बात है, लेकिन इतना भरोसा मुझे अपने मित्रों पर है कि इच्छा ज़ाहिर करने पर इससे भी ज्यादा पैसा मुझे मिल सकता है और वह एक-दो दिन के अंदर ही तुम्हारे हाथ में आ जायेगा। मैं चाहता हूं कि यह पैसा मैं खुद ही शान्ता को लौटा दूं और उससे अपनी पुस्तकें तथा डायरियां भी ले आऊं।"

इसके बाद वे दोनों प्रेमजीतलाल के यहां चले गये। प्रेमजीतलाल ने उन्हें वह कानूनी भाषा बता दी, जो कि शकुन्तला के पिता की ओर से लिखे जाने पर मजिस्ट्रेट को स्वीकार्य हो सकती है।

मीना अभी तक जैसे किसी मानसिक ज्वर से तप रही थी। कीर्ति के घर की ओर चलते समय वह देख रही थी कि दिवाकर के मन में कोई उत्साह नहीं है। भरी हुई खीझ विस्फोट के रूप में प्रकट हो उठी, वह बोली, "दिवाकर भाई, क्या सचमुच तुम्हारे मन में इस नये जीवन में प्रवेश करने के लिए कोई उमंग-उत्साह है?"

"और कैसा उमंग-उत्साह होता है?"

"मैं सोचती थी कि आप उसके लिए इतने सक्रिय हो उठेंगे कि आपका मज़ाक बनाने का अवसर मिलेगा, लेकिन आपके लिए तो विवाह का होना या न होना एक-सा प्रतीत होता है। ऐसे कैसे चलेगा? शान्ता को भी तो आप इसी तरह छोड़कर चले गये थे, क्या वस्तुतः वैयक्तिक दायित्वों के

अपना पद छोड़ दिया। ऐसा नहीं करना चाहिए था!"

"उसके सिवा कोई चारा नहीं था। अब हम विवाह करेंगे और बाद में सोचेंगे कि क्या किया जाये।"

"लेकिन अभी आपने मुकदमे के लिए भी कुछ नहीं किया है। नीना कहती थी कि आप एक बार भी वकील साहब के यहां नहीं गये हैं। वे तो आपके मित्र हैं। उन्होंने जब आपकी रिहाई के लिए इतनी कोशिश की है, तो क्या पार्टी में आपके स्थान को सुरक्षित रखने में आपकी सहायता नहीं कर सकते थे? आप ऐसा करेंगे तो यह अपराध मेरा होगा कि मैंने आपको सार्वजनिक जीवन से छीन लिया। आप अपने रास्ते पर बढ़ते जाइए, इसी-में मेरे जीवन की सार्थकता है।"

"आप लोग मुझसे क्या चाहते हैं? मैं गद्दार नहीं हूं। जब समय आएगा, मैं पार्टी के काम-काज को सभालूंगा। इस बीच भी मुझे वे जो काम सौंपेंगे, उसे करूंगा। अब एक समय पर दो-दो काम किस तरह हो सकते हैं, तुम्हीं बताओ?"

"विवाह को आप काम कैसे मानते हैं? वह काम नहीं, इससे तो मन में उत्साह आना चाहिए था, यह बोझा तो नहीं है प्रिय! आप मुझसे अपने मन की बात क्यों नहीं कहते? क्या शान्ता ने कुछ कहा है? आपके जेल से छूटने के दिन वह बड़ी उमग के साथ गई थी, क्या उसे लेकर मन में द्वद्व खड़ा हो गया है?"

शकुन्तला के एक-एक शब्द में उसका दिल बोल रहा था। उसकी बाहें लता के समान उसकी देह पर खेल रही थीं। दिवाकर के मन में जो कुहासा छाया जा रहा था, वह छट रहा था। उसने उत्तर देना पसंद नहीं किया।

शकुन्तला आज भी बदली नहीं थी। उसकी आंखों में वही आकर्षण था, उसके स्पर्श में वही ऊष्मा थी और उसका समस्त व्यक्तित्व उसी प्रकार समर्पित था जिसे लेकर दिवाकर के जीवन का पथ ही बदल गया था। बस, केवल एक अंतर था कि अब वह एक शिशु की मां होने जा रही थी। उसने दिवाकर को आत्मसात कर लिया था। वह जैसे पूर्णता को प्राप्त हो चुकी थी और उसकी किसी भी भाव-भंगिमा से आतुरता नहीं झलकती थी। इस रात्रि को भी वह दिवाकर के सीने पर सिर रखकर इस तरह सो गई कि जैसे अपनी मंज़िल के अन्त पर पहुंच गई हो। लेकिन दिवाकर सो नहीं पाया। वह बराबर सोच रहा था कि कल क्या होगा। विवाह के बंधन में वह बंध

जायेगा और उसके साथ अवांछित दायित्व उसके कंधों पर आ जायेंगे। दायित्वों को उसने अब तक संभाला है, लेकिन इस नवीन दायित्व को संभालते हुए उसके मन में उत्साह क्यों नहीं है? क्या वस्तुतः वह अब भी शकुन्तला को उतना ही प्यार करता है?

इस उलझन से भी अधिक वह यह सोचने लगा था कि क्या वह इस उलझन मन को लेकर उसके प्रति अपने दायित्वों को निभा सकेगा? लेकिन निभाने के अतिरिक्त और रास्ता भी क्या है? इस दायित्व से भागकर वह जा भी कहाँ सकता है? बाहर का समाज है, उसके अपने साथी हैं, साथियों का विरोध है और सामाजिक बन्धन है। वह उन सबका एक साथ मुकाबला नहीं कर सकता। ठीक है, यह सब अनाहूत है, जिसे स्वीकार करना ही होगा। स्वीकार वह कर चुका है, फिर उसका मानसिक अन्तर्द्वन्द्व क्यों हो? व्यक्ति और व्यक्ति का रिश्ता सम्बन्ध की सच्चाई का मुहताज क्यों हो? मैंने जब यह संबंध जोड़ा है, तो मैं इसे निभाऊंगा ही। इसी प्रकार सोचते-सोचते रात उसकी आँखों में निकल गई।

सबेरे दिवाकर उठा तो उसकी आँखों में जलन थी। मालूम पड़ता था कि जैसे उसने रात कोई दुःस्वप्न सा देखकर गुजारी है। उसकी देह में दर्द और अकड़न महसूस होती थी और उसके रोम-रोम इस तरह जकड़े जा रहे थे कि वह बातचीत करने में भी अपने को असमर्थ पा रहा था। सबेरा होते ही मीना फिर उसके सामने उपस्थित हो गई। मीना जैसे उसकी पराजय का प्रतीक थी। जैसे रात के सुनसान अंधियारे में उसके मस्तिष्क में आने वाला एक-एक विचार मीना के चेहरे पर लिखा हुआ था। दिवाकर का उखड़ा व्यक्तित्व उसकी उपस्थिति में विशृंखल पड़ गया और अस्त-व्यस्त [illegible] के साथ मीना पूछ रही थी, "लगता है रात आराम से नहीं गुजरी!"

यह प्रश्न इतनी सरलता से पूछा गया था कि उसके दोनों ही मनःस्थितियों में अति सुस्पष्ट और आश्चर्य की भावना थी, लेकिन मीना से यह छिप नहीं सका। प्रेम और मित्र इन दोनों के व्यवहार से उसका पूरा परिचय है और वह जानती है कि दिवाकर की आँखों में प्रेम का अभाव नहीं है। दिवाकर उसकी नज़र से नज़र से नहीं मिला पाता है। मीना बहुत समझदार है। मीना ने मुस्कराते हुए मुख को दिवाकर से छिपाते हुए वह बोली, "लगता है, आपकी रात में कोई [illegible]

घबराहट की बात क्या है ? दुनिया में छोटे और बड़े, सामान्य और असामान्य सभी लोग विवाह करते हैं। यह ज़रूरी नहीं कि विवाह जीवन के महान दायित्वों की पूर्ति में बाधक बने और फिर शकुन्तला जैसी आस्थावान लड़की को जीवन-साथी के रूप में पाकर अपने को धन्य मानना चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि उसके जीवन में एक क्षण भी ऐसा नहीं आयेगा कि वह आपकी आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक बने या आपको सार्वजनिक जीवन से विमुख करने की प्रेरणा दे। फिर क्यों नहीं आपके चेहरे पर उल्लास झलकता है ?"

नीना के चेहरे पर इतनी अधिक बेचैनी थी कि जैसे वह स्वयं ही उससे विवाह करने जा रही हो और भविष्य में इस उत्साहहीन जीवन-साथी के साथ निर्वाह न कर सकने की भावनाएं एक बोझ बनकर उसके मन पर बैठ गई हैं। दिवाकर को कोई उत्तर सूझता नहीं था। रात-भर चिंतन करके भी वह अपने मन की थाह को नहीं समझ पाया था। विवाह के प्रति उसके मन में उत्साह नहीं है, यह वह जानने लगा था, लेकिन विवाह न करने से ही उसके समस्त अंतरप्रदेश में भय की एक घनीभूत सिहरन पैदा हो जाती और एक दर्द के साथ वह पुनः अपने को यह आश्वासन देता कि नहीं, वह कर्तव्य से भागने वाला एक भीरु व्यक्ति नहीं है, लेकिन वह बराबर इस उलझन में था कि जो कुछ हो गया है, उसके प्रति शकुन्तला कितने संतोष की भावना से भर उठी है और वह स्वयं उतना ही रिक्त होता जा रहा है।

नीना ने फिर पूछा, "यदि इस मानसिक स्थिति में आपने विवाह कर भी लिया तो आप इस संबंध को कितने दिन निबाह पायेंगे, यह मैं समझ सकती हूं। मैं अब भी कहती हूं कि आप अपने को पहचानिए। आपके एक-एक आचरण और एक-एक दृष्टि-निक्षेप से उस गरीब लड़की के जीवन का निर्माण और विनाश हो सकता है। केवल उसीका भविष्य आपसे संबंधित होता, तो शायद वह अपने आंसू पीकर बैठ जाती, लेकिन उसके साथ दूसरा और है। सामाजिक मर्यादा की पूर्ति किये बिना वह उसे किस अभिमान से स्वीकार करेगी और कौन-से भविष्य की आशा अपने आंचल में सहेज कर उसे जन्म देगी ? मैं आपको पहले से जानती थी, लेकिन इतना न जानती थी कि आप आदमी नहीं हैं, निरे पत्थर हैं।"

दिवाकर फिर भी चुप था। उत्तर उसके पास था ही नहीं। अंदर से नाश्ते के लिए बुलाया आ गया। घर में विवाह की तैयारियों की हलचल बढ़

गई थी और कीर्ति के पैर जैसे ज़मीन पर ही नहीं पड़ते थे। किसी भी क्षण नागपुर से पापा के पत्र के आ जाने की वह बार-बार चर्चा करती थी। उसने दिवाकर या शकुन्तला को किसी असमंजस में नहीं पड़ने दिया। विवाह के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं आ गई थीं। शकुन्तला के लिए उपहार भी आ रहे थे और एक बार भी न शकुन्तला को अपनी पर्स खोलनी पड़ी और न दिवाकर के सामने अपने मित्रों का कृतज्ञ होने का अवसर आया।

इसी तरह कई दिन गुज़र गए। दिवाकर प्रेमजीतलाल के पास जाता और मुकदमे की पैरवी के बारे में तफसील के साथ बातचीत होती, लेकिन उसके मन में जैसे अपनी मुक्ति के प्रति कोई उत्साह नहीं था। प्रेमजीतलाल कई बार आश्चर्य प्रकट करते कि उसे हो क्या गया है? वह यह भी समझाते कि पूरी तरह से बरी होकर उसे अपना राजनीतिक जीवन पुनः व्यवस्थित रूप से शुरू करना चाहिए और पार्टी के कार्यों को स्वार्थी साथियों के हाथ में न छोड़कर स्वयं संभालना चाहिए। लेकिन दिवाकर हां और ना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कह पाता था। प्रेमजीतलाल कई बार थोड़ा विनोद करते और कहते, "माना कि तुम्हें जीवन-साथी के रूप में एक असाधारण लड़की प्राप्त हो गई है लेकिन इतनी आसक्ति नहीं होनी चहिए कि इतनी लंबी तपस्या का ऐसा निराशापूर्ण अंत हो। पार्टी के साथियों के प्रति भले ही तुम्हारे मन में विरक्ति पैदा हो गई हो, लेकिन उससे अपनी आस्था के प्रति तो झूठा नहीं साबित होना चाहिए। लोग तुमसे कितनी उम्मीदें बनाए हुए हैं।"

संभवतः यही वह प्रसंग था, जिसके बार-बार उपस्थित होने पर दिवाकर के मन में एक टीस पैदा हो जाती और वह व्याकुल होकर यह सोचता, 'हां, उसे आसक्त होना चाहिए था। हां, उसे ऐसा ही जीवन-साथी मिला है। लेकिन आस्था क्या?'

दिन और रात के चक्र से उसका जीवन गुज़र रहा था। चारों तरफ के जीवन-व्यापार में उसने कहीं भी अपनी निजता को नहीं जोड़ा था। नागपुर से मि० जोज़ेफ का पत्र आ गया था। उसमें उन्होंने विवाह को अपना समर्थन दे दिया था और अब विवाह की तारीख तय करना बाकी था।

मीना अब उससे बातें नहीं करती। वह जैसे अनागत की अनिश्चयात्मकता के प्रति आश्वस्त हो गई है। वह उस गांठ को खोलना नहीं चाहती। दिवाकर जैसे अब उसके चिंतन में अनस्तित्व हो चुका है। उसके सामने केवल शकुन्तला है। उसका समस्त त्याग शकुन्तला के प्रति एकाग्र हो चुका है। वह उसीके

साथ रहती, हंसती, बोलती और ठिठोलियां करती। अलौकिक मानवीय भावनाओं को शकुन्तला के मुखमंडल पर अठखेलियां करते देखती है तो उसकी अपनी व्यथा समाप्त हो जाती है।

दिवाकर भी हंसता है। बोलता है। गंभीरता उसका स्वभाव बन गया है। परन्तु उसका हृदय उस गंभीरता के आवरण में छिप नहीं पाता है। विवाह के पहले की रात जब दिवाकर घर में आया, तो शकुन्तला उसके चेहरे को देखकर मग्न रह गई। उसके साथ एकांत कक्ष में बैठकर अपने दिन के कार्यक्रम की चर्चा करना वह जैसे भूल ही गई। आज दिन-भर घर में यह चर्चा चली थी कि मजिस्ट्रेट के सामने शपथ ग्रहण करने के बाद, अगर दिवाकर को आपत्ति न हो, तो वे दोनों चर्च में भी जा सकते हैं। लेकिन शकुन्तला किसी प्रकार भी यह साहस न जुटा पाई कि वैसी चर्चा दिवाकर से करे।

उसने कहा, "विवाह की रस्म पूरी होने के बाद आप क्या करना चाहेंगे? क्या अपने मित्रों को कोई पार्टी देनी है?"

' पार्टी देकर ही क्या होगा, सिवा इसके कि जितने मुंह होंगे, उतनी ही बातें सुनने को मिलेंगी। दुनिया में सभी तरह के लोग होते हैं। क्या भरोसा, कोई यही कह उठे कि विवाह तो हो चुका है, अब तो ढोंग किया जा रहा है।"

"दुनिया क्यों कहेगी? दुनिया और क्या करती है। आपने ही ऐसा कैसे सोचा, मुझे यही जानकर आश्चर्य होता है। क्या आप भी इसे ढोंग मानते हैं?"

"ढोंग तो नहीं मानता, पर मैं यह जरूर सोचता हूं कि तुम्हारा और मेरा जो रिश्ता बनना था, वह बन चुका है। मजिस्ट्रेट के सामने शपथ लेने से उसमें कोई नई बात पैदा नहीं हो जायेगी। विवाह की वेदी पर या मन्दिर और गिरजाघर में जाकर शपथ ग्रहण करने के बाद भी लोग अपने कर्तव्य को नहीं निभाते। सामाजिक सुरक्षा के लिए यह सब दिखावा होता है। पारस्परिक भावना पर भरोसा न रखकर ऊपरी सामाजिक सुरक्षा पर भरोसा करने लगते हैं। तब विवाह एक अभिशाप बन जाता है। मैं समझता हूं कि हमारे विवाह में किसी बाहरी सुरक्षा की जरूरत नहीं है। इतना ही काफी है कि हम मजिस्ट्रेट के सामने शपथ ग्रहण कर लें। अगर तुम्हारी भावनाओं का ध्यान न होता तो मैं इस औपचारिकता को भी जरूरत नहीं समझता था।" दिवाकर ने कहा।

तो क्या यही द्वंद्व इतने दिन से आपके मस्तिष्क में चल रहा है ? रिहा होने से पूर्व मैंने भी यही निश्चय कर लिया था कि जो कुछ हो गया है, उसके दायित्व को मैं स्वयं ही निबाहूंगी, लेकिन प्रिय, हमें ज में रहना है । समाज के संतोष के लिए भी तो कुछ करना पड़ता है ! कन अगर इससे आपके मन पर बोझ पड़ता है, तो साफ-साफ कह दीजिए । मजिस्ट्रेट के सामने भी नहीं जाऊंगी । जो होना था वह हो चुका है । अब पचारिकता को लेकर ही हमारे मनों में विरोध क्यों पैदा हो, लेकिन यह त आपको शुरू में ही कहनी चाहिए थी । सब तैयारियां हो चुकी हैं । गर अब हम पीछे कदम हटाते हैं, तो मेरी दीदी का दिल ही टूट जायेगा ।"

शकुन्तला ने जो कुछ कहा था वह दिवाकर के प्रश्न के उत्तर में कहा था, लेकिन अंदर ही अंदर वह सिहर उठी थी । अब उसके स्वर में सख्ती आती जा रही थी, "कितने समय तक हम साथ रह सकेंगे, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता । मैं हमेशा ही दीदी के सिर का भार नहीं बनी रह सकती । ऐसी स्थिति में नागपुर भी लौटकर नहीं जाऊंगी । कम से कम ऐसी स्थिति तो बन जाये कि अकेले रहकर भी मैं समाज में मुंह दिखाने लायक बन जाऊं ।"

उसकी आंखें डबडबा आई थीं । अंतर में एक नया द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ था । उसे लगा कि जैसे उसका भविष्य एक रेगिस्तान के समान है, जहां दूर-दूर तक कोई हरियाली नहीं, कोई छाया नहीं, कोई शीतलता नहीं, कोई सहारा नहीं ! अपने अंतर में उस व्यथा को संजोए वह उस क्षण दिवाकर के सामने से हट गई । वह कल्पना ही नहीं कर पाती थी कि इतनी-सी औपचारिकता को लेकर भी दिवाकर के मन में विरक्ति पैदा हो सकती है । वह क्या कहकर अपनी व्यथा को प्रकट करे, समझ में नहीं आता था । मन होता था कि उस समस्त औपचारिकता को लात मारकर वह कहीं दूर भाग जाये औ अपने जीवन का अंत कर दे । कभी मन में आता कि अपनी पूरी शक्ति चीखकर वह दिवाकर के कानों को भेद डाले और कहे कि जीवन केवल विचा का नाम नहीं है । तुम विचारक हो सकते हो, लेकिन मेरी कोख में एक ब बड़ी हकीकत पल रही है । मैं एक बच्चे की मां होने वाली हूं । उसे ले समाज में मुझे रहना है !

और दिवाकर !

शकुन्तला के प्रश्न का भी उसके पास कोई उत्तर नहीं था ।

के प्रश्नों का भी उसके पास कोई उत्तर नहीं था। वह स्वयं किस द्वन्द्व में पीड़ित है, उसे यही पता नहीं चल पाता था। एकान्त में बैठे-बैठे उसका मन कभी-कभी इतना बिखर जाता कि आंसू बहने लगते, होंठ सूख जाते और कभी-कभी जोरों से चक्कर आने लगते। उसे अच्छी तरह मालूम था कि गलती कहीं उसीके अन्दर है, पराजय कहीं उसीके अन्तर्प्रदेश में छिपी हुई है। शकुन्तला उसमें कहीं दोषी नहीं है। लेकिन वह क्या है, जब सोचते-सोचते उसका सिर भारी हो जाता है तो वह सबके बीच लौट आता और जो काम उसे नहीं करने चाहिए थे, उन्हें भी करने लगता। नीना उसके इस आकस्मिक परिवर्तन को परिलक्षित करके चार कदम आगे बढ़ जाती।

विवाह की तैयारियां उसी तरह पूरी हो गईं।

जिस दिन सदस्य-ग्रहण की औपचारिकता पूरी हुई और शाम को शादी की दावत हुई, तो दिवाकर को अनुभव हुआ कि उसके नये जीवन का श्रीगणेश हो गया है। नये-पुराने बहुत-से साथी थे, दूसरे राजनीतिक दलों के नेता भी थे और समाचारपत्रों के संवाददाता और फोटोग्राफर भी थे। सभी आनंदित थे, सभी चुहल कर रहे थे और शकुन्तला जो अब श्रीमती दिवाकर बन चुकी थी, इस उत्तेजनापूर्ण वातावरण के भार से दबी जा रही थी। उसका सलज्ज सौंदर्य उपस्थित महिलाओं के लिए जैसे एक चुनौती था, जिसके प्रभाव से उनके कौतुक, लालसाएं और अभिमान खंड-खंड हो जाते और लोग निर्निमेष उसके प्रदीप्त मुख-मंडल को देखते रह जाते।

इस पार्टी की सबसे खुली और सक्रिय कारकुन थीं—नीना और कीर्ति। शकुन्तला की नजर बचाकर नीना ने दिवाकर को यह भी बता दिया था कि 'बड़ी सरकार' पार्टी में नहीं आई हैं। उनकी तबीयत खराब है। उन्होंने एक उपहार भिजवाया है। कीर्ति के पास है। उसे घोषित न करने की प्रार्थना भी की है। इसी कारण किसीको बताया नहीं गया है।

अगले दिन समाचारपत्रों में चित्र छपे, रोचक समाचार प्रकाशित हुए, उनमें राजनीति भी थी। कुछ ने तो पार्टी के आन्तरिक संघर्ष की चर्चा करते हुए इस घटना को दिवाकर के सक्रिय राजनीति से सन्यास ग्रहण करने का प्रतीक भी बताया था। लेकिन इन समस्त हलचलों से अछूता, हर्ष और विषाद की मूर्ति बना दिवाकर जैसे किसी स्वप्नलोक में विचर रहा था। बार-बार सबकी नजरें बचाकर वह शकुन्तला को देख लेता था। उसे लगता था कि शादी केवल शकुन्तला की हुई है। वह स्वयं एक दर्शक मात्र है। अपनी इस

निस्संग आत्मा से वह खिन्न था, उद्विग्न था। कम से कम उस क्षण के लिए वह अपने को मार डालना चाहता था, लेकिन वैसा एक क्षण के लिए भी वह नहीं कर सका।

रात्रि को उसी प्रकार शृंगार-विभूषित शकुन्तला उसके पास आई थी, तो उसकी आंखों में केवल आंसू थे। लगभग आधा घंटे तक उसके सीने को आंसुओं से तर करके वह सो गई थी और शकुन्तला को गहरी नींद में सोते छोड़कर वह कई घंटों तक बाहर चांदनी में घूमता रहा था! सोच रहा था—सभी लोग उसके सुख से आनंदित थे। वह क्यों आनंदित नहीं हो सका। वह वह क्यों सुखी नहीं होना चाहता। क्यों वह सुख से भागता है, लेकिन फिर भी क्यों वह अपनी ऐन्द्रिकता को मार नहीं सका? क्यों उसने शकुन्तला को प्यार किया, क्यों उसने शान्ता को प्यार किया था? क्यों आज सब ओर से विरक्ति ही उसे अपने प्राणों में भरती नजर आती है? किससे वह उस व्यथा का मर्म पूछे? नीना से आंखें मिलाते भी भय लगता है। कपूर को विलायत भेजने के पीछे उसीकी प्रेरणा थी। नीना आज वंचिता है, वह यह सिद्ध कर देना चाहती है कि पुरुष का त्याग और साधना उसके स्वार्थी अहं की पूर्ति का दूसरा नाम है। उसने यह साबित कर दिया है। वह नीना और शकुन्तला के समर्पित प्रेम के समक्ष अपने सर्वस्व का उत्सर्ग कर देने के अभिमान को पराजित पाता है। वह कौन-सा मार्ग चुने कि उसका आपा बचा रह जाये? नहीं सूझता, नहीं सूझता।

जैसे वसन्त के बाद आतप का आगमन होता है, शादी के बाद वैसे ही सारे वातावरण पर एक उदासीन भाव छा जाता है। कीर्ति की अपनी समस्याएं, जो इस तूफान के बीच दब गई थीं, अब सहज रूप धारण करके सामने उपस्थित हो गई। वह अब शकुन्तला को दिवाकर को सौंपकर कश्मीर भाग जाना चाहती थी। नीना को अपने पिताजी की बीमारी का ज़ोरों के साथ ख़याल आने लगा था और शकुन्तला यह सोचने लगी थी कि काश, दिवाकर किसी प्रकार उस मुकदमे से बरी हो जाए। और दिवाकर कुछ भी नहीं सोच रहा था।

नाश्ते के समय सभी लोगों ने अपनी-अपनी समस्याएं सामने रखीं। कीर्ति का कश्मीर जाना तय हो गया। यह भी तय हो गया कि नीना एक हफ्ते के अंदर लखनऊ चली जाएगी। शकुन्तला और दिवाकर उसी घर में रहेंगे। सभी ने यह आशा प्रकट की थी कि दिवाकर उस मुकदमे में ज़रूर बरी हो

जाएगा। लेकिन अब वह किसीसे कुछ नहीं कहना चाहती थी। उसने घोषित कर दिया था कि किसी भी स्थिति में वह नागपुर नहीं जाएगी।

दिवाकर अब पार्टी के कार्यालय में नियमित रूप से जाने लगा था और प्रेमप्रकाशलाल के साथ बैठकर मुकदमा लड़ने की तैयारियां भी करने लगा था। सब लोगों के चले जाने से चारों तरफ सुनसान नज़र आता था। दिवाकर बाहर चला जाता तो शकुन्तला अकेले में घबरा उठती। उसे हमेशा यही अनुभव होता कि वह लौटकर नहीं आएगा। और जब शाम को लौट आता, तो उसके मन में खुशियां नाच उठतीं। उसने नन्हे-मुन्ने के लिए सुन्दर पोशाकें बनाना शुरू कर दी थीं। एकांत में बैठकर वह अपने भावी शिशु से बातचीत करती, उसकी थिरकनें गिनती और उस मीठे दर्द से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता। खाली समय में पत्रिकाएं पढ़ती और बच्चे के प्रति मां के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालने वाली अच्छी-अच्छी रचनाओं की ओर भी ध्यान से पढ़ती। सन्ध्या को दिवाकर के साथ घूमने जाती और उसके कंधे का सहारा लेकर दूर तक निकल जाती, थक जाती, लेकिन कभी थकान की शिकायत न करती। दिवाकर के कंधे पर वज़न बढ़ने लगता तो वह पास से गुज़रने वाली सवारी को रोक लेता और तब आनंद-विभोर होकर वह उसकी गोद में सिर रखकर अपनी थकान को भूल जाती।

दिवाकर अब भी ज़्यादा नहीं बोलता था। लेकिन अंदर ही अंदर उसे कुछ परिवर्तन अनुभव होने लगा था। वह दिन-भर की व्यस्तता को घर आकर भूल जाता। कभी-कभी गंभीर से गंभीर बातचीत को सहसा बीच में ही समाप्त कर देता और घर लौट आता। घर आकर शकुन्तला की नज़र बचाकर उसके चेहरे को देखता, उसके अंग-प्रत्यंग को देखता, उस आत्म-विस्मृत कर देनेवाले अनुराग में उसके अपने सभी प्रश्न और सभी आशंकाएं डूबी हुई-सी लगतीं। तब वह एक मामूली आदमी रह जाता, जिसके जीवन में खाना-पीना, काम करना और अपने संयुक्त जीवन के लिए भविष्य की कल्पनाएं करना बाकी रह गया था। इस स्थिर मनःस्थिति को लेकर वह घबरा उठता। उस जीवन से दूर भाग जाना चाहता। अप्रसन्नता ही जैसे उसके जीवन का मर्म थी और वह अपने समस्त जीवन को एक उत्तर बना देने का अरमान लेकर जीवन-क्षेत्र में उतरा था।

ऐसी ही मनःस्थिति में वह एक बार और भागा था। नागपुर जाने का उसका प्रयोजन कुछ भी नहीं, कुछ ऐसी ही रिक्तता से मुक्ति पाने का था

और उसके बिना जाने ही वह रिक्तता भर गई थी। लेकिन, जिस तत्त्व ने कल उस रिक्तता को पूरा किया था उसके कारण अब सब सुनसान नजर आता है। जीवन के किसी भी विभाग में उसे कोई दिलचस्पी बाकी नहीं रह गई है। शकुन्तला के साथ आने पर भी वह बराबर उसी मार्ग पर क्यों नहीं बढ़ सका—यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठता और वह उसका उत्तर शकुन्तला के चेहरे पर देखने की कोशिश करता। लगता कि जैसे मोम को कांसा समझकर उसने जलती लौ के पास रखने की कोशिश की है। उसके मन में कुछ ऐसी उलझन भर गई थी कि किसी भी भाव के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा का उदय नहीं हो पाता और वह आंखों वाले अंधे की तरह राह टटोलता रह जाता।

मन की अंधियारी गलियों में भटकते हुए दो मास गुजर गये। फिर एक दिन जब दिवाकर अदालत में गया तो संध्या तक नहीं लौटा। प्रेमजीतलाल मुर्झाए-से शकुन्तला की ड्योढ़ी पर आये और कहने लगे, "चलिए, उनसे मिल लीजिए। अब एक साल बाद लौटकर आयेंगे।"

यह समाचार सुनकर शकुन्तला की आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। पुनः उसकी चेतना लौटी, तो वह बिलकुल खामोश हो गई थी। सींखचों के पीछे दिवाकर हमेशा की तरह शांत, निर्विकार और निस्संग भाव से खड़ा था। आज वह शकुन्तला को अच्छी तरह से दिखाई नहीं दे सका। जैसे एक झीना-सा आवरण उसके चेहरे पर पड़ा हुआ था। उसकी आंखें बार-बार डबडबा आती थीं, बार-बार पोंछने पर भी, एक निमिष के लिए भी उसकी आंखें साफ नहीं हो सकीं। दिल दरक-दरक उठता। दिवाकर ने उसके हाथों का स्पर्श किया था। बिना बादलों के एक बूंद जैसे आसमान से टपक पड़ी हो। तब उस शीतल स्पर्श से शकुन्तला की नजर साफ हुई थी और वह साहस से भर उठी थी। और बोली थी, "मेरी चिन्ता न करना। तुम्हारे स्नेह का संबल लेकर इतना समय काट लूंगी। मैंने कभी तुम्हें बांधना नहीं चाहा है। वायु और प्रकाश की तरह तुम सबके हो, मुझे स्वार्थी मानकर अपने को कभी खिन्न नहीं होने देना। एक वर्ष पलक मारते कट जायेगा और तब तुम्हारे स्वागत के लिए मैं अकेली नहीं रहूंगी।"

शकुन्तला जैसे अपनी पीड़ा के विरुद्ध विद्रोह कर उठी थी।

कैसा वह विद्रोह था। कैसा वह मिलन था। दिवाकर अब भी खामोश था। उसके चेहरे पर एक के बाद दूसरा भाव आता था, और तिरोहित हो

जाता था। किस भावना के वशीभूत उसकी आंख से यह आंसू टपक पड़ता था, उसे अभी भी अच्छी तरह मालूम नहीं था और प्रेमकिशनलाल वक्त समाप्त होने के बाद शकुन्तला को लेकर चले आये थे। दिवाकर को विदा देनेवालों में बहुत लोग थे। शकुन्तला ने किसीको नहीं देखा।

घर आकर तो उदासी गहराई जाती थी। कुछ दीखता ही नहीं है। फिर भी धड़कन बढ़ती ही जाती है। सारे मानस-प्रदेश में विचार की कोई कड़ी दिखाई नहीं देती। उसके गहरे सांस दीवारों से टकराकर लौट जाते हैं, आगे जहां टिक जाती हैं, छुड़ाये नहीं छूटतीं। बस सारी देह में दिवाकर गूंज रहा है। दिवाकर जैसे हमेशा के लिए चला गया है।

रामप्रसाद भी गमगीन है। कीर्ति बीबी के कश्मीर जाने के बाद वह कुछ दिन के लिए अपने देश में जाना चाहता था, लेकिन शकुन्तला को अकेली छोड़कर जाने का विचार भी वह अपने मन में नहीं आने देना चाहता। वह देखता है कि शकुन्तला की उदासी घनी है और वह यह जानता है कि इतनी उदासी लेकर वह एक साल प्रतीक्षा नहीं कर सकेगी। अवसर देखकर वह कुछ न कुछ बोलता ही रहता है, "बड़ी बीबी कश्मीर में ज्यादा नहीं ठहरेंगी। आप चिट्ठी लिखेंगी, तो और भी जल्दी लौट आयेंगी। आपको उदास होने की क्या जरूरत है। इतने लोग आपके चारों तरफ हैं। कौम की खिदमत करने वालों की जिंदगी तो ऐसी ही होती है। एक पांव घर में, एक पांव जेल में। बड़े मर्द लोग होते हैं, दुनिया में। हमारे दिवाकर जी लाखों में एक हैं। उनके पैर छूने को जी चाहता है।"

रामप्रसाद की बातें सुनकर शकुन्तला का मन भर आता है। बड़े स्नेह से वह खाना-पानी लाता है, खाना लगाता है। मुंह में कुछ भी डालने का मन नहीं होता। लेकिन रामप्रसाद बराबर उस वक्त तक पास ही खड़ा रहता है, जब तक वह खाना शुरू नहीं कर देती। और तब शान्त अंगोछा फटकार कर वह कंधे पर डाल लेता है। शकुन्तला जैसे उसे ही खुश रखने के लिए खा लेती है। अभी तक उसने कीर्ति, नीना और बेटी को पत्र नहीं लिखे हैं। वह अपनी पीड़ा को किसीसे बांटना नहीं चाहती। शायद यही पीड़ा उसका सुख है, जिसे वह अकेली ही अनुभव करना चाहती है।

धीरे-धीरे उसका दैनिक जीवन आरम्भ हो रहा है। इस परिवर्तन से हर्षित होकर रामप्रसाद और भी वाचाल हो जाता है। "बहुत दिनों की बात है, बीबी जी," रामप्रसाद कहता है, "हमारे देश में सन् बयालीस की

जंग छिड़ी थी। हमारे गांव के ठाकुर का बेटा शहर से लिख-पढ़कर आया था। कैसा सजीला जवान था। बाप से छुप-छुपकर वह अंग्रेज़ के खिलाफ लड़ाई करता था। फिर एक दिन उसकी शादी होने लगी। विवाह के फेरे पड़ रहे थे कि पुलिस की दौड़ आ गई। लेकिन उसके चेहरे पर शिकन भी नहीं आई। भारतमाता की जय-जयकार करता हुआ वह अंग्रेज़ सार्जेंट के साथ चला गया। बहुत दिन बाद खबर आई कि एक दिन जेल से भागते हुए उसे गोली लगी और खत्म हो गया। लेकिन उस लड़की ने फिर शादी का नाम नहीं लिया। कैसे-कैसे लोग दुनिया में होते हैं। इन्हीं लोगों से गरीबों का भला होता है बीबीजी! गरीब को तो पेट की तरफ से ही छुट्टी नहीं मिलती।"

शकुन्तला को अच्छी तरह मालूम था कि रामप्रसाद अज्ञात नायकों की कहानी किसी उद्देश्य को लेकर ही सुनाता है। उनके अपने उदाहरण से उसके अतीत की स्मृतियां जाग उठती हैं। शकुन्तला उसके संवेदनशील अंतर की इस ऊष्मा से अपनी उदासी भूल जाती है। कभी-कभी आत्माभिमान इस तरह जाग उठता है कि पागलों की तरह हंसती-चहकती निरुद्देश्य घर-भर में चक्कर काटने लगती है और जो काम सामने होता है उसे क्षण-भर में खत्म कर डालती है। लेकिन यह मनःस्थिति ज़्यादा देर नहीं टिक पाती।

वह अकेली रह जाती तो भावी जीवन की कल्पनाएं करके उसकी सांस उखड़ जाती। वह सोचती कि अब उसे अपना सारा जीवन इसी तरह तपस्या में गुज़ारना है। पग-पग पर आने वाली समस्याएं उसे घेरने लगतीं। खाना-पीना, शिक्षा-दीक्षा, घर-बाहर सभी की समस्याएं। उनके उत्तर में केवल एक ही संतोष था कि वह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक जीवन-साथी चुन सकी है। अभाव और असुविधाएं रेल-पेल के साथ उसके मन में छाई जातीं और भरी आंखों से वह उन्हें अवसादित-सी ठेलती रहती। सुबक-सुबक कर कहती जाती : हां, मैंने विपदाओं का वरण किया है। मैं सुख नहीं चाहती। लगता कि जैसे वह किसी जंगल में फंस गई है और धोखे से उसने शहद की मक्खियों के छत्ते में हाथ डाल दिया है और अब उनसे कोई छुटकारा नहीं है।

निराशा की यह विप्लवी लहर एक क्षण में ही उसके मस्तिष्क को इतना झकझोर देती कि फिर उसके रोम-रोम में अवसाद छा जाता, और

आंखें बंद करके वह बिस्तर में डूब जाती। अपने मन की वेदना को बांटने के लिए उसके पास कोई सहारा नहीं था। वह चाहती तो कीर्ति को पत्र लिख सकती थी। मीना ने भी पत्र लिखने का आग्रह किया था और बेटी को तो वह लिख ही सकती थी। लेकिन न जाने क्यों वह किसीको भी लिखना नहीं चाहती। उसे लगता था कि यदि उसकी भावनाओं का बांध टूट गया तो उसकी दुर्बलताएं सारी दुनिया के सामने उजागर हो जाएंगी।

दुर्बलता उसके मन में थी और वह दुर्बलता दिवाकर के उस व्यवहार के कारण पैदा हुई थी जो विवाह से पूर्व और उसके बाद के दिनों में अनायास उसके मन को भेद गया था। वह जानती थी कि दिवाकर के मन में कोई उत्साह नहीं है और कभी-कभी वह जानकर भयभीत हो उठती थी कि भविष्य में यदि वैसा ही उदासीन दिवाकर पति के रूप में उसे प्राप्त होता है, तो कौन-सा उत्साह लेकर वह जीवन को आगे चलाएगी। दिवाकर चला गया। कोई उत्तरदायित्व उसने अभी तक नहीं निभाया था। वह इस उदासीनता को उसकी प्रकृति का अंग मानकर अनदेखा कर देती। लेकिन कहीं कोई आत्मीयतापूर्ण भावना उसके चेहरे पर कभी उसे दिखाई नहीं पड़ी। तो क्या वह वासना मात्र थी? क्या उसे केवल देह समझा गया? वह सिहर उठती। जिस संबंध के लिए उसने अपने माता-पिता की भावनाओं को ठेस पहुंचाई, और कठिनाइयों से नाता जोड़ा, क्या उसका यही अंत होना था?

अपनी इस व्यथा को वह जाहिर करना नहीं चाहती। भय और आशंका के भंवर में फंसने के बाद उसे यह आशा सदैव बनी रहती थी कि दिवाकर इस संबंध की गरिमा को निश्चय ही पहचानेगा। इस मानसिक परिवर्तन के लिए उसे बलिदान करना है। अपने प्रिय जनों के विरुद्ध मुंह से निकाला गया एक भी वाक्य उसी तरह दूसरों की संपत्ति बन जाता है, जिस तरह धनुष से छोड़ा हुआ बाण तरकश में लौटकर नहीं आता।

कुछ बाद मीना का पत्र पाकर जैसे उसे सहारा मिल गया।

मीना ने अपने पत्र में लिखा था: "प्रिय शकुन्तला बहिन, मैं सोचती थी कि आप पत्र लिखेंगी। जिस तरह की मानसिक स्थिति से आप गुज़र रही होंगी, उसकी कल्पना मैं कर सकती हूं। मेरे मन का संघर्ष भी आपके संघर्ष से भिन्न नहीं है। लेकिन आपकी सहनशक्ति के सामने मैं अपना सिर झुकाती हूं।

"जिस तरह आपने दिवाकर भाई से संबंध जोड़ा है, इससे कुछ मिलती-जुलती ही मेरे सम्बन्ध की कहानी है। मि० कपूर ट्रेड यूनियन के संचालन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विलायत गए थे और अब वे किसी आंग्ल महिला के साथ प्रेम करके अंतर्जातीय भावनाओं के समन्वय का पुण्य कमा रहे हैं। सुनते हैं, वह लड़की किसी धनाढ्य परिवार की है और कपूर साहब वैभव-विलास के जीवन में सिर से पैर तक डूब गए हैं। उनके वापस आने की उम्मीद नहीं है। लेकिन अगर आ भी गए, तो मैं सोचती हूं कि उनसे अपना रिश्ता तोड़कर ही मैं सुखी रह सकूंगी। अगर वे मेरे सामने होते, तो एक क्षण में मैं अपनी व्यथा से मुक्त हो सकती थी। लेकिन उनकी अनुपस्थिति में कोई निश्चय नहीं कर पाती हूं। हम औरतों में न जाने यह कमजोरी क्यों होती है कि तिल-तिल करके घटते रहने के बाद भी आशा की डोर हमारे हाथ से नहीं छूटती।

"यह सब लिखकर मैं आपको पुरुष जाति के प्रति विद्रोही नहीं बनाना चाहती। विद्रोह में नारी के व्यक्तित्व की अंतिम परिणति नहीं हो सकती। इस सत्य को मुझसे अधिक आप समझती हैं। मैं ऐसे क्षणों में आपके साथ रहना चाहती थी, मन से अब भी वहीं रहती हूं, लेकिन यहां का फर्ज़ मेरे पैरों में जंजीर की तरह पड़ा हुआ है। पिताजी की तबीयत बेहद खराब हो गई थी, अब सुधर रही है। वे चाहते हैं कि मैं लखनऊ में ही अपना जीवन शुरू करूं। सुझाव सार्थक मालूम होता है, लेकिन फिर भी मैं आपके पास आना चाहती हूं और अगर जीवन नये रूप में शुरू करना है, तो क्यों न हम दोनों नया जीवन शुरू करें ?

"मुझे आश्चर्य है कि आपने अभी तक एक भी पत्र मुझे नहीं लिखा। हो सकता है आप अपने मन की बात मुझसे न कहना चाहती हों। पर मैं यह विश्वास दिलाती हूं कि मैंने आपको अपना ही दूसरा रूप माना है। यदि मेरे इस कथन की सचाई को आप स्वीकार कर सकें, तो पत्र ज़रूर लिखिएगा।"

आपकी नीना"

नीना के पत्र को पढ़कर शकुन्तला की आंखें भर आयीं। कितना स्निग्ध स्नेह और विश्वास उस पत्र में था। शकुन्तला को लगा कि जैसे नीना को पत्र न लिखकर उसने एक बहुत बड़ा पाप किया है। वह नीना को निश्चय ही लिखेगी और अपना मन उसके सामने उड़ेल देगी। आज उसने अपनी गलती

को महसूस किया। उसे कीर्ति और बेटी को भी पत्र लिख देना चाहिए था। उसकी व्यथा केवल उसकी व्यथा नहीं है। जैसे एक ही व्यथा अनेक रूप धारण करके उसकी इन मित्रों में मूर्तिमन्त है और व्यथा का सूत्र ही उनको शृंखला में बांधे हुए है।

उसने तुरन्त ही मीना को पत्र लिखा। कीर्ति और बेटी को भी पत्र लिखा। इन सभी पत्रों में एक ही बात लिखी कि वह भविष्य का निर्माण अपनी ही शक्ति के सहारे करना चाहती है। उसे किसी से शिकवा-शिकायत नहीं है। लेकिन फिर भी न जाने क्यों वह दिवाकर को पत्र नहीं लिख सकी। प्रेमवतीप्रसाद ने उसे कह दिया था कि दिवाकर को पत्र लिख सकती है। उनके पते पर वह पहुंचा दिया जाएगा। लेकिन पत्र लिखने का अधिकार तो दिवाकर को भी मिला हुआ है। उन्होंने भी अब तक क्यों नहीं लिखा! मन से पूरी तरह गल जाने पर भी वह अपने इस मान को नहीं खो सकती।

इन पत्रों के माध्यम से अपनी व्यथा को बांट लेने पर भी उसे संतोष नहीं हुआ। दिवाकर का पत्र न आने से अंदर ही अंदर आशंका घनीभूत होती जाती थी। और जैसे एक उन्माद की अवस्था में वह अपना दिन और रात का समय व्यतीत कर रही थी। रामप्रसाद न जाने अब तक कितनी कहानियां सुना चुका था और अब लगता था कि जैसे अपनी हर कोशिश में वह नाकामयाब हो चुका है। नीची नज़र करके वह घर का सब काम करता है। कभी-कभी शकुन्तला के मन में आता था कि वह रामप्रसाद को अपने पास बिठाकर अच्छी-अच्छी कहानियां सुनाए। इस विचार से ही उसके मन में रामप्रसाद के परिवार का एक चित्र मूर्तिमान हो जाता। एक दिन संध्या समय वह रामप्रसाद से उसके परिवार के बारे में चर्चा करना चाहती थी कि बाहर दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। रामप्रसाद ने उठकर दरवाज़ा खोला और शकुन्तला ने आश्चर्य के साथ देखा कि कोई महिला बरामदे में खड़ी हुई है।

"मैं जानती हूं, आप मुझे न पहचानती होंगी।" आगंतुका ने कहा।

"पहचानती तो नहीं हूं, पर आपको जानती हूं। एक दिन दूर से आपको देखा भी था। एक बार देखकर पहचानना मुश्किल होता है। यह उम्मीद तो नहीं थी कि आप यहां आयेंगी।" शकुन्तला ने कहा।

"दुनिया में बहुत-सी बातें उम्मीद के खिलाफ होती हैं। मेरे आने को भी आप वैसी ही घटना समझ लीजिए। कई दिन से आपकी तरफ आने की सोच रही थी। लेकिन संकोच रास्ते में आ जाता था। डरती थी कि न जाने

आप क्या समझेंगी। ऐसी स्थिति में आप अकेली हैं, कई बार खयाल आता था कि आपको एक साथी की बेहद ज़रूरत है। अगर नामुनासिब न समझें तो आप हमारे घर चल सकती हैं। मेरी मां आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगी।"

यह अप्रत्याशित घटना शकुन्तला के लिए निश्चय ही एक विचित्र घटना थी। शान्ता के व्यक्तित्व का जो प्रभाव उसके मन पर था, आज उससे साक्षात्कार होने पर उसमें और भी घनता आ रही थी। उसने शान्ता को एक रूपगर्विता नारी के रूप में देखा था, लेकिन आज वह जैसे साक्षात् करुणा की मूर्ति के रूप में उसके सामने उपस्थित थी। अपनी व्यथा को भूलकर वह उसके प्रति एक गहरी सहानुभूति से भर उठी। अत्यन्त आदर और मान के साथ उसने शान्ता को बैठाया और रामप्रसाद से कुछ जलपान लाने के लिए कहा।

"आपके इस निमन्त्रण को अस्वीकार करने का साहस मुझमें नहीं है। लेकिन आपके आने से इस घर में और उस घर में कोई फर्क मुझे नज़र नहीं आता। जब कभी ज़रूरत होगी, उस घर को अपना ही घर मानकर वैसे ही चली आऊंगी जैसे आप आज यहां आ गई हैं।" शकुन्तला ने कहा।

शान्ता जब से आई थी, उसकी नज़र नीची ही थी। कभी-कभी वह शकुन्तला को देख लेती थी, फिर अपनी साड़ी का छोर उंगली के चारों तरफ लपेटने लगती थी और देखने के नाम पर उसने दीवारों को देखा था अथवा खिड़की के बाहर रिक्त आकाश को। वह मन ही मन जैसे शकुन्तला के प्रति आस्था से भर उठी थी। उसके मन में आता कि वह शकुन्तला से पूछे कि पहले दिन की भेंट से लेकर अंतिम दिन तक दिवाकर के साथ रह-कर उसने क्या अनुभव किया है, लेकिन उसकी जिज्ञासाएं शब्द रूप धारण न करके उसकी आंखों में तैर उठतीं। वह जानती थी कि एक बार आंख से आंख मिलने पर शकुन्तला उन जिज्ञासाओं के मर्म को समझ लेगी। एक अज-नबी के प्रति इस प्रकार जिज्ञासु होना वह शालीनता और शिष्टाचार के परे समझती थी और इस द्विविधा में ही समय निकल गया।

एक ही मेज़ पर दोनों महिलाएं एक साथ बैठी थीं तो जैसे दूरी कुछ घट गई थी। शान्ता ने कहा, आप खाने का ध्यान तो रखती हैं न। कहते हैं कि इन दिनों में स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखना चाहिए। मन को स्वस्थ रखना चाहिए और हमेशा प्रसन्न रहना चाहिए। केवल सुना है, देखा है,

वैसा अनुभव होता होगा, यह तो जानती नहीं।"

शकुन्तला ने मीठी नजरों से शान्ता की आंखों में देखा और कहा, "अनुभव करने में भी क्या कठिनाई है। कल शादी कर लीजिए, थोड़े ही दिन बाद अनुभव करने की स्थिति भी आ जाएगी।"

लज्जा से शान्ता का चेहरा लाल नहीं हुआ। उसने शकुन्तला का हाथ अपने हाथ में लेकर कुछ इस तरह दबाया कि उसे लगा कि यह हाथ किसी स्त्री का नहीं, वरन् पुरुष का है। उसकी हथेलियों, लंबी पतली उंगलियों और उनमें सन्निहित शक्ति को अनुभव कर उसे यह आश्चर्य होता रहा कि कोई पुरुष किस प्रकार उन हाथों को अपने हाथों में लेकर माधुर्य भाव से भर सकता है। मन ही मन उसे दिवाकर के दुर्भाग्य पर खेद भी हुआ और खुशी भी।

इन सब विचारों के मन में आने के बाद भी कृतज्ञता का भाव ज्यों का त्यों बना हुआ था। वह सोच रही थी: शान्ता को मुझसे ईर्ष्या होनी चाहिए थी। कैसी भी वह हो, लेकिन ईर्ष्या उसके मन में नहीं है। उसे याद आया कि विवाह के अवसर पर उसने उपहार भी भेजा था और यह भी कहा था कि उसे सार्वजनिक रूप से घोषित न किया जाए। यह क्या चीज शान्ता के मन में हो सकती है, जो उसे आज यहां खींच लाई है? शकुन्तला ने, कहा, "आप मेरी बात सुनकर चुप रह गईं। क्या आप शादी नहीं करेंगी?"

"शादी करना बहुत बड़े दिल वालों का काम है, हमारे जैसे लोगों का नहीं, जो दूसरों के सुख के लिए अपनी एक भी नजाकत को कुर्बान नहीं कर सकते।"

"तो शादी का मतलब आप सिर्फ कुर्बानी करना समझती हैं? कुर्बानी जिस उद्देश्य के लिए की जाती है, उसका अपना क्या कोई महत्त्व नहीं है? मैं समझती हूं कि उद्देश्य की तरफ अगर नजर रहती है, तो कुर्बानी का एहसास नहीं होता। यों मन के विपरीत हर भाव को स्वीकार करने में कुर्बानी ही होती है। हम लोग, आप हमसे अलग नहीं हैं, सहज भाव से यह कुर्बानी करती हैं। आप भी करती हैं। न करती होतीं तो आज यहां न आतीं।"

"नहीं, नहीं। ऐसा न कहिए।" शान्ता ने सहसा विचलित होते हुए कहा, "मेरी कोई कुर्बानी नहीं है। आप इस गलतफहमी में न रहिए। किसी-ने अब तक जो कुछ आपको बताया है; उसमें उसकी अपनी मान्यता ही रही होगी। मैं यह मानती हूं कि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके प्रति सभी के भाव

अच्छे होते हैं। दिवाकर ऐसे ही लोगों में से हैं, लेकिन मैंने कभी अपने को उनके अनुरूप नहीं पाया। मुझे क्षमा करें। आपके पति की बुराई नहीं करूंगी। मेरे ही मन में संपूर्ण अधिकार के भाव अधिक हैं। मैं उनके व्यक्तित्व को समेटकर अपनी मुट्ठी में बांध लेना चाहती थी, वह नहीं बंध सके। न ही बंधना चाहिए था। बांधना भी नहीं चाहिए था, लेकिन मैं अपने-आप से मजबूर हूं। इसीलिए शुरू में कहा था कि शादी करना बहुत बड़े दिलवालों का काम है। कदम-कदम पर समझौता करना होता है—मैं समझौता नहीं कर सकती।"

शकुन्तला उसकी स्पष्टवादिता से प्रभावित हुई थी और अपने मन को टटोल रही थी कि क्या उसमें और शान्ता में कोई अंतर है ! क्या उसने भी यह कल्पना नहीं की है कि दिवाकर को सारी दुनिया से अलग करके अपनी मुट्ठी में बंद कर ले और नहीं कर सकी है ? क्या इसीलिए एक अव्यक्त व्यथा उसके मन का मंथन नहीं कर रही है ? क्या सचमुच किसीके ऊपर संपूर्ण आधिपत्य जमाने की कल्पना करना अधिकार की सीमा में नहीं आता ?

ये सभी विचार पर्दे पर बदलती हुई रोशनी की तरह उसके मन में एक साथ कौंध गये। उसे यह भी खयाल आ गया था कि दिवाकर ने एक पर्स उसके पास रख छोड़ी है, जो शान्ता ने गृहस्थी बसाने के लिए उसे दी थी। इन सब कुर्बानियों का अर्थ यही निकलता था कि मन का मेल न होने पर भी शान्ता के मन में दिवाकर के प्रति निष्ठा बनी हुई है और शायद अपनी उसी निष्ठा को प्रतिष्ठित करने के लिए आज वह खुद यहां आई है। शकुन्तला ने कहा, "क्या आप अब पार्टी छोड़ देंगी ? हमने सुना है कि आपकी पार्टी के लोग व्यक्तिगत संबंधों को विचारों के सामने कोई महत्त्व नहीं देते। दिवाकर तो चले ही गये हैं। आप भी अगर उदासीन हो गईं, तो यह मिशन किस तरह पूरा होगा ?"

"सच तो यह है कि पार्टी में आने के समय शायद मेरे मन में कोई मिशन ही नहीं था। अपनी उद्धत विचारधारा को जीने का यही सबसे अच्छा स्थान था, इसीलिए यहां आ गई थी। यहां सब कोई किसीसे भी प्रेम कर सकता है और आवश्यकता न होने पर उसे भूल भी सकता है। शायद मेरी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा ने अनजाने में यह विचार मेरे मस्तिष्क में बो दिये थे। अब बहुत देख चुकी हूं। अब थोड़े दिन शांत रहकर भी देखना चाहती हूं।"

"खाली दिमाग तो और भी शैतान का घर होता है। कुछ न कुछ करना

तो चाहिए।"

"अभी कुछ दिन आपकी ही सेवा करना चाहती हूं। कोई आपत्ति तो नहीं है?"

"आपत्ति क़तई नहीं है, लेकिन सेवा तो तब होनी चाहिए, जब उसकी ज़रूरत हो। मैं जितनी हट्टी-कट्टी हूं, दूसरों की सेवा कर सकती हूं। मेरी सेवा आप क्यों करेंगी?"

"जितनी हट्टी-कट्टी हैं, वह तो देख रही हूं। मुंह पीला पड़ता जा रहा है। मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि इन दिनों आपने भर पेट खाना भी नहीं खाया है। पहला मौका है। आपको ध्यान रखना ही चाहिए। किसी भी अमानत के प्रति उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

शान्ता ने फिर उसी गरमजोशी के साथ शकुन्तला के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये।

बातें करते-करते काफी वक्त गुज़र गया। चारों तरफ बत्तियां जल गईं। टहनी और पत्तों के नीचे घुप्प अंधेरा हो गया और तब घड़ी की ओर देखते हुए शान्ता ने कहा, "अरे बाप रे! कितना विलंब हो गया। १० बज रहे हैं। मुझे इतनी दूर जाना है, कोई बीच में टकरा गया तो!"

इतना कहते-कहते वह जाने के लिए उठकर खड़ी हो गई। शकुन्तला से कम-से-कम ४ इंच लंबा कद उसका था। सलनी को छोड़कर उसका रूप आकर्षक था, रौबीला था और आधिपत्यपूर्ण था। शकुन्तला यह कल्पना कर सकती थी कि किसीके टकरा जाने की बात उसने केवल विनोद में कही है। वह शायद हज़ारों लोगों की भीड़ में निःशंक होकर घुस जाने वाली औरत है, जिसकी मर्जी के खिलाफ कोई उसे उंगली भी नहीं लगा सकता। वही शान्ता आज समय उसे किसी भी समय बुला लेने का अनुनय कर रही है।

शान्ता चली गई। शकुन्तला को लगा कि जैसे इतने थोड़े समय में साथ रहकर उसने शकुन्तला के मन में अपने प्रति निर्भरता का भाव पैदा कर लिया है। और उसकी अनेक आशंकाओं, व्यथाओं और मानसिक द्वंद्वों को अपने उद्दाम व्यक्तित्व में समेट कर साथ ले गई है। पहली बार आज उसके मन में यह निश्चय आया कि उसे दिवाकर को पत्र लिखना चाहिए। इस पत्र में वह अपने हृदय की संपूर्ण निष्ठा को उंडेल देगी और उससे कहेगी कि विवाह के इस बंधन में बंधना ही ज़रूरी था। कुछ भी और सोचना उसके लिए असंभव था। उसने पत्र लिखा:

"मेरे प्राणधन,

"आपके पत्र की प्रतीक्षा मैंने नहीं की थी। मैं जानती थी इस नये जीवन ने आपके मन में द्वंद्व पैदा कर दिया है। इस द्वंद्व से मुक्ति पाने के लिए आप अगर मेरे पास होते, तो न जाने कौन-सा मार्ग चुनते! अकेलापन जरूर महसूस करती हूं, लेकिन अब यह अनुभव करने लगी हूं कि इस द्वंद्व से मुक्ति पाने के लिए आपके लिए एकांत बहुत आवश्यक था। अपनी ओर से यह विश्वास दिलाती हूं कि मैं आपके किसी ध्येय की पूर्ति में बाधक नहीं बनूंगी।

"आधिपत्य प्राप्त करना मेरे मन में कभी नहीं आया। आपसे भेंट होने के पहले दिन से आज तक मैं समर्पित ही रही हूं। शायद यह समर्पण अपने ही प्रति अधिक है, इसलिए यह विश्वास होता है कि आपको जो वचन दे रही हूं उसकी पूर्ति मैं कर सकूंगी। आपसे बिछुड़ते समय व्यथा की एक ऐसी हिलोर मेरे मन में उठी थी, जिसने मुझे बेसुध कर दिया था, परंतु यह व्यथा मैंने केवल अपने भ्रम के कारण ही सही है। आप मुझसे दूर नहीं, आप मुझमें ही हैं और आपकी अमानत को सुरक्षित रखने का दायित्व मेरा है। इस दायित्व की मैं उपेक्षा नहीं करूंगी।

"मैंने जेल का जीवन नहीं देखा है। अनेक कष्ट, अभाव और वंचनाएं उस जीवन में होती हैं, अब तक ऐसा ही सुना है। लेकिन मुझे विश्वास है कि आपके समान निरपेक्ष भाव से जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को ये कष्ट अपने मार्ग से विचलित न कर सकेंगे। जन-सेवा का जो पुनीत व्रत आपने धारण किया है, उसके लिए सब कुछ कुर्बान किया जा सकता है। इस विचार से ही मैं अपने-आपको उपकृत मानती हूं।

"नीना का पत्र आया था। लगता है कि मि० कपूर ने उसके मन में कोई गहरा संघर्ष पैदा कर दिया है। उसके दुःख की कल्पना करके मेरा कलेजा फटता है। आश्चर्य होता है कि इतनी महान आत्माओं को भी उपेक्षा का अपमान सहन करना होता है। उसने मुझे लखनऊ बुलाया है, लेकिन जरूरत पड़ने पर वह मेरे पास आ जायेगी। मुझे विश्वास है।

एक विलक्षण सूचना आपको देती हूं। शान्ताजी आज मेरे पास आई थीं। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुई। एक अद्भुत विरोधाभास उनके व्यक्तित्व में है, लेकिन अपने दोषों के प्रति इतनी सचाई के साथ सोचना उनके ही बूते की बात है। हर तरह से मेरी सहायता करने का आश्वासन दे गई हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि उनके प्रति मेरे मन में विरक्ति, घृणा अथवा द्वेष का

भाव बिलकुल नहीं आता और न उनके मन में किसीके प्रति कटुता है। जिस विलक्षण शक्ति के सहारे वे अपने व्यक्तित्व में यह क्षमता उत्पन्न कर सकी हैं, ध्यान में नहीं आता।

"मेरे बारे में सोचकर आप उद्विग्न न हों। विदा होते समय मैंने कहा था कि वियोग के ये दिन बहुत थोड़े हैं और अब और भी विश्वास के साथ यह कहती हूं कि मुझे किसीका सहारा लिए बिना इस समय को व्यतीत करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। आपका विश्वास ही मेरा सबसे बड़ा संबल है। और भी अनेक विचार मन में आ रहे हैं, लेकिन उनकी सांसारिकता की सीमा में आपके मन को बांधना नहीं चाहती। कभी-कभी मन में यह विचार उठता है कि काश! नये प्राणी को जन्म देते समय आप मेरे निकट होते, लेकिन जो नहीं हो सकता, उसके बारे में कल्पना करना ठीक नहीं। स्वयं की मानसिक ऊहापोह से आपके मन को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहती।

"वकील साहब ने बताया था कि आपको पत्र लिखने की सुविधा है। कभी मन में हमारा खयाल आए, तो कुछ पंक्तियां लिख भेजिएगा।

आपकी,

शकुन्तला"

शकुन्तला का पत्र दिवाकर के मन में बिजली के समान कौंध गया। जिस दिन से वह जेल में आया है, बराबर अपने जीवन पर सिंहावलोकन करता रहा है। विवाह से कुछ दिन पहले उसके मन में जो संघर्ष पैदा हुआ था, उसने अभी तक उसका पीछा नहीं छोड़ा था। खामोश रहने की उसकी आदत थी, लेकिन उस संघर्ष से उत्पन्न होनेवाली खामोशी ने उसे इतना शांत बना दिया था कि जेल के सभी बंदी उसे महात्मा बुद्ध कहकर पुकारने लगे थे।

दिवाकर सोचता था कि उसने शकुन्तला के साथ अन्याय किया है। यदि उसे जीवन-पर्यंत अकेले रहकर जनसेवा करनी थी, तो उसे शकुन्तला से संबंध नहीं बनाना चाहिए था। अंतिम भेंट करते समय डबडबाई हुई आंखों से उसके मुंह की ओर देखते हुए शकुन्तला ने कहा था, "तुम प्रकाश और वायु के समान सबके हो।" वह सोचता है कि क्या सचमुच वह प्रकाश और वायु के समान सबका है? अगर सबका है, तो शकुन्तला का क्यों नहीं हो सका और उसे अनुभव होता है कि जैसे वह आकाशबेल की लहराती हुई चोटी के समान ही लोकसेवा के गर्व से ऊंचा उठ रहा है!

"मैंने अभी तक शकुन्तला को पत्र क्यों नहीं लिखा?' वह सोचता है। "उसने ठीक ही लिखा है कि यदि मैं उसके पास होता, तो इस मानसिक संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए न जाने क्या करता!"

इतने दिन के एकान्त चिंतन के उपरांत आज वह निश्चयपूर्वक कह सकता है कि यदि उसे कारावास का दंड न मिला होता, तो वह निश्चय ही शकुन्तला को छोड़कर चला जाता। इस चिंतन में उसने अपने समस्त अतीत को समझा था और उसका विश्लेपण करके वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचा था कि वह किसी भी अवसर पर उसने संसार की किसी भी अन्य वस्तु को अपनी महत्त्वाकांक्षा से अधिक प्रेम नहीं किया है। शकुन्तला के पत्र ने उसके विचारों के ऊपर पड़ी हुई धूल को जैसे साफ कर दिया है और पावस की

घोर अँधियारी रात के समान उसके अंतरप्रदेश में छाए हुए अन्धकार के परदे को भेद डाला है।

चिट्ठी उसे प्रायः शाम के झुटपुटे के बाद मिली थी। यह समय खाना मिलने का था, लेकिन दिवाकर को समय का ज्ञान नहीं था। पत्र उसके सामने खुला हुआ पड़ा था और वह एकाग्र चित्त होकर उसकी ओर देख रहा था। पत्र के अक्षर-अक्षर के रूप से आगे आकर अन्धकार की मूर्ति के रूप में बदल गए थे। वह मधुबाला को पत्र लिखने की स्थिति में देख सकता था। वह यह भी देख सकता था कि किस तरह अकेली संचित प्रेम का सहारा लेकर वह जी रही है। किस तरह उसके रोम-रोम से एक व्यथा फूट रही है। कितनी वेदना के साथ वह सहारे के लिए तड़पती होगी और यह सब उसके कारण हुआ है।

"मैं सदा से ही ऐसा विश्वासघाती हूं। मैंने कभी किसीके स्नेह की प्रतिष्ठा नहीं की। मैंने कभी अपनी आकांक्षा के समक्ष दूसरों की भावनाओं का आदर नहीं किया। निश्चय ही मुझे दूसरों के बलिदान के सहारे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करने का अधिकार नहीं था। मैं ऐसा लंपट हूं, जिसकी समता इस जेल में बंद रहनेवाला भयंकर से भयंकर अपराधी भी नहीं कर सकता। मैंने उस आत्मा के साथ विश्वासघात किया है, जो अपनी संपूर्ण आस्था के साथ मेरे प्रति समर्पित है।" दिवाकर इतना डूबा हुआ था कि खाना देने आए व्यक्ति की उपस्थिति का उसे भान तक नहीं हुआ। उस आपद् स्वप्न से उठाने के लिए आगन्तुक ने कितनी बार जेल का द्वार खटखटाया था, उसे पता नहीं।

"मैं जज साहब बोल रहा हूं। खाना खाने के लिए अपना बर्तन उठाओ और मेरे पास आओ।" यह गम्भीर घोष जिस कण्ठ से निकल रहा था, वे जज साहब इस जेल के लिए सुपरिचित व्यक्ति थे। उनकी विशाल पकी हुई दाढ़ी पर्वत की तलहटी में उगे झाड़ के समान दिखाई पड़ती थी। उनकी उन्नत नासिका, मशाल की तरह जलती हुई आंखें और भव्य ललाट को देखकर कोई अपरिचित उन्हें जज साहब स्वीकार करने में आनाकानी नहीं कर सकता था। समझे बिना न रहता।

जज साहब का गम्भीर घोष दिवाकर के कानों में गूंज उठा। उसने ऊपर मुंह उठाया और देखा कि जज साहब बड़े स्नेह से उसकी ओर देख रहे हैं और भोजन ग्रहण करने का निमंत्रण दे रहे हैं। दिवाकर ने मौन

भाव से सिर हिला दिया, जिसका मतलव था कि वह भोजन नहीं करना चाहता।

"अच्छा, हम फिर आएंगे। मालूम पड़ता है कि महात्मा बुद्ध ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।" इतना कहकर जज साहब आगे चले गए।

लगभग एक घंटे के बाद जिस समय वे लौटकर आए, तो असिस्टेण्ट जेलर उनके साथ था। कोठरी का दरवाजा खोल लिया गया और जज साहब अंदर आ गए। पत्र ज्यों का त्यों सामने खुला पड़ा था। दिवाकर ने उसे उठाने या छिपाने की चेष्टा नहीं की। कारावास के अठारह वर्ष व्यतीत करने के बाद उस अपराधी ने इतना विवेक अर्जित कर लिया था कि ऐसा प्रतीत होता कि जैसे वह किसी आश्रम का मुख्य अधिष्ठाता हो। सज़ायाफ्ता लोगों के जीवन की पीड़ा को उसने स्वयं सहा था और अब उस पीड़ा को अपने विवेक का मरहम लगाकर शांत करने की अद्‌भुत शक्ति उसे प्राप्त हो गई थी। इसीलिए उसे जज साहब की उपाधि प्राप्त हुई थी। आज तक किसी अपराधी ने न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध चाहे जितना विद्रोह किया हो, लेकिन जज साहब के निर्णय को सभी ने सिर झुकाकर स्वीकार किया है।

जज साहब अंदर आ गए, तो भी दिवाकर ने सिर नहीं उठाया। जज साहब ने पत्र पढ़ने की कोशिश नहीं की थी। दिवाकर के सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा : "क्या चिंता है?"

"चिन्ता नहीं है।" दिवाकर ने कहा। "यही तो दुःख है कि इस मन में कभी चिंता नहीं व्यापती। यह वज्र के समान रूखा और कठोर है! कोई इंसानी जज़्बा इसपर असर नहीं करता।"

"यह तो अच्छा है। ज्ञानी को चिंता नहीं व्यापती। खास तौर से राजनीति में काम करनेवाले लोगों को चिंता नहीं व्यापनी चाहिए। राजनीति एक खेल है। जैसा अक्सर तुम कहते हो, एक लड़ाई है। हार और जीत उसमें चलती रहती है। महत्त्व की बात यह है कि खिलाड़ी या सिपाही निश्चित होकर उसे चलाता जाए। अच्छे और बुरे दिन आते हैं। लेकिन जिस तरह दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता है, उसी तरह जीत के बाद हार और हार के बाद जीत आती है।"

जज साहब के ये शब्द दिवाकर के लिए नए नहीं थे। अगर उसे स्वयं किसी दूसरे को समझाना होता, तो शायद इससे भी अधिक मार्मिक शब्दों

ही वह सांत्वना दे सकता था, लेकिन आज उसके लिए सांत्वना पाने की जगह नहीं थी। वह चाहता था कि कोई आए और उससे कहे कि तुम्हारे लिए शालिग्राम के मौत पर अफ़सोस प्रकट किया जाता है। सिकन्दर ही जेल-जीवन उसके लिए नया नहीं था। उसने स्वयं अपने छोटे-से राजनीतिक जीवन में न जाने कितनी बार जेल-यात्रा की थी। बर्बर यातना और ईश्वरों तक को रोक देने वाली मार सही है, लेकिन उसके मुँह से कभी उफ़ नहीं निकला। लेकिन इसने उसे सत्तरवर्षीय जीवन की मौत पर लगता हुआ उसका दिल आज जैसे टीस गया है। बाहर की मार को वह सह सकता है, पर अन्दर की मार को नहीं सह पाता। जज साहब के शब्दों में स्नेह बोल रहा था। उसने आदरपूर्वक उसके मुँह की ओर मौन भाव से देखना शुरू कर दिया था।

"कुछ बोलो तो सही। बोलने से अन्दर की तकलीफ़ घटती है," जज साहब ने कहा।

"मैं तकलीफ़ को घटाना नहीं चाहता जज साहब!" सिकन्दर ने कहा। "मेरा मतलब ऐसा है कि कोई न्यायालय उसे नहीं समझ सकता। मैंने जेल लिया, लेकिन उसकी भरपाई नहीं कर सका। यह उसका बड़ा विश्वासघात है कि उसका कोई हक नहीं है। कभी-कभी मन में आता है कि दीवार से अपना सिर टकरा दूँ और जो खून मेरे सिर पर चढ़ा हुआ है, उसे हमेशा के लिए शान्त कर दूँ।"

"इस तरह सोच-सोचकर तो तुम पागल हो जाओगे। पागल आदमी प्रायश्चित्त भी नहीं कर सकता। मुझसे बताओ किसके प्रति जेल लिया है और किसके साथ विश्वासघात किया है। मैं तुम्हें प्रायश्चित्त बताऊँगा," जज साहब ने कहा।

सिकन्दर ने पत्र पढ़कर उन्हें सुना दिया। और कहा, "यह वह माँ की है, जिसने मा-बाप, समाज और परम्पराओं को छोड़कर मेरे प्रति समर्पण किया, विवाह के पूर्व ही मा बन गई और नन्हीं बच्ची के साथ उसने मेरे पाप के कलंक-तिलक को अपने सिर पर ओढ़ लिया। वह अब भी मुझसे कुछ नहीं चाहती। मरते भी कुछ नहीं चाहेगी, लेकिन उसके एक-एक शब्द में जो व्यथा बोल रही है, उसे मैं समझ सकता हूँ। काश! वह मेरा गुनाह क्षमा कर देती, लेकिन मेरे मन को कुछ सूझ ही नहीं है। इसीलिए बेचैन हूँ!"

विचित्र समस्या जज साहब के सामने थी। उनके पारदर्शी मस्तिष्क में सहसा कोई विचार ही नहीं आ सका। निदान बताना तो दूर, वे स्वयं विचार में डूब गए। उन्होंने कहा, "अच्छा सुनो! तुम्हारा दुःख क्यों मेरे दुःख से ज्यादा हो सकता है। मैंने भी तुम्हारी तरह प्रेम किया था। तुम्हारी पत्नी अथवा प्रेमिका के समान मेरी प्रेमिका भी मेरे प्रति निष्ठा रखती थी, लेकिन उसके मां-बाप के विवाह के लिए राजी न होने पर मैंने लड़की के बाप को गोली मार दी थी। और जब उसे अपने साथ लेने के लिए उसका हाथ पकड़कर उठाने लगा तो घृणा के साथ उसने मेरे मुंह पर थूक दिया था और अगले दिन गले में फंदा डालकर छत से लटक गई थी। बोलो, क्या तुम्हारी पीड़ा मेरी पीड़ा से बड़ी है? तुम्हारा तो सीधा-सा सवाल है। थोड़े दिन बाद इस प्रश्न से मुक्त हो जाओगे। जिस किसीको तुमने तकलीफ पहुंचाई है, उसको उतना ही सुख देना। अपने मन से इस व्यथा को समाप्त कर दो। यह प्रायश्चित्त का सही तरीका नहीं है, लेकिन अपने-आपको इस तरह तकलीफ पहुंचाकर तुम बरबाद हो जाओगे। दुनिया तुम्हारी तरफ देखेगी भी नहीं!"

दिवाकर के मन में अभी तक कोई नया निश्चय नहीं बन सका था; लेकिन जज साहब के अपूर्व अपराध और उस आत्मग्लानि को इस प्रकार वैराग्य के रूप में ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता ने उसके सामने एक नया सवाल पैदा कर दिया था, जिसका उत्तर भले ही उससे न मांगा गया हो, लेकिन वह सवाल उसके अपने सवाल से निश्चय ही बड़ा था और इससे उसकी अंतर्व्यथा में थोड़ी कमी ज़रूर हुई थी। उसने जज साहब से कहा, "आप असिस्टेंट जेलर से प्रार्थना करके मेरे लिए पत्र लिखने का सामान मंगवा दीजिए।"

जज साहब चले गए। पत्र लिखने का सामान और उसके साथ ही खाना भी आ गया था। दिवाकर ने पत्र लिखना प्रारम्भ किया:

"प्रिय शिक्की,

"तुम्हारा पत्र आज मिला। पत्र पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि जैसे सूली पर चढ़ाए जानेवाले किसी अपराधी को मुक्ति का संदेश प्राप्त हो गया हो। तुमने ठीक ही लिखा है कि अगर मैं तुम्हारे पास होता, तो न जाने अपने अंतःसंघर्ष से मुक्ति पाने के लिए क्या कर डालता! तुम्हारा पत्र प्राप्त होने के बाद आज इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मैं निश्चित ही तुम्हें अकेली छोड़कर कहीं चला जाता।

"इस अपराध की कल्पना मैं आज कर सकता हूं, अनेक बार इस निश्चय के छोर पर आकर पीछे लौट आता हूं। काश! जेल में रहकर इतने दिनों में मैं यही सोचता रहा हूं कि क्या मेरा जीवन अब घर की सीमा में बंधकर रह जाएगा? घर से बाहर जो मानवता है, उसके जो दुःख और दर्द हैं, उन्हें क्या मैं कभी अनुभव न कर सकूंगा! मैं अपने हृदय की सम्पूर्ण सचाई के साथ कहता हूं कि मैंने आज तक कभी अपने लिए जीने की कोशिश नहीं की, फिर भी जो व्यक्तिगत संबंध बनते बने हैं, उन्हें मैंने सामाजिक जीवन से अधिक महत्त्व नहीं दिया। इसका कारण यह भी हो सकता है कि ऐसे साथ ही मुझे कभी नहीं मिले। तुम्हें पाकर मैंने मानवता के मर्म को समझने की क्षमता प्राप्त कर ली है। जेल से मुक्त होने के बाद मैं अपने सभी अपराधों का प्रायश्चित्त करूंगा।

"जेल-यात्रा के लिए विदा करते समय तुमने कहा था कि तुम वायु और प्रकाश के समान सबके हो, इस पत्र में फिर वही बात दोहराई है, लेकिन मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं अब पहले तुम्हारा और बाद में वायु और प्रकाश के समान सबका हूं। तुम्हारी कल्पना करके मेरे दिल में ऐसी टीस उठती है कि रोम-रोम में व्याकुलता छा जाती है और मन-प्राण तुम्हारे निकट पहुंचने के लिए छटपटाने लगते हैं।

"तुमने सीता और सन्ध्या का भी अपने पत्र में ज़िक्र किया है। वे दोनों महिलाएं अपने ढंग में नारीत्व के दो उदाहरण हैं। सीता से अधिक विनम्र-शीला, धैर्यवती और विचारवान लड़की मैंने नहीं देखी और सन्ध्या के समान भावुक, निर्भीक, स्वाभिमानी और स्पष्ट बात में अपने कर्तव्य को पूरा करने की क्षमता से सम्पन्न नारी भी दुनिया में ही मिल सकती है। अगर सन्ध्या ने तुम्हारे प्रति सद्भावना दिखाई है और सहायता करने का वचन दिया है, तो उस पर आप निःसंकोच विश्वास किया जा सकता है। विवाह से पूर्व यह मेरे पास आई थी, उस दिन पहली बार मुझे अनुभव हुआ कि मेरा प्रेम प्राप्त करने के लिए उसके मन में कितनी कामना दुर्दमनीय उमड़ती थी और उसने अनजान होकर उस दिन वह बात कह दी थी कि मेरी सगाई तय हो गई। उस समय मैंने उसके इस त्याग पर ध्यान नहीं दिया था। आज कृतज्ञता अनुभव करता हूं।

"इन दिनों तुम्हें अकेला नहीं रहना चाहिए। सीता को एक दिन बुला लेना। शायद कभी दोनों का भी एक साथ रहना होगा। मेरे ऐसे

भी आ सकें, तो बच्चों को अपने पास बुलवा सकती हो। नीना के दुःख से तुम्हारा द्रवित होना स्वाभाविक है। जेल से मुक्त होने के बाद मैं राजेन्द्र की खबर लेना चाहता हूं। वह मन का अच्छा है, लेकिन उसकी लगाम कभी-कभी काबू से बाहर हो जाती है। लेकिन मुझे विश्वास है कि अपने प्रयोग के प्रति उसके मन में विरक्ति पैदा हो चुकी होगी और अब पश्चात्ताप की आग में जल रहा होगा। अगर मैंने उसे क्षमा कर दिया, तो वह तत्काल स्वदेश लौट आएगा। स्वदेश उसे लौटना ही है, चाहे मुझे स्वयं लंदन-यात्रा करनी पड़े। बहिन के रूप में नीना का मुझपर जो ऋण है, उसे चुकाए बिना मुझे संतोष नहीं मिलेगा।

"कुछ शब्द नये प्राणी के बारे में भी कहना चाहता हूं। एक उत्कट अभिलाषा मन में जन्म ले रही है। वह नया प्राणी उसी अभिलाषा का प्रतीक है। काश ! दुनिया में पहली बार आंख खोलते समय मैं उसे देख सकता, और उसकी आंखों में अपने अतीत और भविष्य को पढ़ सकता। न भी आ सका, तो भी मन से तुम्हारे पास ही हूं। जब तक मैं लौटकर आऊंगा, वह काफी बड़ा हो जाएगा। इस कल्पना से ही मन आनंद की स्थिति में पहुंच गया है।

"किसी प्रकार की तकलीफ हो तो बिना संकोच प्रेमजीतलाल को बुलवा लेना। रुपये-पैसे की दिक्कत भी उठाने की जरूरत नहीं है। वह मेरा अभिन्न मित्र है, तुम्हारे लिए कुछ भी करके उसे आनंद ही होगा। आज पहली बार बंदी-जीवन के प्रति उदासी का भाव मन में आ रहा है। न जाने वह जमाना कब आयगा कि इंसान की मामूली जरूरतों के पूरा होने में इतने बड़े बलिदानों की जरूरत न रह जायेगी ! हड़ताल के दिन वीरगति को प्राप्त होनेवाले साथियों की याद आती है, तो दिल घबरा जाता है।

"मुझे विश्वास है कि इन विपरीत परिस्थितियों में तुम घबराओगी नहीं ! अपने मन को स्वस्थ रखना। मैं भी शरीर से स्वस्थ हूं। जेल-जीवन मेरे लिए नया नहीं है। मैं ही अब जेल-जीवन के लिए नया हो गया हूं, यह बात अलग है।

सदैव तुम्हारा ही,
दिवाकर"

शकुन्तला को पत्र लिखकर दिवाकर का मन साफ हो गया। जैसे बहुत दिन से खाली पड़े हुए मकान में ...

उनका समस्त बुद्धि-प्रदेश कुछ अंधियारों से घिरा हुआ था। उसने अब तक एक बौद्धिक का जीवन व्यतीत किया था। जीवन की ऊष्मा से निपट अछूता रहकर सिद्धांतों और विचारों के सहारे जीवन चलाया था। आज इस व्यक्तिगत संबंध के बनने के बाद जैसे सिद्धांतों और विचारों में गांठ पड़ पड़ गई हो, जिन्हें खोलना नितांत असंभव प्रतीत होता था। इन्हीं सिद्धांतों और विचारों के संघर्षों से उसने अपने जीवन की दिशा निर्धारित की थी और इतने लंबे वर्षों तक वह उनमें खोया रहा था कि उसका समस्त अतीत विस्मृति में विलीन हो गया। समय-समय पर उसने अपनी पार्टी में षड्यंत्रों का सामना किया है, लेकिन वह हमेशा यही आश्चर्य करता रहा कि सामान्य सिद्धांतों और आदर्शों के होते हुए भी साथियों में इतने गहरे मतभेद क्यों आ जाते हैं कि व्यक्ति का ही नहीं, वरन् समूचे दल का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। इस प्रश्न का उत्तर उसे कभी नहीं मिला। जब कभी उसने समझौता किया है, खीझ और पराजय की भावना पुरस्कार में मिली है। अनेक बार बिना किसी व्यक्तिगत कारण से उसे राजनीतिक जीवन से विरक्ति भी हुई है, लेकिन व्यक्तिगत मान-प्रतिष्ठा और सिद्धांतों के प्रति घोषित मान्यताओं की रक्षा के लिए ही वह उस रास्ते पर चलता आया है।

इन्ही विचारो मे उलझा हुआ दिवाकर बैठा था। किसी प्रकार दिन और रात का चक्र उस जेल की चारदीवारी के ऊपर फैले हुए आकाश में चलता रहा। जेल के अंदर और बाहर वृक्षों पर निवास करनेवाले पक्षियों के जीवन-चक्र को देखकर ही बाहर के जीवन की अनुभूति की जा सकती थी। जेल में अनेक बंदी और भी थे, न जाने कौन-कौन से अपराध करके वे सब एक साथ इस प्रायश्चित्त की यज्ञशाला में एकत्र हो गए हैं। और उस यज्ञशाला का महान याज्ञिक वह व्यक्ति है, जिसने उसे मानसिक संघर्ष से मुक्त करने की कोशिश की थी। आज जब वह बगीचे में काम करने गया तो जज साहब की स्नेहसिक्त मुस्कान से खिचकर उनके पास पहुंच गया। जीवन अब नया जीवन मालूम पड़ता था। जज साहब की बांह पकड़कर वह उन्हें उद्यान के एक कोने में ले गया और एक क्यारी की मेंड़ पर दोनों साथ बैठ गए।

दिवाकर ने पूछा, "जज साहब, आपने अपनी प्रेमिका के पिता को गोली क्यों मार दी थी?"

"गोली मारी नहीं थी, लग गई थी। मैं उनकी लड़की से विवाह का

प्रस्ताव लेकर उनके घर गया था। बड़ी शानवाले ठाकुरों का वह घराना था और मैं एक मामूली-सा मुदर्रिस था। मेरे घर पर न हाथी था, न टमटम-बग्घी थी और न सैकड़ों बीघे की लहलहाती हुई खेती ही थी। मेरे पास तो सिर्फ मुहब्बत की दौलत थी और वह दौलत भी मेरी नहीं थी। उस लड़की की थी, जिसे मैंने पढ़ाया था और इसी रिश्ते से उसके मन के नज़दीक पहुंच गया था। प्रस्ताव लेकर जब मैं उनकी हवेली पर पहुंचा, तो ठाकुर साहब ने क्रुद्ध होकर राइफल उठा ली थी। मेरा दुर्भाग्य था कि मैं अपने-आपको उनकी गोली का लक्ष्य नहीं बना सका। मेरे शरीर में ताकत थी, स्फूर्ति थी। विलासी ठाकुर के गोली चलाने तक राइफल को मैंने अपनी पकड़ में कर लिया। मुझे राइफल के रहस्यों का पता नहीं था। लोहे से बनी वह छोटी-सी मशीन कितनी आसानी से ज़िन्दगी के सपने को खत्म कर देती है। न जाने कब उसका घोड़ा मेरे हाथ से दब गया था और ठाकुर साहब मेरे देखते-देखते ज़मीन पर ढेर हो गए।

"ममता को यह विश्वास नहीं हुआ कि गोली मैंने जानबूझकर चलाई थी। एक बार वह मुझसे मिली थी और फिर उसके बाद मैंने अगले दिन सवेरे उसकी लाश ही देखी थी। क्रोध से पागल होकर उनके कुटुम्ब वालों ने हमारे घर पर हमला किया था और उस लड़ाई में दोनों तरफ के अनेक लोग घायल हो गए थे। मैं चाहता तो अपनी सफाई दे सकता था, लेकिन सफाई देने का कोई उत्साह नहीं रह गया था। दारोगा के सामने मैंने यही बयान दिया था कि ठाकुर साहब को मैंने जानबूझ कर गोली मारी थी। इस घटना को १८ वर्ष हो गए हैं लेकिन मुझे लगता है कि जैसे वह कल ही घटित हुई है। सुनते हैं दो साल बाद मैं छूट जाऊंगा, लेकिन छूटकर भी क्या करूंगा, यह समझ में नहीं आता।"

कहानी सुनकर दिवाकर के अंतर से एक गहरी सांस निकल गई। बागीचे में और बहुत-से बंदी काम कर रहे थे। इससे पहले भी अपने जेल-जीवन में उसने बहुत-से बंदी देखे हैं। उनके अपराधों की अनन्त श्रेणियां हैं। पहले वह बंदियों से बड़े उत्साह के साथ बातें किया करता था। व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए किए गए अपराधपूर्ण विद्रोह को वह क्रांतिकारी विचारों द्वारा परिवर्तन करने की कोशिशें भी करता था, लेकिन यह अपराध का सिलसिला जीवन के साथ इस तरह जुड़ा हुआ है कि जैसे पानी के साथ कीचड़ जुड़ी होती है। आज भी ये बंदी उसी तरह खाते हैं, पीते हैं, काम

करते हैं और मुक्त होने की घड़ी के इन्तज़ार में अनेक अत्याचार भी सहते हैं और फिर बाहर की दुनिया में बेमेल होकर अत्याचारों की नई शृंखला में अपने को जोड़ देते हैं। यह सब क्या है ? यह कैसे बदलेगा ?

इसी सामाजिक परिवर्तन को सम्पन्न करने के लिए उसने क्रांति के स्वप्न लिए थे, और यह क्रांति जैसे जीवन रूपी महासागर की एक लहर बनकर उस वारापार में विलीन हो जाती है। आज उसने पहली बार यह देखा था कि क्रांति जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकती, साधन हो सकती है। जब तक सागर है, लहरें उठेंगी और विलीन होती रहेंगी। जब तक जीवन है, उसमें विषमता आती रहेगी क्योंकि हर व्यक्ति एक सागर भी है, बूंद भी है और कुछ नहीं है और सब कुछ है, लेकिन उस जीवन के अनादि और अनन्त व्यापार में दिवाकर कहां है ?

उसने अत्यन्त उमंग से भरकर जज साहब के हाथ अपने हाथों में ले लिए और बोला, "ठाकुर साहब, अगर आप जेल में बंद न होते, तो क्या यह पीड़ा और प्रायश्चित्त की भावना आपके मन में बनी रह सकती थी ?"

जज साहब एक क्षण के लिए मौन रह गए। उन्होंने दो बार अपनी भव्य दाढ़ी पर हाथ फेरा कि जैसे उस उलझे हुए सवाल को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए हों, और फिर बोले, "जिस चीज़ का अनुभव नहीं किया, उसके बारे में कैसे बता सकता हूं। पर मन की आवाज़ ऐसी है कि भावना बनी रहनी चाहिए थी। मैंने यह सोचा है कि इन्सान की ज़िंदगी कोई बड़ी भारी चीज़ नहीं, सिर्फ इन्सानी रिश्तों को निभाने का दूसरा नाम है। हमें हर वक्त यह कोशिश करनी चाहिए कि अपने रिश्तों के प्रति वफादार रहें। इस ज़िंदगी का क्या भरोसा है, सौ वर्ष तक भी चल सकती है और एक क्षण में खत्म भी हो सकती है।"

"आप ठीक कहते हैं," दिवाकर ने कहा, "शायद यही सोचकर मैंने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत की थी। अपने स्वार्थों की तरफ से नज़र हटाकर दूसरों के जीवन को परिवर्तित करने का संकल्प किया था, लेकिन मुझे हमेशा यह खेद रहा कि लोग नए जीवन के लिए अपने गले-सड़े जीवन को क्यों बलिदान नहीं करते ?"

"यह बड़ा बुनियादी सवाल है दिवाकर जी ! इस सवाल का जवाब पाने की मैंने कभी कोशिश नहीं की है, लेकिन सचमुच ताज्जुब की बात है कि लोग ज़िंदगी का नरक ढोते रहते हैं और उसे बदलने के लिए कुर्बानी नहीं

करना चाहते। इसी जेल-जीवन को देख लीजिए। इन १८ वर्षों में बाहर की दुनिया में जो कुछ परिवर्तन हुआ है, उसका अक्स यहां रहनेवालों पर पड़ा है! कभी इस जेल की दीवारें कोड़ों की सनसनाहट से गूंजती थीं। आज इस उद्यान में गुलाब के फूल मुस्कराते हैं। ज़रूर बाहर कोई परिवर्तन हुआ है। आप जैसे लोगों से बातचीत करके बाहर की दुनिया का पता चल जाता है। न जाने कैसी होगी वह दुनिया।"

जज साहब इतना कहते-कहते शायद किसी स्वप्न में खो गए थे।

जेल का संतरी अपने भारी-भरकम बूटों से धरती को दहलाता हुआ इधर की ओर आ रहा था। दिवाकर ने पानी से भरा हजारा उठा लिया था और वह गुलाब के पौधों को सींचने लगा था। ठाकुर के मुंह से निकले हुए शब्द अब भी उसके कानों में गूंज रहे थे। हजारे से निकलनेवाली पानी की फुहार जैसे उन शब्दों को संगीत दे रही थी और दिवाकर सोच रहा था कि मैं बूंद हूं या सागर, आदमी हूं या ज़िंदगी, मैं क्या हूं!

शकुन्तला के पत्र लिखने के लगभग डेढ़ मास बाद दिवाकर का पत्र उसे प्राप्त हुआ था। जिस समय नीना ने उसे यह पत्र लाकर दिया, वह बिस्तर पर लेटी हुई थी और प्रतीक्षा की एक-एक घड़ी ने जैसे हजारों मन वजन उसके शरीर पर लाद दिया था। उसकी आंखों में पहले जैसी चमक नहीं थी, न उत्साह और न जीवन के प्रति कोई व्यामोह। किस तरह ये घड़ियां गुजरीं, उसकी कल्पना से ही उसका रोम-रोम सिहर उठता है। पत्र हाथ में लेकर उनके मन में आशंकाओं का तूफान खड़ा हो गया। नीना ने उसे बताया था कि इतने लम्बे सपर्क में उसने दिवाकर को अच्छी तरह जाना है और उसका निष्कर्ष था कि बुद्धि-जगत में विचरण करनेवाला यह आदमी सांसारिक रिश्तों के प्रति प्रायः निरपेक्ष है और उसे वैसे ही रूप में स्वीकार करके जीवन को चलाना होगा।

शकुन्तला ने कहा, "तुम्हीं इस पत्र को खोलो बहिन, और मुझे पढ़कर सुनाओ।"

नीना ने पत्र खोल दिया और पढ़ना प्रारंभ किया। उस पत्र के एक-एक शब्द से शकुन्तला के मन में सहस्रों भाव उद्भूत हो रहे थे और जिस समय पत्र समाप्त हुआ, उसकी आंखें डबडबा आई थीं। अपने पास नीना को बैठाते हुए उसने कहा, "हम लोग कितनी आशंकाओं से त्रस्त हो गए थे। आदमी अपने ही आप मकड़ी का जाल बुनता है और उसमें फंस जाता है। हमें समझना चाहिए कि प्रभु ने उनके अंतर में एक नया प्रकाश पैदा किया है या क्या जाने इस नये प्राणी ने उनके अंदर सोये हुए व्यामोह को जगा दिया है! कुछ भी हो, हमने जो कुछ सोचा, वह सही नहीं था। वह कभी सही नहीं होगा नीना बहिन।"

नीना का मुंह लटका हुआ था। उसे अफसोस था कि मानव-प्रकृति को समझने की अपनी सामर्थ्य में, उसने कुछ ज्यादा ही विश्वास किया, लेकिन अविश्वास के पीछे दिवाकर के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। शकुन्तला की

व्यथा से द्रवित होकर उसने जो कुछ दिवाकर के लिए कहा था, उसमें धिक्कार उतना नहीं था, जितना शकुन्तला के मन को धैर्य और आश्वासन देने का भाव था। उसने कहा, "कई बार जब भावुक होते थे, तो कहा करते थे कि मनुष्य का जीवन एक-एक सांस में बदलता है। मैंने हमेशा यही माना कि अपने क्रांतिकारी जनून में वे युक्तियां खोज रहे हैं क्योंकि व्यामोह तो कभी उन्होंने दिखाया ही नहीं। प्रभु में मेरा विश्वास नहीं है। जीवन में विश्वास है। मैं तो यह सोचती हूं कि नये प्राणी ने उनके मन को बदला है। खैर, जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ। अब आप व्यर्थ की चिन्ताओं को मन से निकाल दीजिए और अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दीजिए।"

यह पत्र क्या था जैसे शकुन्तला के जीवन में नये प्राणों का संचार हो गया था। प्रतीक्षा के दिनों में उसकी सारी देह टूट गई थी लेकिन वह अपने इस संकल्प पर दृढ़ थी कि जब तक उसकी देह में प्राण रहेगा, वह किसी का सहारा नहीं लेगी। नीना, कीर्ति और ब्रेटी को उसने पत्र अवश्य लिखे थे। वह अपने पापा और मां को भी पत्र लिखना चाहती थी, लेकिन दिवाकर का विश्वास प्राप्त किए बिना नहीं। उस टूटे हुए मन को देखकर उनका कलेजा ही टूट जाएगा। किस विश्वास के आधार पर उन्हें आश्वासन दे सकती थी!

लेकिन एक दिन सहसा उसका यह संकल्प टूट गया। दो-एक दिन से उसके पेट में मीठा-मीठा दर्द हो रहा था और सहसा एक दिन रात को दर्द मर्मान्तक हो उठा। रात के १२ बजे थे, रामप्रसाद घबराया हुआ उसके पास खड़ा था और पूछ रहा था कि वह किसको बुलाने जाए। डाक्टर को, शान्ता को या प्रेमजीतलाल को। शान्ता इस अवधि में अनेक बार आई थी, लेकिन वह जब कभी आती, शकुन्तला का अन्तःसंघर्ष और भी बढ़ जाता। और वह उसकी तुलना में अपने को निरा अपदार्थ और बेसहारा पाती। कई बार उसने यह भी सोचा था कि काश! विवाह से पहले वह दिवाकर से शरीर का सम्बन्ध न बनाती, तो उसकी उदासीनता को वह धिक्कार सकती थी और अपने लिए नया रास्ता चुन सकती थी। दुनिया में उसका सम्मान करनेवालों की कमी नहीं है, उसने अपने ही आचरण से अपने अस्तित्व को सारहीन बना दिया। शान्ता को वह बुलाना नहीं चाहती थी, वह उसका एहसान नहीं लेना चाहती। रामप्रसाद को उसने प्रेमजीतलाल के पास भेज दिया। प्रेमजीतलाल ही फिर डाक्टर को लेकर आए थे और

उन्होंने ही नीना को बुलाने के लिए तार दिया था।

काश ! उस समय प्रेमजीतलाल घर पर न होते, डाक्टर न आया होता और सारी रात उसके पलग के पास वह न बैठा रहा होता, तो उसका क्या होता ! कैसा मर्मान्तक दर्द था ! लगता था कि जैसे उसकी सारी ग्रन्थियां फट जाएगी। उस दर्द ने चार घटो में ही उसके जीवन-स्रोत को सुखा दिया था, उसका आत्मविश्वास डिग गया था और उसकी आस्था जर्जरित हो गई थी। निराशा की इन्ही घड़ियों में उसने यह भी सोचा था कि काश ! इस बधन से वह अपने को मुक्त कर लेती, पहले ही महीने में वह अपने को इस उत्तरदायित्व से मुक्त कर सकती थी। ग्रेटी ने भी तो वैसा किया था और भी न जाने कितनी औरतें वैसा करती हैं। अधिक संतान का बोझ न ढोने के लिए ही सही, लेकिन करती हैं। अगर वह पाप नहीं है, तो मेरा ही यह सकल्प किस तरह पाप हो सकता था, और फिर निराशा की इन *गलियों में भटकती हुई वह नि सत्त्व हो जाती।*

तार के उत्तर में तार की ही तरह अगले दिन शाम तक नीना उसके पास आ गई थी। काश, नीना न आई होती, तो दिवाकर का यह पत्र पाने तक वह जिंदा न रहती। शकुन्तला अब तकिये के सहारे उठकर बैठ गई है। कल तक उसमें दवाई लेने में कोई उत्साह नही दिखाया था। आज वह खुद दवाई मांगकर पी रही है। आत्मग्लानि और उत्साह के वेग एक-एक करके उसके अन्तरप्रदेश मे लहरों के समान व्याप्त हो रहे थे। चेहरे से मुस्कान फूटी पड़ती थी। बार-बार गला रुंध जाता था और प्रयत्न करने पर भी वह उसे साफ नहीं कर पाती थी। नीना उसके इस परिवर्तन को देख रही थी। शकुन्तला कह रही थी, "देखा, तुम्हारे प्रति कितनी भावना के साथ सोचते हैं और वह सोचें या न सोचें, उन्हें छूटकर आने दो, चार दिन भी चैन से नहीं बैठने दूंगी, किसी भी तरह हो, उन्हें राजेन्द्र को मेरे सामने लाकर हाजिर करना ही होगा।"

यह कहते-कहते शकुन्तला की आंखें डबडबा आई थीं। नीना जैसे उस भावना में डूब गई थी और अपनी सुध खो बैठी थी। उसके पलग के पास स्टूल पर बैठी हुई वह गद्गद कठ से कह उठी थी, "मेरी प्यारी ममी !"

शिशु के समान मचलते हुए उसने अपने कपोल शकुन्तला के कपोलों से मिला दिए थे। उसके अपने आंसुओं की धारा शकुन्तला के आंसुओं में रल गई थी। न जाने कितनी देर तक वे दोनों आत्माए एक होकर आंसू

सागर में डूबती रहीं। नीना ने अपना मुंह ऊपर उठाया तो आश्चर्य से देखा कि भाभी का समस्त वक्षस्थल भीग गया है। अपनी साड़ी के छोर से उसे पोंछती हुई वह बोल उठी, "मैं जन्म-जन्मांतर की परंपरा में विश्वास नहीं रखती, लेकिन अगर वैसा होता होगा तो निश्चय ही हम दोनों पिछले जन्म में मां-जायी बहिनें रही होंगी। कैसे मेरा मन पहली बार देखकर ही तुम्हारे मन में रम गया था, लेकिन कैसे मैं तुम्हें छोड़कर चली जा सकी! सारी बातें ख्वाब की तरह मालूम होती हैं।"

पत्र अभी पलंग के सिरहाने खुला पड़ा था। उसकी तरफ देखते हुए भी नीना को लाज आती थी, लेकिन उसका समस्त अंतरजगत एक अनोखे उल्लास से भर उठा था और वह जैसे नयी निष्ठा और आस्था को पाकर आत्ममूर्त हो उठी थी।

लगभग आधे घंटे तक नीना अपने मुंह को छिपाती फिरी। शकुन्तला इस भावातिरेक से परिचित थी। उसके मन में गर्व की भावना थी कि उसके विश्वास की प्रतिष्ठा करनेवाली यह अद्भुत आत्मा उसे अपने सत्कर्मों के पुरस्कार में ही प्राप्त हो गई है। काफी देर बाद जब नीना खाने की कुछ सामग्री लेकर लौटी, तो उसका मुखमंडल शांत हो गया था और वह अब पहले जैसी वाक्-चतुर, अल्हड़ और कलावंत बन चुकी थी। वह बोली, "आपने दिन गिने हैं। सातवां महीना चल रहा है। मुझे आश्चर्य यह हो रहा है कि सातवें ही महीने में आपको इतना कष्ट क्यों हुआ? डाक्टर क्या कहता था?"

"डाक्टर तो कभी कुछ नहीं कहते। अगर कुछ कहा भी होगा तो जीत भाई से कहा होगा। जीत भाई से तुम खुद भी पूछ सकती हो, लेकिन इतना घबराने की क्या बात है! मां बनना कोई मामूली काम नहीं है। हमने सुना है कि मां को नया जन्म मिलता है। नया जन्म पाने के लिए कितनी पीड़ा भी क्यों न हो, सहनी ही होती है। सब सहेंगे।"

पत्र क्या आया था, पूरे घर के लिए जीवन का नया संदेश लेकर आया था। पानी का गिलास लेकर रामप्रसाद आया, तो उसने पूछा, "कौन-से साहब का पत्र आया है बीबीजी ?"

रामप्रसाद का यह प्रश्न सुनकर शकुन्तला और नीना दोनों अवाक् रह गईं और फिर सहसा बेसुध कर देनेवाला अट्टहास उनके हृदय से फूट पड़ा। रामप्रसाद ठगा-सा खड़ा रह गया और उनके अट्टहास का कोई अंत होता

न देखकर वहां से हट गया। किसी तरह अपने को संभालकर नीना ने कहा, "कैसा अजीब सवाल किया है उसने !"

"वाकई बहुत अजीब सवाल है, लेकिन बहुत सीधा सवाल है। इसके मर्म को न समझना ही बेहतर है। इस सवाल का कोई उत्तर हो नहीं हो सकता। उत्तर होगा, तो तुम्हें फिर आंचल में मुंह छिपाना पड़ जाएगा। चलो, अपना खाना भी यहां मंगवा लो। अब वह दुबारा सवाल नहीं दोहराएगा। मुझे विश्वास है कि उसे उत्तर मिल गया होगा।"

इस प्रकार हास्य-विनोद के वातावरण में शकुन्तला का नया जीवन प्रारंभ हो गया। नीना की परिचर्या से उसका खोया हुआ स्वास्थ्य फिर हरा हो गया था और आठ दिन के अंदर ही उसने चलना-फिरना और शाम को घूमने जाना शुरू कर दिया था। इसी बीच कीर्ति का पत्र आया था कि एक महीने तक वह वापस आ जाएगी। शकुन्तला को एक-एक करके अपने प्रियजनों की याद आ रही थी। उसने बेटी को पत्र लिखा :

"प्रिय बेटी,

"काफी समय से तुम्हें पत्र लिखने का विचार करती रही। कुछ ऐसी उलझनें पैदा हो गई थीं कि उनके मन में रहते तुम्हें पत्र लिखने का उत्साह नहीं हुआ। तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे विवाह के उपरांत कुछ दिन हमारे जीवन में ऐसे भी आए कि जब भविष्य की समस्त कल्पनाएं निराधार होने लगी थीं। लगता था कि जैसे मैंने किसी संन्यासी से सम्बन्ध स्थापित कर लिया है और किसी भी दिन मैं यशोधरा की तरह अकेली छोड़ दी जाऊंगी। लेकिन प्रभु की महिमा है कि उनका जीवन बदल गया है और अब मेरी कामना के अनुरूप उन्होंने अपने-आपको ढाल लिया है।

"पिछले दिनों निराशा के इन क्षणों में मेरे शरीर ने भी साथ नहीं दिया। ऐसे दर्द ने घर दबाया था कि जीवन का अंत दिखाई देने लगा था। अब ठीक हो गई हूं और विश्वास हो चला है कि समय पूरा होने पर तुम्हारी गोद में एक नन्हा-मुन्ना दे सकूंगी।

"तुमने अपने हालचाल नहीं लिखे। मैं फिर कहती हूं कि बालकृष्ण को मायूस मत करना। अकेले रहकर तुमने बहुत-कुछ देखा है, भोगा है और सहा है। अपने-अपने तरीके से सभी भोगते और सहते हैं, लेकिन उसका कोई उद्देश्य होता है। आदमी का मन कब भटक जाता है और सही रास्ते से उसका पैर कब फिसल जाता है, कहा नहीं जा सकता। अगर तुम्हें अवकाश मिले तो

सागर में डूबती रहीं। नीना ने अपना मुंह ऊपर उठाया तो आश्चर्य से देखा कि भाभी का समस्त वक्षस्थल भीग गया है। अपनी साड़ी के छोर से उसे पोंछती हुई वह बोल उठी, "मैं जन्म-जन्मांतर की परंपरा में विश्वास नहीं रखती, लेकिन अगर वैसा होता होगा तो निश्चय ही हम दोनों पिछले जन्म में मां-जायी बहिनें रही होंगी। कैसे मेरा मन पहली बार देखकर ही तुम्हारे मन में रम गया था, लेकिन कैसे मैं तुम्हें छोड़कर चली जा सकी! सारी बातें ख्वाब की तरह मालूम होती हैं।"

पत्र अभी पलंग के सिरहाने खुला पड़ा था। उसकी तरफ देखते हुए भी नीना को लाज आती थी, लेकिन उसका समस्त अतरजगत एक अनोखे उल्लास से भर उठा था और वह जैसे नयी निष्ठा और आस्था को पाकर आत्ममूर्त हो उठी थी।

लगभग आधे घंटे तक नीना अपने मुंह को छिपाती फिरी। शकुन्तला इस भावातिरेक से परिचित थी। उसके मन में गर्व की भावना थी कि उसके विश्वास की प्रतिष्ठा करनेवाली यह अद्भुत आत्मा उसे अपने सत्कर्मों के पुरस्कार में ही प्राप्त हो गई है। काफी देर बाद जब नीना खाने की कुछ सामग्री लेकर लौटी, तो उसका मुखमंडल शांत हो गया था और वह अब पहले जैसी वाक्-चतुर, अल्हड़ और कलावंत बन चुकी थी। वह बोली, "आपने दिन गिने हैं। सातवां महीना चल रहा है। मुझे आश्चर्य यह हो रहा है कि सातवें ही महीने में आपको इतना कष्ट क्यों हुआ? डाक्टर क्या कहता था?"

"डाक्टर तो कभी कुछ नहीं कहते। अगर कुछ कहा भी होगा तो जीत भाई से कहा होगा। जीत भाई से तुम खुद भी पूछ सकती हो, लेकिन इतना घबराने की क्या बात है! मां बनना कोई मामूली काम नहीं है। हमने सुना है कि मां को नया जन्म मिलता है। नया जन्म पाने के लिए कितनी पीड़ा भी क्यों न हो, सहनी ही होती है। सब सहेंगे।"

पत्र क्या आया था, पूरे घर के लिए जीवन का नया संदेश लेकर आया था। पानी का गिलास लेकर रामप्रसाद आया, तो उसने पूछा, "कौन-से साहब का पत्र आया है बीबीजी?"

रामप्रसाद का यह प्रश्न सुनकर शकुन्तला और नीना दोनों अवाक् रह गईं और फिर सहसा बेसुध कर देनेवाला अट्टहास उनके हृदय से फूट पड़ा। रामप्रसाद ठगा-सा खड़ा रह गया और उनके अट्टहास का कोई अंत होता

न देखकर वहां से हट गया। किसी तरह अपने को संभालकर मीना ने कहा, "कैसा अजीब सवाल किया है उसने !"

"वाकई बहुत अजीब सवाल है, लेकिन बहुत सीधा सवाल है। इसके मर्म को न समझना ही बेहतर है। इस सवाल का कोई उत्तर ही नहीं हो सकता। उत्तर होगा, तो तुम्हें फिर आंचल में मुंह छिपाना पड़ जाएगा। चलो, अपना खाना भी यहीं मंगवा लो। अब वह दुबारा सवाल नहीं दोहराएगा। मुझे विश्वास है कि उसे उत्तर मिल गया होगा।"

इस प्रकार हास्य-विनोद के वातावरण में शकुन्तला का नया जीवन प्रारंभ हो गया। मीना की परिचर्या से उसका खोया हुआ स्वास्थ्य फिर हरा हो गया था और आठ दिन के अंदर ही उसने चलना-फिरना और शाम को घूमने जाना शुरू कर दिया था। इसी बीच कीर्ति का पत्र आया था कि एक महीने तक वह वापस आ जाएगी। शकुन्तला को एक-एक करके अपने प्रियजनों की याद आ रही थी। उसने बेटी को पत्र लिखा :

"प्रिय बेटी,

"काफी समय से तुम्हें पत्र लिखने का विचार करती रही। कुछ ऐसी उलझनें पैदा हो गई थीं कि उनके मन में रहते तुम्हें पत्र लिखने का उत्साह नहीं हुआ। तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे विवाह के उपरांत कुछ दिन हमारे जीवन में ऐसे भी आए कि अब भविष्य की समस्त कल्पनाएं निराधार होने लगी थीं। लगता था कि जैसे मैंने किसी मक्कार से सम्बन्ध स्थापित कर लिया है और किसी भी दिन [redacted] पतोयग की तरह अकेली छोड़ दी जाऊंगी। लेकिन प्रभु की महिमा है कि उनका जीवन बदल गया है और अब मेरी कामना के अनुरूप उन्होंने अपने-आपको ढाल लिया है।

"पिछले दिनों निराशा के इन क्षणों में मेरे शरीर ने भी साथ नहीं दिया। ऐसे दर्द ने घर दबाया था कि जीवन का अन्त दिखाई देने लगा था। अब ठीक हो गई हूं और विश्वास हो चला है कि स्वस्थ होने पर तुम्हारी गोद में एक नन्हा-मुन्ना दे सकूंगी।

"तुमने अपने हालचाल नहीं लिखे। [redacted] [illegible] ही [illegible] मालूम कर सकता। अकेली रहकर तुमने बहुत-कुछ देखा है, [illegible] है और [illegible] है। अपने-अपने तरीके से सभी [illegible] और सहते हैं, लेकिन [illegible] होता है। आदमी का मन जब बहुत [illegible] है और [illegible], तब [illegible] जाता है, [illegible] नहीं कर सकता। अब तुम्हें अवश्य [illegible]

कुछ दिन के लिए दिल्ली आ जाओ। कीर्ति बहिन लगभग एक महीने के अंदर बच्चों के साथ यहां आ जाएंगी। किसी दिन हमारे घर की तरफ जाना और सूचना देना कि मेरे पापा कैसे हैं ! मैंने उन्हें आज तक पत्र नहीं लिखा। कीर्ति के पत्रों से ही पता चला है कि उनका स्वास्थ्य अच्छा है। उनके निकट रहने का कितना मन होता है, लेकिन इस काम से फारिग होकर और दिवाकर को साथ लेकर ही फिर नागपुर जाना चाहती हूं। तुम्हारी, शिक्की"

ग्रेटी के बारे में शकुन्तला ने नीना से एकाध बार और भी चर्चा की थी और यह पत्र लिखने के बाद वह प्रायः कई दिन तक बराबर ग्रेटी का ही ज़िक्र करती रही। कालेज से लेकर शकुन्तला के नागपुर से अंतिम बार विदा होने तक उसने कितने साहस के साथ हर संकट से उबारने में उसे सहयोग दिया था, इसकी चर्चा करके जैसे वह मन का भार हल्का करना चाहती थी। उनके सौंदर्य, नृत्य-कला और उसके भयंकर नास्तिक विचारों और उच्छृंखल आचरण की भी उसने चर्चा की थी और अंत में नीना को वाद-विवाद में घसीटते हुए उसने कहा था, "एक बात बताओ नीना ! क्या यह भी मुमकिन है कि कोई औरत एक से अधिक पुरुषों के प्रति अनुराग रख सकती है ?"

"मैं क्या जान सकती हूं। पुरुष के रूप में मैंने एक ही आदमी से प्रेम किया है और उसीके साथ विवाह के बंधन में बंध गई। औरों के प्रति मेरे मन में भावना रही है, लेकिन उसका स्वरूप बदला हुआ था। वैसे मैं कितनी औरतों को जानती हूं, जिन्होंने केवल अनुराग के पात्रों में ही फेर-बदल नहीं किया है वरन् एक से ज्यादा विवाह भी किए हैं। सारी दुनिया में ऐसा होता है, लेकिन आप यह जिज्ञासा क्यों कर रही हैं ? अभी तो परिवर्तन की पात्रता प्राप्त करने में भी लगभग दो महीने लगेंगे।"

इस विनोद से शकुन्तला के मन में हल्का-सा झटका लगा। क्षण-भर के लिए वह खामोश रह गई। बोली, "मेरी व्यक्तिगत भावना का प्रश्न नहीं है। मैंने ग्रेटी को पत्र लिखा है, उसमें उसके सर्वप्रथम प्रेमी के प्रति दोबारा अनुराग उत्पन्न करने की बात लिखी है। इस बीच न जाने कितने लोग उसके जीवन में आए और चले गए। मैं सोचती हूं कि क्या वह दोबारा उसके प्रति अनुरक्त हो सकेगी !"

"सच बात तो यह है बहिन, कि पार्टी के कामों में फंसे रहने के कारण मुझे कभी इन चीज़ों पर विचार करने का मौका ही नहीं मिला। वैसे मैंने सुना है कि अपनी देह को बेचनेवाली औरतें भी कभी-कभी अपने प्रेम के

लिए सब-कुछ न्योछावर कर देती हैं।"

"खैर, छोड़ो इन बातों को। न जाने क्यों बैठे-बैठे मेरे मन में यह विचार आ गया। जैसा कुछ होगा, बेटी उसकी सूचना देगी ही। व्यर्थ की बातों में दिमाग उलझाने से कोई लाभ नहीं है।" फिर थोड़ी देर शांत रहने के बाद वह बोली, "नीना, तुम्हारे खयाल से क्या मेरे पापा और माँ अभी भी मुझसे नाराज होंगे? कभी-कभी उन्हें देखने के लिए मेरा मन बुरी तरह छटपटाने लगता है।"

"कौन क्या सोचता है, और कैसा है, इस बारे में अटकलें लगाना मैंने बंद कर दिया है। मैं तो समझती हूं कि जैसी भावना हमारे मन में किसी के प्रति है, वह वैसा ही हो जाता होगा। दिवाकर भाई के परिवर्तन को देखकर मुझे कुछ ऐसा ही अनुभव होने लगा है। अगर जानना ही है तो एक पत्र लिख दो। हफ्ते-भर में उसका उत्तर आ जाएगा। जो काम करने से हो सकता है, उसके बारे में विकल्पों में क्यों भटका जाए?"

इतनी छोटी-सी बात शकुन्तला के मन में न आ सकती हो, यह बात न थी। उसके अपने मन में शायद अभी तक इस संबंध के प्रति उदारतापूर्वक समर्थन न मिल पाने के कारण ही पापा और विशेष रूप से माँ के प्रति आक्रोश का भाव था और वह यह सिद्ध कर देना चाहती थी कि माँ-बाप की पसंद के बिना भी यदि संतान कोई संबंध स्थापित करती है, तो वह हमेशा गलत ही नहीं होता। लेकिन यह संयोग था कि अपने इस अभिमान को प्रदर्शित करने के लिए उसे नौ महीने तक प्रतीक्षा करनी है। मन में अब इतना उल्लास है कि दूसरों के प्रति शिकायत जैसे बिलकुल खत्म हो गई है। आज वह चाहती है कि जितनी उदारता भी उसके माँ-बाप ने उसके प्रति दिखाई है, उसी को आशीर्वचन मानकर अपनी श्रद्धा उनके प्रति अर्पित करे। आज उसने इतने समय के बाद अपने पापा को पत्र लिखने का निश्चय किया था।

"मेरे प्यारे पापाजी,

"आपसे क्षमा पाने का अधिकार तो मैं खो चुकी हूं, लेकिन आपके वात्सल्य-भरे हृदय को जानती हूं। इसीलिए यह पत्र लिखने का साहस कर रही हूं। अपने आचरण से मैंने आपके हृदय को जो आघात पहुंचाया है, उसके लिए मैं लज्जित हूं, लेकिन यह आपका आशीर्वाद ही था कि अंधेरे में पैर डालने के बाद भी मुझे रास्ता मिल गया। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगी और मेरे आचरण से जो भ्रांतिपूर्ण लोकापवाद यहां

कुछ दिन के लिए दिल्ली आ जाओ। कीर्ति बहिन लगभग एक महीने के अंदर बच्चों के साथ यहां आ जाएंगी। किसी दिन हमारे घर की तरफ जाना और सूचना देना कि मेरे पापा कैसे हैं! मैंने उन्हें आज तक पत्र नहीं लिखा। कीर्ति के पत्रों से ही पता चला है कि उनका स्वास्थ्य अच्छा है। उनके निकट रहने का कितना मन होता है, लेकिन इस काम से फारिग होकर और दिवाकर को साथ लेकर ही फिर नागपुर जाना चाहती हूं। तुम्हारी, शिक्की"

ब्रेटी के बारे में शकुन्तला ने नीना से एकाध बार और भी चर्चा की थी और यह पत्र लिखने के बाद वह प्रायः कई दिन तक बराबर ब्रेटी का ही ज़िक्र करती रही। कालेज से लेकर शकुन्तला के नागपुर से अंतिम बार विदा होने तक उसने कितने साहस के साथ हर संकट से उबारने में उसे सहयोग दिया था, इसकी चर्चा करके जैसे वह मन का भार हल्का करना चाहती थी। उसके सौंदर्य, नृत्य-कला और उसके भयंकर नास्तिक विचारों और उच्छृंखल आचरण की भी उसने चर्चा की थी और अंत में नीना को वाद-विवाद में घसीटते हुए उसने कहा था, "एक बात बताओ नीना! क्या यह भी मुमकिन है कि कोई औरत एक से अधिक पुरुषों के प्रति अनुराग रख सकती है?"

"मैं क्या जान सकती हूं। पुरुष के रूप में मैंने एक ही आदमी से प्रेम किया है और उसीके साथ विवाह के बंधन में बंध गई। औरों के प्रति मेरे मन में भावना रही है, लेकिन उसका स्वरूप बदला हुआ था। वैसे मैं कितनी औरतों को जानती हूं, जिन्होंने केवल अनुराग के पात्रों में ही फेर-बदल नहीं किया है वरन् एक से ज़्यादा विवाह भी किए हैं। सारी दुनिया में ऐसा होता है, लेकिन आप यह जिज्ञासा क्यों कर रही हैं? अभी तो परिवर्तन की पात्रता प्राप्त करने में भी लगभग दो महीने लगेंगे।"

इस विनोद से शकुन्तला के मन में हल्का-सा झटका लगा। क्षण-भर के लिए वह खामोश रह गई। बोली, "मेरी व्यक्तिगत भावना का प्रश्न नहीं है। मैंने ब्रेटी को पत्र लिखा है, उसमें उसके सर्वप्रथम प्रेमी के प्रति दोबारा अनुराग उत्पन्न करने की बात लिखी है। इस बीच न जाने कितने लोग उसके जीवन में आए और चले गए। मैं सोचती हूं कि क्या वह दोबारा उसके प्रति अनुरक्त हो सकेगी!"

"सच बात तो यह है बहिन, कि पार्टी के कामों में फंसे रहने के कारण मुझे कभी इन चीज़ों पर विचार करने का मौका ही नहीं मिला। वैसे मैंने सुना है कि अपनी देह को बेचनेवाली औरतें भी कभी-कभी अपने प्रेम के

लिए सब-कुछ न्योछावर कर देती हैं।"

"ख़ैर, छोड़ो इन बातों को। न जाने क्यों बैठे-बैठे मेरे मन में यह विचार आ गया। जैसा कुछ होगा, बेटी उसकी सूचना देगी ही। व्यर्थ की बातों में दिमाग उलझाने से कोई लाभ नहीं है।" फिर थोड़ी देर शांत रहने के बाद वह बोली, "नीना, तुम्हारे ख़याल से क्या मेरे पापा और मां अभी भी मुझसे नाराज़ होंगे? कभी-कभी उन्हें देखने के लिए मेरा मन बुरी तरह छटपटाने लगता है।"

"कौन क्या सोचता है, और कैसा है, इस बारे में अटकलें लगाना मैंने बंद कर दिया है। मैं तो समझती हूं कि जैसी भावना हमारे मन में किसीके प्रति है, वह वैसा ही हो जाता होगा। दिवाकर भाई के परिवर्तन को देखकर मुझे कुछ ऐसा ही अनुभव होने लगा है। अगर जानना ही है तो एक पत्र लिख दो। हफ्ते-भर में उसका उत्तर आ जाएगा। जो काम करने से हो सकता है, उसके बारे में विकल्पों में क्यों भटका जाए?"

इतनी छोटी-सी बात शकुन्तला के मन में न आ सकती हो, यह बात न थी। उसके अपने मन में शायद अभी तक इस संबंध के प्रति उदारतापूर्वक समर्थन न मिल पाने के कारण ही पापा और विशेष रूप से मां के प्रति आक्रोश का भाव था और वह यह सिद्ध कर देना चाहती थी कि मां-बाप की पसंद के बिना भी यदि संतान कोई संबंध स्थापित करती है, तो वह हमेशा ग़लत ही नहीं होता। लेकिन यह संयोग था कि अपने इस अभिमान को प्रदर्शित करने के लिए उसे नौ महीने तक प्रतीक्षा करनी है। मन में अब इतना उल्लास है कि दूसरों के प्रति शिकायत जैसे बिलकुल ख़त्म हो गई है। आज वह चाहती है कि जितनी उदारता भी उसके मां-बाप ने उसके प्रति दिखाई है, उसीको आशीर्वचन मानकर अपनी श्रद्धा उनके प्रति अर्पित करे। आज उसने इतने समय के बाद अपने पापा को पत्र लिखने का निश्चय किया था :

"मेरे प्यारे पापाजी,

"आपसे क्षमा पाने का अधिकार तो मैं खो चुकी हूं, लेकिन आपके वात्सल्य-भरे हृदय को जानती हूं। इसीलिए यह पत्र लिखने का साहस कर रही हूं। अपने आचरण से मैंने आपके हृदय को जो आघात पहुंचाया है, उसके लिए मैं लज्जित हूं, लेकिन यह आपका आशीर्वाद ही था कि अंधेरे में पैर डालने के के बाद भी मुझे रास्ता मिल गया। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगी और मेरे आचरण से जो क्षतिपूर्ण लोकापवाद प्रस्तु

बन गया है, वह दूर हो जाएगा।

"दिवाकर को एक वर्ष की सज़ा हो गई थी, लेकिन यहां मैं अकेली नहीं हूं। उनके साथियों का परिवार और उनका सामर्थ्य बहुत विशाल है। मैंने कभी अकेलापन और उदासी अनुभव नहीं की है और आशा करती हूं कि आपके आशीर्वाद और इन साथियों के स्नेह-संबल के सहारे ये दिन गुज़र जाएंगे।

"आपके स्वास्थ्य के लिए मुझे हमेशा चिंता रहती है। मैं अपने को इस योग्य न बना सकी कि आपके लिए हर्ष का कारण बनती, लेकिन फिर भी मैंने आपकी प्रतिष्ठा और गौरवगरिमा को पूरी तरह से निबाहा है।

"आशा करती हूं कि आप मुझे पत्र लिखेंगे। आपके पत्र से मुझे सहारा मिलेगा और जिस कठिन परीक्षा से मैं गुज़र रही हूं, उसमें सफल होने की प्रेरणा प्राप्त होगी। आपके मन को जानती हूं, इसीलिए पत्र लिखने का साहस नहीं जुटा सकी हूं, लेकिन मां ने मुझे क्षमा नहीं किया होगा। काश ! मैं उनकी इच्छा के अनुकूल आचरण कर पाती, तो अधिकार के साथ उनके पास रहकर नया जीवन प्राप्त कर सकती थी। अब तो केवल उनके आशीर्वाद का ही भरोसा है। जैसी भी बीतेगी, बिताऊंगी। कश्मीर से कीर्ति जीजी का पत्र आया है कि वह एक महीने के अंदर यहां आ जाएंगी। नीना बहिन इन दिनों मेरे पास हैं। उनके साथ रहते हुए मुझे किसी प्रकार की घबराहट महसूस नहीं होती।

"मुझे विश्वास है कि मेरे अपराध को आपने भुला दिया होगा।

आपकी,

शकुन"

पत्र लिखने के बाद वह फिर नीना को पकड़कर बैठ गई। उससे पूछने लगी, "मुझे बताओ बहिन, दिवाकर के पत्र न आने तक जीवन में चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा दिखाई पड़ता था और अब दुनिया की कोई चीज़ बेगानी नहीं मालूम होती। आदमी का मन क्या है, शीशा है; जैसा अक्स पड़ता है, वैसी छाया दिखाई पड़ती है। लोग फिर क्यों ऊंचे-ऊंचे आदर्शों की डींग मारते हैं ?"

नीना अपनी प्यारी भाभी के उद्दीप्त मुखमंडल को देखकर चकित रह गई थी। वह बोली, "अब तक दिवाकर भाई हमारा दिमाग खाया करते थे और अब वह परंपरा आपने शुरू कर दी है। सच बताओ, यह आप बोल रही

हैं कि आपके अंदर से कोई और बोल रहा है? मेरी पक्की धारणा है कि हमारे घर में मुन्ना आएगा।"

शकुन्तला ने वास्तव में जिज्ञासा-भाव से यह प्रश्न किया था, लेकिन नीना ने उसकी विचारधारा ही बदल दी। अब अंदर ही अंदर मुस्कराती हुई वह यह सोचने लगी थी कि कौन-सा उत्तर पाने के लिए उसने यह प्रश्न किया था। उसने नीना से पूछा, "तुमने मेरी बात का जवाब नहीं दिया?"

नीना बोली, "मेरा अपना ख्याल यह है कि जो लोग प्रश्न करते हैं, उसका उत्तर पहले अपने मन में सोच लेते हैं और फिर दूसरों की धारणाओं का मज़ाक उड़ाने के लिए प्रश्न करते हैं। इसीलिए मैंने आज तक विचार-मात्र पर ध्यान नहीं दिया। बिना दिमाग़ी कलाबाज़ियां किए भी आदमी आराम से जी सकता है, वैसे आपके प्रश्न का उत्तर मेरे पास है भी नहीं। मैं आपको यह याद दिलाना चाहती हूं कि अस्पताल में जाकर अपना नाम लिखाना चाहिए। यह आठवां महीना चल रहा है। कितने दिन से मैं आग्रह करती रही हूं। अगर शुरू में ही आप मेरा कहना मान लेतीं, तो पीछे इतना जो कष्ट उठाया, उसकी नौबत ही न आती।"

"अच्छा अच्छा। अस्पताल चलेंगे। लेकिन अस्पताल जाने से क्या होगा?"

"अस्पताल जाने से यह होगा कि आपकी हालत देखकर लेडी डाक्टर आपको यह बताएगी कि क्या खाना चाहिए, कैसे उठना-बैठना चाहिए और क्या सोचना चाहिए। जैसा भी मुनासिब समझा जाएगा, वैसे ही वह आपको अस्पताल आकर अपनी हालत दिखलाने का परामर्श देगी। कम से कम इस तरफ़ से निश्चित होना ज़रूरी है।"

"मैंने कहा न कि अस्पताल चलेंगे। आज नहीं तो कल ज़रूर चलेंगे। लेकिन तुमने यह कैसे कहा कि घर में मुन्ना आएगा। मैंने तो सारी चीज़ें मुन्नी की कल्पनाएं करके बनाई ।"

"आप बातें ही ऐसी करती हैं। लगता है कि नन्हा दिवाकर अभी से आपके दिल और दिमाग़ पर हावी हो गया है। आप पड़ोस की किसी भी औरत को बुलाकर पूछ लीजिए, पहली ही नज़र में वह यह बता देगी कि हमारे घर में मुन्ना आएगा। आपने देखा नहीं कि किस तरह आपकी देह क्षीण हो गई है? अगर मुन्नी को आना होता तो आपकी खूबसूरती को चार चांद लग गए होते!"

"ऐसे मुन्ने से क्या फ़ायदा, जो आते-आते पूरे अस्तित्व को ही समाप्त

कर दे ।"

कहने को शकुन्तला ने वैसा कह जरूर दिया था, लेकिन उसके मन में मुन्ने की ही कामना थी। अनेक कल्पनाओं में वह खो गई। अगले दिन अस्पताल जाकर उसने डाक्टर के सामने अपने-आपको पेश कर दिया। उसका नाम रजिस्टर में दर्ज हो गया। जो सावधानियां बताई गई थीं, वह जैसे उसने अपने दिल पर नक्श कर लीं।

घर लौटकर उसने उन छोटे खूबसूरत वस्त्रों को बड़ी भावना के साथ उलटा-पलटा और देखने लगी कि उनमें थोड़ा फेरबदल करने से वे मुन्ने के लायक हो सकते हैं अथवा नहीं।

नीना ने यहां भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। वह कह रही थी, "आपके दिमाग में अजीब फितूर पैदा हो गया है। छोटे बच्चों के कपड़े एक-से ही होते हैं—मुन्नी हो या मुन्ना। आइए, बाहर घूमने चलते हैं।"

इसी प्रकार हास्य और विनोद के वातावरण में वक्त गुजरने लगा। अब उसे अपनी देह में भारीपन महसूस होने लगा था। इस बीच ग्रेटी और पापा का पत्र आ गया था। पापा से जैसी उम्मीद शकुन्तला ने की थी, वैसा ही उनका पत्र था। उन्होंने लिखा था कि वे खुद और उसकी मां खिन्न नहीं हैं, वरन् उन्हें अपनी पुत्री के आचरण पर अभिमान है कि उसने जो निश्चय किया, उसपर वह आखीर तक साबितकदम रही है और वे उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब दिवाकर और अपने नन्हे-मुन्ने के साथ वह पुनः उनके घर में वापस आएगी।

शकुन्तला का आत्मविश्वास और भी बढ़ गया था। इससे भी अधिक आनंद देनेवाली बात ग्रेटी ने लिखी है उसने लिखा है कि शकुन्तला के परामर्श के अनुसार उसने प्रायः यह निश्चित कर लिया था कि जैसी कुछ भी वह है, उसी रूप में बालकृष्ण के प्रति समर्पित हो जाएगी, लेकिन मद्रास पहुंचकर उसने फिर वही पाया कि बालकृष्ण शाम को देर से घर लौटकर आता है। अक्सर उसे साथ ले जाना नहीं चाहता। हालांकि उसने कभी ग्रेटी की उपेक्षा नहीं की है, लेकिन उसे यह विश्वास हो गया है कि वह कभी एकनिष्ठ नहीं हो सकता और आश्चर्य की बात यह है कि ग्रेटी को बालकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ होने का अभिमान नहीं है वरन् उससे विवाह का निश्चय करने से पूर्व वह स्वयं इस बात से खिन्न थी कि अपने खंडित व्यक्तित्व को लेकर वह बालकृष्ण के प्रति दायित्वों का निर्वाह नहीं कर सकती। फिर भी वह इतनी

उदार नहीं हो सकती कि बालकृष्ण का दूसरों के प्रति झुकाव सहन कर सके।

उसने अंतिम रूप से निश्चय कर लिया था कि वह मि० जॉनसन के साथ विवाह कर रही है। मि० जॉनसन की कल्पना करके शकुन्तला अंदर ही अंदर मुस्करा उठी थी और सोच रही थी, "प्रेम की भावना भी क्या-क्या चमत्कार दिखाती है। प्रेमी से फादर, फादर से फिर प्रेमी, प्रेमी से संन्यासी और अन्त में ज्यों के त्यों मि० जॉनसन!"

बेटी ने लिखा था कि शादी की तारीख जल्दी ही तय होनेवाली है और इसके बाद वे एक महीने के लिए दार्जिलिंग जाकर रहेंगे, वहां से लौटते समय दिल्ली आएंगे।

शकुन्तला सोच रही थी कि बेटी के आने पर वह या तो प्रसूतिगृह में होगी या बच्चे को जन्म दे चुकी होगी। उस समय जॉनसन-दंपति का स्वागत करने में कितना आनंद आएगा।

इस बीच शान्ता भी एक दिन आई थी, लेकिन नीना को घर में देखकर उसका चेहरा उतर गया था और वह पुनः अपने सामान्य रूप में बदल गई थी। व्यवहार के अतिरिक्त उसने शब्दों में भी यह प्रकट किया था कि अब उसकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रह गई होगी। नीना इतनी समर्थ है कि वह पूरी सम्पून की देखभाल करती रही है। उसके इन शब्दों में व्यंग्य था और यह व्यंग्य नीना के चेहरे पर अजीब प्रतिक्रियाएं लेकर मुखर हो उठा था। शकुन्तला समझ सकती थी कि उन शब्दों के पीछे अनेक वर्षों का भावनात्मक इतिहास है, जिसे वह समझाना नहीं चाहती। शान्ता ने जाते समय कहा था कि वह कुछ दिन के लिए बाहर जा रही है।

एक दिन सुबह कीर्ति का तार आया कि वह पीटर और डिम्पी को लेकर शाम की गाड़ी से पहुंच रही है। शकुन्तला को अब चलने-फिरने में ज्यादा कष्ट मालूम होता है। इसलिए वह नीना के साथ स्टेशन पर नहीं जा सकी।

शाम तक सारा घर बच्चों की किलकारियों, हास्य-विनोद और हर्ष-उल्लास से भर उठा। कीर्ति के चेहरे पर निखार आ गया था। जैसे कि वह किसी सेनिटोरियम में रहकर आई हो। मि० कुमार साथ नहीं आ सके थे, लेकिन कीर्ति कह रही थी कि आनेवाले पन्द्रह दिनों में किसी भी दिन वे आ सकते हैं।

कुमार के घर आने की कल्पना से ही शकुन्तला लाज से भर उठती थी।

एक दिन ऐसा था जब उसने कुमार को दया के पात्र के रूप में देखा था। आज वही कुमार ऐसा हो गया है कि थोड़े-से दिन उसके संपर्क में रहकर कीर्ति इतनी बदल गई। कुमार जब घर में आएगा, तो वह उससे कैसे आंखें मिला सकेगी, यह सोच नहीं पाती थी, लेकिन प्रतीक्षा के इन पन्द्रह दिनों में मि० कुमार नहीं आए, लेकिन वह दिन आ गया जिसकी सभी आतुरता के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे।

सवेरे-सवेरे रोज की तरह शकुन्तला सोकर उठी थी। देह में भारीपन महसूस हो रहा था। दो-तीन दिन से पैरों में हल्का-हल्का दर्द भी हो रहा था। लेडी डाक्टर ने मालिश के लिए कोई तेल दे दिया था और इस मालिश से कुछ आराम भी पहुंचा था। लेकिन आज सवेरे फिर पैरों में दर्द बढ़ना शुरू हो गया और वह बढ़ते-बढ़ते समस्त कटि-प्रदेश में फैल गया। लक्षण प्रसव-पीड़ा के ही थे।

शकुन्तला ने कीर्ति और नीना को जिस समय सूचना दी, तो वे चकित रह गईं, क्योंकि अभी आठ महीने से ऊपर कुछ ही दिन हुए थे और सामान्यतः उसके स्वास्थ्य और डाक्टर की रिपोर्ट से यह नहीं जाहिर होता था कि समय से पहले ही बच्चे का जन्म हो जाएगा।

लेडी डाक्टर ने शकुन्तला को देखा। पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद उसने यही निश्चय किया कि वे सब प्रसव के पूर्व के ही लक्षण हैं और शकुन्तला को शीघ्र-से-शीघ्र अस्पताल पहुंचा देना चाहिए।

दर्द बराबर बढ़ता जा रहा था, पूरे शरीर में एक ऐसी ऐंठन उभरती आ रही थी कि जैसे उसके तमाम स्नायु-तंतु ऐंठकर टूट जाएंगे। सब कुछ अकस्मात् ही हुआ था। अस्पताल पहुंचते-पहुंचते दोपहर ढल गया। प्रसव-कक्ष में पहुंचने के बाद डाक्टर ने शकुन्तला को एक इंजेक्शन दिया। उससे दर्द में कुछ थोड़ी-सी कमी आई। शकुन्तला की सांस जो अब तक घुटी हुई मालूम होती थी, सामान्य गति से चलने लगी और—वह आंखों में मुस्कान भरकर मौन भाव से कीर्ति और नीना की ओर देख रही थी। लगभग एक घंटे की प्रतीक्षा के बाद डाक्टर ने कीर्ति को बताया कि हो सकता है कि ... र्व का दर्द न हो, लेकिन बेहतर यह होगा कि शकुन्तला को अस्प- ... जाए। अग... २४ घंटों में पता चल जाएगा कि वास्तविक

सब-... ...चर पर लिटाकर अस्पताल के एक कमरे

में पहुंचा दी गई। कुछ ही घंटों में उसकी देह इतनी निःसत्व हो गई थी कि प्रसव-कक्ष की मेज पर सहारा देने पर भी वह कमर सीधी नहीं कर सकती थी। बीमारी के पलंग पर लेटने के बाद उसे पहली बार अनुभव हुआ कि उसके सिर में घुमेर आ रही है और दिमाग पर जैसे हल्का-सा परदा पड़ गया है। नीना और कीर्ति प्रायः बौखला गई थीं। सवेरे से उन्होंने मुंह में एक कौर भी नहीं डाला था। लगभग चार बज चुके थे। लेडी डाक्टर ने कुछ समय के लिए उन्हें बीमार के पास से हट जाने का अनुरोध किया था और कुछ औषधियां लाने के साथ-साथ रात्रि के विश्राम के लिए तैयारी करने की बात कही थी। एक-एक करके नीना और कीर्ति बाहर चली गईं। डाक्टर की नियमित और सतर्क परिचर्या से दो-तीन घंटे के अन्दर शकुन्तला को थोड़ा आराम महसूस हुआ था। उसने कीर्ति से पूछा, "क्या सभीको ऐसा ही कष्ट होता है?"

"होता भी है और नहीं भी होता है। ऐसे भी उदाहरण हैं कि गाड़ी में सफर करते समय, और गांव की औरतों को तो खेत-खलिहान में काम करते-करते बच्चे पैदा हो जाते हैं। इधर दर्द हुआ और उधर बच्चे का जन्म हुआ। लेकिन अपनी-अपनी किस्मत की बात है। जितना कष्ट नसीब में होता है, वह तो भोगना ही पड़ता है। लेकिन घबराने की क्या बात है? प्रभु मंगल ही करेंगे।"

न जाने क्यों शकुन्तला के मन में निराशा की लहर एक के बाद एक घुमड़ती आ रही थी। वह अपने मन को धीरज देना चाहती थी, लेकिन जिस दर्द को उसने अभी-अभी भोगा था, उसके दोबारा उठ खड़े होने की कल्पना से ही प्राण निकलने लगते हैं। कीर्ति से बड़ी झिझक और मनुहार के साथ वह पूछ रही है, "कीर्ति जीजी, क्या मां को तार देकर नहीं बुलाया जा सकता?"

पूछते-पूछते ही उसकी आंखें नम हो गईं।

कीर्ति ने कहा, "तार दिया जा सकता है और मुझे विश्वास है कि तार के मिलते ही वह अगली गाड़ी से चल पड़ेंगी। लेकिन क्यों न खुशखबरी का ही तार उन्हें पहुंचाया जाए। जो कुछ होना होगा, आज रात में हो जाएगा। या तो दर्द खतम हो जाएगा और या फिर बढ़ जाएगा। लेडी डाक्टर ने कहा है कि खतरे की कोई बात नहीं है। बच्चे ने पेट में करवट बदली है। हो सकता है सारी स्थिति शांत हो जाए। वैसे यह जरूरी नहीं है कि बच्चे का जन्म भी

महीने पूरा होने पर ही हो। कभी-कभी कुछ दिन ऊपर भी हो जाते हैं और कभी-कभी कुछ दिन पहले भी बच्चे का जन्म होता है। घबराने की कोई बात नहीं है।"

नीना के चेहरे पर व्यथापूर्ण उल्लास मुखर था। वह जैसे जताना चाहती थी कि भाभी के कष्ट का हालांकि वह अनुमान नहीं लगा सकती है, लेकिन जल्दी ही वह कष्ट दूर हो जाएगा और तब हमारे आंचल में एक नया मुन्ना आ जाएगा।

कीर्ति के समझाने से शकुन्तला मौन हो गई है, लेकिन अंदर ही अंदर मां को देखने की लालसा न जाने क्यों उभरती आ रही है। नीना कहती है, "क्या हुआ, मैं जाकर तार दे आती हूं। खुशी का तार न सही, तो आकर खुशी के साधन को देख लेंगी। अगर वे चाहती हैं तो तार देने में कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।"

कृतज्ञता का भाव शकुन्तला के चेहरे पर उभर आया। नीना से उसने कहा, "तार में लिखना कि जार्ज को भी साथ लेती आएं।"

तार देने के लिए नीना को गए हुए कुछ ही देर हुई थी कि बच्चे ने जैसे पेट में कुलांच मारी हो। दर्द का दौर फिर शुरू हो गया। इस बार वह अपनी पूरी ताकत लगाने पर भी अपनी चीख को न रोक सकी। वेदना क्षण-क्षण में अपना रूप बदल रही थी। लगता था कि जैसे सारा शरीर फट जाएगा। कीर्ति जैसे घबरा गई थी। उसने नर्स को सूचना दी और नर्स ने एक क्षण के लिए शकुन्तला की परीक्षा करके फौरन डाक्टर को बुलवा लिया और प्रसव-कक्ष में उसे ले जाने की तैयारियां शुरू हो गई।

प्रसव-कक्ष में पहुंचते-पहुंचते शकुन्तला का चीत्कार इतना वेदनामय हो उठा था कि बाहर बेचैनी से घूमती हुई कीर्ति का दिल दहल उठता। लगातार इंजेक्शन के बाद इंजेक्शन दिए जा रहे थे, लेकिन दर्द में कोई कमी नहीं होती थी और न ही बच्चे के जन्म लेने के आसार दिखाई पड़ते थे। नीना जिस समय लौटकर आई, तो लेडी डाक्टर कीर्ति से कह रही थी, "कुछ समझ में नहीं आता। बच्चे का जन्म हो जाना चाहिए। हमने अच्छी तरह से परीक्षा कर ली है कि बच्चा पेट में सकुशल है। उसका सिर ऊपर की तरफ है। शायद इंजेक्शनों की सहायता से वह फिर करवट बदले और योनि-द्वार की ओर बच्चे का सिर हो जाए। लेकिन मैं परामर्श के लिए दो-तीन विशेषज्ञों को बुला रही हूं। दर्द होते लगभग दस घंटे गुजर गए हैं। बीमार की हालत कम-

[illegible] है, अपने दो घंटे के अन्दर-अन्दर [illegible] कि बच्चे के [illegible] बदलने की प्रतीक्षा करते हैं या ऑपरेशन करना है।

ऑपरेशन की बात सुनकर नीना और कीर्ति का दिल दहल गया। वे दोनों [illegible] भगवान न जाने क्या होगा! [illegible] शकुन्तला ने [illegible] की आवाज़ [illegible] रही थी। कीर्ति जब लेडी डाक्टर को [illegible] और उनसे अनुनय कर रही थी कि डाक्टर जल्दी से [illegible] का परामर्श लेकर अगर ऑपरेशन करना है, तो ऑपरेशन हो [illegible]।

लेडी डाक्टर की [illegible] के कारण लगभग आधे घंटे के अंदर ही दो [illegible] डाक्टर और एक दूसरा डाक्टर अस्पताल में आ पहुंचे थे। मरीज की [illegible] करने में [illegible] और [illegible] गया था। अंत में लेडी डाक्टर ने कीर्ति से कहा, "ऑपरेशन-फार्म पर हस्ताक्षर किसके होंगे? इनके पति कहां हैं?"

"इनके पति तो जेल में हैं डाक्टर, और हमारे माता-पिता नागपुर में हैं; उन्हें आने के लिए तार दिया है, लेकिन उनकी प्रतीक्षा करना बेकार है। मैं इनकी बड़ी बहन हूं। क्या मैं दस्तखत कर सकती हूं?"

आखिरकार यह तय हो गया कि ऑपरेशन के अलावा कोई चारा नहीं है। लेबर-रूम के बाहर बैठी हुई नीना और कीर्ति अंदर की सरगर्मियों को महसूस करके धड़कते हृदय से कानाफूसी कर रही थीं। "अब चीख बंद हो गई है। लगता है कि उसे बेहोश कर दिया गया है!"

"भगवान तो बहुत अच्छा है। आपरेशन कामयाब होना चाहिए!"

"हे भगवान, सब कुछ अच्छा ही हो! लड़की के दिल में बच्चे का मुंह देखने की कितनी बड़ी लालसा है। इस दिन की प्रतीक्षा में उसने क्या-क्या नहीं सहा है, उनकी जगह दूसरी होती, तो पता चलते ही उसे खत्म कर देती। दुनिया में क्या कुछ नहीं होता!"

नीना मन ही मन सोच रही थी कि दुनिया की तरफ क्यों जाएं, खुद अपना को ही देख लो। आज अभिमान के साथ गरदन सीधी करके घूमती है। अगर वह भी शकुन्तला की तरह अपने कर्म के प्रति निष्ठावान होती, तो आज यह जो कुछ हो रहा है, वह नहीं हो पाता और फिर उसने कीर्ति से कहा, "दिवाकर भाई को क्या मालूम होगा कि उनकी शकुन्तला के ऊपर क्या बीत रही है? क्यों न हम प्रेमजीतलाल से पूछें कि उन्हें थोड़े-से समय के लिए [illegible]

कोशिश करना भी बेकार है; क्योंकि अगर उन्हें मुक्त कराया भी जा सका, तो दो-चार दिन लग ही जाएंगे लेकिन मैं जीत भाई को टेलीफोन करती हूं। अच्छा है आ जाएंगे। दौड़भाग के लिए कोई तो साथ चाहिए।"

इधर यह चर्चा चल ही रही थी कि लेडी डाक्टर ने आकर सूचना दी कि "ऑपरेशन कामयाब हो गया है! बधाई हो! पुत्र उत्पन्न हुआ है!"

नीना और कीर्ति खुशी से उछल पड़ीं। कीर्ति ने आवेग में डाक्टर का हाथ अपने हाथों के ले लिया और कहा, "यह सब आप ही की कोशिशों का नतीजा है डाक्टर! आपने हम सबको नया जीवन दिया है। मां की हालत कैसी है?"

"अभी होश में नहीं आई है, लेकिन रक्त बहुत ज्यादा निकल गया है। खून देना पड़ेगा। लेकिन उसके होश में आने के बाद स्थिति को देखकर निर्णय किया जाएगा।" प्रेमजीताल आ पहुंचे थे। पुत्र के आगमन की सूचना पाकर उनका हृदय गद्‌गद हो उठा। बोले, "मैं बच्चे को देखना चाहता हूं!"

कीर्ति और नीना स्वयं बच्चे को देखने के लिए इतनी बेचैन थीं कि उस क्षण वे भूल गईं कि शकुन्तला अभी बेहोश है और डाक्टर अभी-अभी कह गई हैं कि उसे रक्त देना पड़ सकता है। बच्चे के साथ अभी अस्पताली औपचारिकता बरती जा रही है, उसका वजन लिया जा रहा है, उसे नहलाया जा रहा है, उसे नवीन परिधानों से आभूषित किया जा रहा है।

लगभग दो घण्टे उपरांत बच्चा बाहर कमरे में लाया गया। उसकी आंखें अधखुली थीं। लगता था जैसे अधखिली कली की पांखें हों, लाल गबरू-सा उन्नत ललाट वाला था वह शिशु, लेकिन उसके पैर हल्के थे। कीर्ति ने कुछ चिंता की मुद्रा में कहा, "देखो न नीना बहिन, इसके पैर कुछ कमजोर मालूम पड़ते हैं।"

"नहीं, नहीं। पैर भी कमजोर नहीं हैं। कैसे कहती हो, हिला तो रहा है। सिर बेशक बड़ा है।" इतना कहने पर भी उसकी आवाज अंदर-ही-अंदर कुछ रुकी-सी मालूम पड़ती थी। उसने हल्की-सी चिकोटी बच्चे के एक पैर में भरी। बच्चा अकुला गया, उसका सारा धड़ तड़प गया, लेकिन पैरों में उतनी तेज थिरकन नहीं हुई। घबराकर वह पीछे हट गई।

प्रेमजीतलाल दोनों स्त्रियों के इस कुतूहल को देख रहे थे और अन्दर ही अन्दर मुस्करा रहे थे। बोले, "अपनी अक्ल पर जोर देने से बेहतर यह होगा कि आप डाक्टर से परामर्श करें, पर मेरा खयाल है कि डाक्टर आप-

की तरह बेनोमन चर्चा में उतनी दिलचस्पी नहीं ले सकेगी। शकुन्तला के प्राणों पर बीत रही है और आप इस बच्चे के पैरों की व्यथा बांच रहे हैं। ठीक है, जैसे भी हैं, जब यह सारी दुनिया बिना पैरों के चल रही है, यह भी चल लेगा, जाकर डाक्टर से पूछो, शकुन्तला होश में आई कि नहीं?"

लगभग एक घन्टे के बाद शकुन्तला को बाहर लाया गया। स्ट्रेचर से उतारकर पलंग पर लिटाने के लिए नर्सों ने जितनी सावधानी बरती थी, उसीसे जाहिर होता था कि शकुन्तला की देह पूर्ण रूप से अशक्त हो चुकी है। पिछले बारह घंटों में वह इतनी बदल चुकी थी कि पहचानना मुश्किल था। चेहरा बिलकुल सफेद पड़ गया था, आंखों में जैसे गहरा विषाद छा गया था। पुतलियां घुमाने में भी कष्ट होता था। नर्सों ने ताकीद कर दी थी कि उसे अधिक बोलने पर मजबूर न किया जाए। फिर भी मीना, कीर्ति और उनके पीछे खड़े हुए प्रेमजीवनलाल इतने व्यग्र थे कि प्रश्नों की बौछार का सामना ही शकुन्तला को करना पड़ा। लेकिन शकुन्तला को बोलते न देखकर वे तीनों ही सहम गए थे और चुपचाप उस अवसर की प्रतीक्षा करने लगे थे जब कि वह स्वयं ही कुछ कहना चाहेगी। लगभग आधा घंटा इसी तरह बीत गया। कमरे में ऐसा सन्नाटा था कि लोग अपनी सांस की आवाज़ भी सुन सकते थे। बच्चा पालने में थोड़ा भी हिलता था, तो कपड़ों की सरसराहट से ही सब चौंक जाते थे। प्रायः आधा घंटे के बाद शकुन्तला ने पालने की ओर मुंह फेरा। उसकी आंखों से लगता था कि वह बच्चे को देखना चाहती है। सहमी-सहमी मीना बच्चे को उठा लाई। उसके पैर उसने यत्नपूर्वक ढक दिए। उसका गुलाब-सा सुंदर मुंह खिला था। शकुन्तला के चेहरे पर एक क्षण को मुस्कान उभर आई थी। करवट लेकर वह बच्चे की ओर मुड़ गई। मीना अभी भी सतर्कतापूर्वक यह यत्न कर रही थी कि वह उसके पैर न देख सके।

शकुन्तला ने अपना गाल उसके गाल से लगा दिया और क्षीण से स्वर में बोली, "बड़ा शरीफ मालूम होता है। हाथ-पैर भी नहीं पटकता।"

भेद के खुल जाने की आशंका तीनों आत्मीयों के मुंह पर उभर आई। प्रेमजीवनलाल ने कहा, "इसमें शक की गुंजाइश ही क्या है, शरीफों के बच्चे शरीफ ही होते हैं।"

शकुन्तला का मन अंदर से हुलस आया था। उसके हाथों में एक नयी शक्ति का संचार हो गया था और वह बच्चे के रोम-रोम को स्पर्श करके अपने पुण्य का प्रसाद प्राप्त करना चाहती थी, लेकिन मीना ने उसका हाथ

घुटनों से नीचे नहीं आने दिया और फिर सहसा बच्चे को उठा लिया, बोली, "डाक्टर ने तुम्हारा बोलना और हिलना-डुलना स्वास्थ्य के लिए खराब बताया है। मेहरबानी करके चुपचाप लेट जाओ। सारी ज़िंदगी इसे प्यार ही करना है।"

लेकिन शकुन्तला के मन में इतना भावावेश उभर आया था कि वह बड़-बड़ाती ही जा रही थी। वह कह रही थी, "काश! आज दिवाकर यहां होते। न जाने कब छूटकर आएंगे!"

इतने ही श्रम से उसके चेहरे पर पसीने की बूंदें छलक आई थीं। चेहरे पर मुरदनी छाती जा रही थी और हृदय की गति तेज़ हो गई थी। डाक्टर को बुला लिया गया था और उसने इंजेक्शन देकर शकुन्तला के सोने की व्यवस्था कर दी थी।

कमरे में फिर सन्नाटा छा गया था। परिचारकों को बुलाकर डाक्टर ने अच्छी तरह समझा दिया था कि शकुन्तला की स्थिति अभी संतोषजनक नहीं है। थोड़े-से आघात अथवा श्रम से उसकी हालत बिगड़ सकती है और अभी यह भी देखना है कि जो रक्त उसके शरीर में पहुंचाया गया है, वह अनुकूल पड़ता है अथवा नहीं हालांकि आसार अच्छे हैं और भगवान सब कुछ कुशल ही करेगा।

यही कारण था कि सन्नाटे में मौत की छाया नज़र आ रही थी। लगभग तीन घंटे तक निद्रावस्था में अचेत रहकर सहसा शकुन्तला जाग उठी थी। उसका दिल बैठा जा रहा था और मस्तिष्क में उन्माद-सा अनुभव होता था। वह सोच रही थी, "मैंने ऐसा क्या पाप किया, जिसका इतना भयानक दुष्परिणाम भोग रही हूं। कोई भी आज मेरे पास नहीं है। न माता-पिता, न पति और न बच्चे को ही अपनी गोद में लेकर प्यार कर सकती हूं!"

इसी तरह सोचते-सोचते उसकी चेतना फिर विलुप्त हो गई। दोबारा होश आया तो उसकी आंखों में जैसे देखने की शक्ति नहीं रह गई थी। उसे अनुभव होने लगा कि जैसे उसकी सारी शिराओं में रक्त की तेज़ी बढ़ गई है। वह सोच नहीं सकती। लेकिन हाथ-पैरों में भयानक शक्ति का संचार हो गया है। आंखें थोड़ी साफ हुईं तो उसने देखा कि नीना फर्श पर कपड़ा बिछाकर लेट गई है और कीर्ति कुरसी पर बैठी ऊंघ रही है। सहसा वह अपने बिस्तर पर बैठ गई। वह उठी और पालने के निकट पहुंच गई। बच्चा नींद में सोया था, उसे गोद में लेकर छाती से लगाने की एक उत्कट अभिलाषा

से आगे

मन में आग उठी। वह उसके ऊपर से [illegible] हुई है [illegible] रही थी कि
ा उनकी नजर बच्चे के पैरों पर पड़ी। पालने का [illegible] लेकर उसने
के पैरों को स्पर्श किया। स्पर्श से बच्चे का [illegible] कुनमुनाया लेकिन
के पैर ज्यों के त्यों निस्पंद रहे। उसने अपनी एक उंगली [illegible] के साथ
के पैरों पर फिरायी लेकिन उनमें जीवन नहीं था। "हाय! इसके पैर
मे हैं!" और फिर हड़बड़ाकर उसने उसके पैरों को अपने [illegible] निर्-
ौर एक भयंकर चीख उसके कंठ से निकल गई और वह [illegible] पर ही ढेर
ी गई। पालना उलट गया था, बच्चा जमीन पर गिरकर [illegible] था।
और कीर्ति और नीना घबराकर जाग उठी थीं।

शकुन्तला मूर्च्छित हो गई थी। डाक्टर और उसके साथ नर्स कमरे में आ गई थीं। शकुन्तला को उठाकर पलंग पर लिटा दिया गया था। थोड़ी ही देर में उसके होंठ फड़कने शुरू हो गए थे और [illegible] हुई थी। डाक्टर ऑक्सीजन देने का प्रबंध कर रही थी। दूसरे डाक्टरों को बुलाया जा रहा था। नीना और शकुन्तला आंखों में आंसू लिए उसके निकट बैठी थीं। लेकिन शकुन्तला के हाथ से जैसे आशा की डोर छूट गई थी। उसकी आंखों से आंसू बह चले थे। कीर्ति पागल-सी उसके मुंह पर झुकी हुई थी। शकुन्तला कह रही थी, "मैं अब बच नहीं सकूंगी। काश, मैं मौत से लड़ सकती? और इस अभागे बच्चे के पैरों में जीवन का संचार कर सकती। उसकी टेक बन सकती। लेकिन ऐसा नहीं हो सकेगा। अब कौन उसे सहारा देगा? कीर्ति जीजी, मुझे बचा लो। मेरा बच्चा अनाथ हो जाएगा।"

कीर्ति और नीना क्या और नया आश्वासन देतीं। वे यह कल्पना भी नहीं कर सकती थीं कि इतने कठिन ऑपरेशन के सफल होने के बाद भी कोई अनिष्ट घटित हो सकता है। उनके मुंह में जैसे शब्द ही नहीं थे।

ऑक्सीजन देने का प्रबन्ध तत्परतापूर्वक हो रहा था, लेकिन उससे भी अधिक तेजी के साथ शकुन्तला की प्राणशक्ति का अवसान हो रहा था। अब उसकी बड़बड़ाहट को साफ नहीं सुना जा सकता था। मुंह के पास कान देकर कीर्ति ने सुनने की कोशिश की और यही सुन सकी थी, "जरूर मैंने पाप किया है। लेकिन मेरे पाप का अभिशाप मेरे बच्चे को क्यों लग गया। मेरा बच्चा! मेरा बच्चा, मेरा बच्चा, मेरा बच्चा!

धीरे-धीरे स्वर बन्द हो गया। उसी समय डाक्टर ने देखा कि उस[illegible] कान और आंख से रक्त की क्षीण धार बह चली है। डाक्टर ने अन्तिम

हृदय पर आला लगाकर देखा कि वह प्रायः निस्पंद हो चुका था। आक्सीजन देने के लिए जो नलिका नर्स आगे बढ़ा रही थी, डाक्टर ने हाथ के संकेत से उसे रोक दिया और परीक्षा समाप्त करते हुए कीर्ति से बोली, "खेद है ! कुछ नहीं हो सकता। शायद मस्तिष्क की शिराएं फट गई हैं, ब्रेन हैमरेज !"

धीरज और आशा का जैसे बांध टूट गया। कीर्ति पागल की तरह शकुंतला की निष्प्रण देह से चिपट गई थी और सुबक रही थी और नीना आंखों में आंसू लिए कभी शकुन्तला की ओर देखती और कभी बच्चे की ओर। कुछ क्षण इसी प्रकार बीत गए। उन्हें संभालने वाला भी वहां कोई नहीं था। गमगीन नर्स कमरे में अपना सामान बटोरती हुई आश्वासन के कुछ शब्द कहती जाती थी। नीना को सूझ ही नहीं रहा था कि वह क्या करे।

कीर्ति लाश को छोड़कर अब नीना से चिपट गई थी। "सब अन्त हो गया बहिन ! प्रभु ने हमारी मान्यता को स्वीकार नहीं किया। कितना निष्ठावान जीवन था उसका ! और कैसा अन्त हुआ !"

नीना स्वयं उस आघात से विकल हो उठी थी। उसके अन्दर का विश्वास हिल गया था और जीवन की निस्सारता इतनी घनीभूत होकर उसके मन पर छा गई थी कि कीर्ति को धीरज बंधाने के लिए शब्द ही नहीं सूझते थे। वह मन-ही-मन सोच रही थी कि बड़ी बहिन ने कितना उसके लिए किया था और अब कितना और करना बाकी है।

लगभग आध घंटे बाद प्रेमजीतलाल आए। उनकी उपस्थिति में कीर्ति कुछ संभल गई थी। प्रेमजीतलाल ने बताया कि उन्होंने दिवाकर की रिहाई के लिए अर्जी दे दी है। विश्वास है कि वह मंजूर हो जाएगी लेकिन फिर भी उन्हें यहां पहुंचने में काफी वक्त लग सकता है। मालूम पड़ता है कि पिछले दिनों उन्हें दिल्ली जेल से हटा दिया गया है। तभी नीना ने बताया कि नागपुर भी तार भेज दिया गया है। अगर जरूरत समझी जाए तो एक तार और भेजा जा सकता है। सभी ने यह मिलकर तय किया कि लाश को कम-से-कम नागपुर से मां-बाप के आने तक दफनाया न जाए। प्रेमजीतलाल लाश को बर्फ में रखने की व्यवस्था करने के लिए बाहर चले गए। कीर्ति ने शकु[illegible] की स्थिति [illegible] बारे में मेजर कुमार को पहले ही पत्र लिख दिया [illegible] जल्द आने का आग्रह भी कर दिया था। फिर भी उन्[illegible] उचित समझा गया और प्रेमजीतलाल को उनका पता [illegible]

कीर्ति के घर पहुंचने तक अपनी मुक्ति के आदेश-पत्र के अनुसार दिवाकर बीमारी के अच्छे और बुरे परिणामों पर विचार करता हुआ केवल घबराहट ही महसूस करता आ रहा था। दरवाज़े पर ही उसे रामप्रसाद मिल गया था। उसने दिवाकर के पैर छूने की कोशिश की थी, लेकिन दिवाकर घबराया-सा अन्दर चला आया था। उसे आया देखकर बच्चे के पालने के पास बैठी हुई आया उठकर खड़ी हो गई थी। दिवाकर ने किसी अज्ञात अन्तरप्रेरणा से जान लिया था कि वह उसीका बच्चा है और आया ने भी उसकी मुखाकृति को देखकर यह पहचान लिया था कि वह बच्चे का बाप है। इतने में रामप्रसाद ने आकर कहा, "लड़का है हुजूर!"

"लेकिन घर के सब लोग कहां हैं! शकुन्तला क्या अस्पताल में है?"

रामप्रसाद सहसा उत्तर नहीं दे सका। उसका गला रुंध गया था। किसी तरह वह बोला, "तीन दिन तक लाश बरफखाने में रखी रही। नागपुर से पापा और मां आ गए हैं। कश्मीर से मेजर साहब भी आ गए हैं। आज ही लाश को दफन करने के लिए ले गए हैं। सिर्फ कुछ ही घंटों की देर हो गई हुजूर, वरना आप जानेवाली का मुंह तो देख सकते थे।"

आगंतुक के आने से घर में व्यथा का ऐसा झोंका उमड़ा कि आया भी उससे अछूती न रह सकी। उसका चेहरा भी गमगीन हो गया। वह बोली, "बहुत सवेरे ही गए हैं। अब तो शायद लौट रहे हों। ज्यादा से ज्यादा चर्च में होंगे।" दिवाकर की नज़र बच्चे के चेहरे पर टिकी हुई थी और पास में रखे स्टूल पर बैठा हुआ वह उसके नन्हें कोमल पैरों को स्पर्श करता हुआ किसी स्वप्न में डूब गया था और इसी अवस्था में वह इतनी देर तक बैठा रहा कि आया घबरा उठी थी और रामप्रसाद बेचैनी में कभी अंदर आता था और कभी बाहर चला जाता था। वह शायद इस प्रतीक्षा में था कि घरवाले जाएं, तो दिवाकर को संभालें। आया को पास बुलाकर वह फुसफुसा था, "बच्चे की ओर एकटक कैसे देख रहे हैं। खबर सुनकर एक आंसू इनकी आंख से नहीं गिरा। बहुत गहरा सदमा पहुंचा है?"

लगभग एक घंटे के बाद घर के लोग वापस आए। उस समय तक दिवाकर अपलक ही बच्चे की ओर देख रहा था। दिवाकर को घर में देखकर सभी आश्चर्यचकित थे। कीर्ति बेसुध होकर उसकी पीठ से लिपट गयी थी और उसकी गरदन को अपने आंसुओं से भिगो रही थी, लेकिन दिवाकर जैसे किसी स्वप्न से जागा हो। कुछ संभलता हुआ वह बोला, "क्या हुआ ? आप क्यों रोती हैं ?"

सारा घर भरा हुआ था। नीना आंखों में आंसू लिये खड़ी थी। प्रेमजीतलाल दुःख और आश्चर्य में डूबे उसके पास कुर्सी खिसकाकर आ बैठे थे और कीर्ति के पापा और उसकी मां शायद इतने रो चुके थे कि अब दिवाकर के दुःख को बंटाने के लिए उनके पास आंसू नहीं थे।

मि० जोज़ेफ अपनी छड़ी का सहारा लेकर उठे और कीर्ति को संभालते हुए बोले, "अब इस तरह बेहाल होने से क्या फायदा है ! जो गया सो गया।"

संभवतः दिवाकर के प्रति कोई विशेष संवेदना का भाव उनके मन में अभी पैदा नहीं हुआ था। और मां अभी तक एक टक दिवाकर को देख रही थी। शायद मन ही मन यह निर्णय कर रही थी कि घृणा के साथ उसकी तरफ से अपना मुंह फेर ले या कि सहानुभूति के दो शब्द उससे कहे। लेकिन सभी को यह आश्चर्य था कि दिवाकर एकदम मौन हो गया है और उसकी नज़र कुछ भी नहीं देख रही है। प्रेमजीतलाल ने उसकी ठोड़ी ऊपर उठाई और करुणा-विगलित स्वर में कहा, "दिवाकर, शकुन्तला तुम्हें याद करते-करते चली गई। अब तक उसने तुम्हारी अमानत को संभाला था, अब तुम्हें उसकी अमानत को संभालना है।"

दिवाकर फिर भी मौन था। वह जैसे सुन नहीं रहा था और देख नहीं रहा था। उसकी सांस जरूर चल रही थी। उसकी नाड़ी भी स्पंदन कर रही थी, लेकिन वह जैसे मर चुका था, निश्चेतन हो चुका था। आंसुओं की उस बरसात का उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वह देख नहीं रहा था। उधर से मां ने आगे बढ़कर कहा, "क्या इतना गहरा सदमा पहुंचा है ? अरे इसे बचाओ वरना यह पागल हो जाएगा !"

सबने मिलकर उसे बिस्तर पर लिटा दिया था और प्रेमजीतलाल अपनी गाड़ी में बैठकर डाक्टर को लेने चले गए। डाक्टर के आने तक कीर्ति और नीना ने बहुत कुछ उसके कान में कहने की कोशिश की थी। नीना कह रही थी, "दिवाकर भाई, भाभी ने अंतिम समय में कहा था कि मैं उनकी ओर से

से क्षमा मांग लूं कि आपके लिए कुछ नहीं कर सकी।"
और कीर्ति कह रही थी, "शकुन्तला कह रही थी कि दिवाकर बहुत
हादुर आदमी हैं। इतना-सा सदमा उन्हें अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं
र सकेगा।" लेकिन ये सब शब्द जैसे किसी बहरे कान पर कहे गए हैं।
सकी पलकें अगर खुली थीं तो खुली रह गई थीं और अगर नीना ने उन्हें
बराकर बंद कर दिया था तो बन्द रह गई थीं। डाक्टर आया। ऊपरी
क्षणों को देखकर उसने बिना परीक्षा किए ही कहा कि सदमा बहुत गहरा
हुआ है। जिस समय इंजेक्शन देने के लिए डाक्टर ने उसकी बांह में सुई
लगाई, तो दिवाकर ने धीरे-धीरे आंखें खोल दी थीं। वह उठकर बैठ गया
था। चेतना जैसे वापस आ रही थी और कीर्ति और नीना की आंखों से बहते
हुए आंसू अब उसे दिखाई दे रहे थे। वह बोला, "आप रोती क्यों हैं?" इस
प्रश्न का उत्तर किसीके पास नहीं था। जो कुछ उसे जानना था, उसीको
जानकर तो यह आघात लगा था और अब भी वह उसी सवाल को दोहरा
रहा है। कहीं उत्तर नहीं था!

इंजेक्शन देकर डाक्टर बाहर निकला ही था कि मेजर कुमार उसे बरा-
मदे में मिल गए। "अब कौन बीमार हुआ डाक्टर? बच्चा तो ठीक है न?"
"बच्चा तो ठीक है। शायद मरने वाली का पति है", मेजर कुमार अंदर
आ गए। उन्होंने दिवाकर को देखते ही समझ लिया कि आघात गहरा पहुंचा
है और जब तक उसके मन को उसकी जकड़ से निकाला नहीं जाएगा, तब
तक वह सामान्य मनःस्थिति को प्राप्त नहीं कर सकेगा। कीर्ति से उन्होंने
कहा, "शकुन्तला की कोई तस्वीर तुम्हारे पास है?"

"हां है। शादी के वक्त पर बहुत-सी तस्वीरें खींची गई थीं। पूरा अल-
बम उसकी तस्वीरों से भरा हुआ है।"

"जो सबसे बड़ी तस्वीर हो, उसे उठाकर लाओ।"

कीर्ति तस्वीर ले आई। मेजर कुमार ने तस्वीर दिखा करके सामने करते
हुए कहा, "आप इस तस्वीर को पहचानते हैं?"

दिवाकर ने स्वीकृति में सिर हिला दिया। फिर भी जिस तूफान की
उम्मीद वे कर रहे थे, उसके आसार कहीं दिखाई नहीं पड़े।

मेजर कुमार ने आहिस्ता से अपनी पत्नी के कान में कहा, "ये साहब अगर
दुरुस्त न हुए तो कल तक पुलिस इन्हें वापस ले जाकर किसी अस्पताल में भरती कर
देगी और यहां तुम्हारे ठीक हो गए तो अच्छा है वरना खुदा हाफ़िज़"

लोग तैयार हो जाओ। मैं आखिरी कोशिश करता हूं!"

"क्या कोशिश करोगे?" कीर्ति ने कहा।

"सीधे कब्रगाह ले चलना चाहता हूं। अगर वहां भी इनकी याद ताज़ा नहीं हुई, तो फिर यह कोशिश करनी चाहिए कि सरकारी तौर पर इनका इलाज हो जाए। लेकिन पहले हमें भी कोशिश करनी चाहिए।"

कार में आगे प्रेमजीतलाल और मेजर कुमार बैठे थे और पीछे की सीट पर एक तरफ कीर्ति और दूसरी तरफ नीना दिवाकर को बीच में लेकर बैठी थीं। नीना इतनी उदास थी कि जैसे उसे ज़िंदा ही दफन करने ले जाया जा रहा है और कीर्ति अपने पति के चौड़े कंधों को देख रही थी, उसकी धूप में तपी सीधी गर्दन को देख रही थी, जिस पर इक्के-दुक्के सफेद बाल शोभित होने लगे थे। मन ही मन वह एक अज्ञात गर्व से भर उठी थी और दिवाकर को दिखाने के लिए चित्रों की जो अलबम उसने गोद में संभाली हुई थी, जोरों से अपने हाथों में दबा ली थी। कनखियों से वह दिवाकर को देख रही थी कि वह उन चित्रों को देखने का पात्र भी है!

दिवाकर की पलकें अधमुंदी-सी थीं। पालने में लेटे बच्चे को देखकर उसके मन में क्या भाव आया कि वह हतचेत हो गया, यह बात उसे अभी तक ज्ञात नहीं हुई। शकुन्तला चली गई, पर उसके मन में वह आई ही कहां थी! वह बच्चा आ गया था, उसके दुनिया में आने से पहले ही उसकी छाया उसके मन पर पड़ गई थी और उसके साथ शकुन्तला के प्रति भी एक नया भाव उसके मन में आ गया था, लेकिन क्या उसमें उतनी आसक्ति थी जितनी स्त्री और पुरुष के बीच होती है? यदि नहीं तो वह पुरुष कैसे है? लेकिन वह पुरुष था। उसका ही बच्चा पालने में सो रहा था। उसके पैर नहीं थे। वह पगहीन पुत्र का पिता है। उसका पुत्र अभिमान के साथ धरती पर कदम फटकारता हुआ कभी नहीं चलेगा। यह कौन से अकर्म का अभिशाप है? किससे पूछूं? किससे मन की व्यथा कहूं?

दिवाकर को मालूम नहीं था कि वह सोच रहा है। वह इतनी तेज़ी से सोच रहा था कि लगता था कि मस्तिष्क स्थिर हो गया है। मस्तिष्क स्थिर ही हो गया था। मेजर कुमार ने पीछे मुड़कर देखा और अपनी पत्नी को इशारा किया, "तस्वीर दिखाओ!" कीर्ति के चेहरे पर झुंझलाहट उभर आई। उसने कंधे के सहारे दिवाकर को थोड़ा जगाने की कोशिश की और अलबम खोलना शुरू कर कर दिया। आह, हर चित्र में उसकी प्यारी शिक्की कितनी

भोली और सुन्दर लग रही है। किससे उसकी तुलना करके अपने मन को सांत्वना दे। दिवाकर विवाह के अवसर पर भी जैसे कोई दिवास्वप्न देख रहा था।

इन चित्रों को देखकर दिवाकर के कण्ठ से एक आह निकल गई। एक हल्की-सी रोशनी शायद एक चित्र में से निकली थी और उसके मानस को स्पर्श कर गई थी। "अब ये आंखें देखने को नहीं मिलेंगी" दिवाकर बुदबुदाया "जीत भाई! शकुन्तला कहां चली गई? मेरी निष्ठुरता ने उसे मार डाला!"

उसका गला रुंध गया था।

"नहीं, नहीं, दिवाकर भाई, उसने तुम्हें कभी निष्ठुर नहीं माना। जाते समय भी वह तड़प रही थी। वह सच्ची पत्नी थी और सच्ची मां बनना चाहती थी। यह हम सभी का दुर्भाग्य था कि उसे बचा नहीं सके।"

दो बूंद आंसू दिवाकर की आंखों से ढुलक पड़े। उसे याद आई—जेल की सीखचों से बाहर निकले उसके हाथों पर किस तरह दो आंसू शकुन्तला की आंखों से टपक पड़े थे। उसका सारा शरीर जैसे पाले की तरह घुल गया था।

कब्र गीली थी। उसके नीचे शकुन्तला की देह है। वही देह जो कभी कुन्दन की तरह दमकती थी, जिसमें चन्दन से भी मीठी सुगन्ध महकती थी, वही देह अब मिट्टी के नीचे दबी है। उन्मत्त की भांति दिवाकर उस गीली मिट्टी से चिपक गया था। जैसे शव और मिट्टी का व्यवधान समाप्त हो गया था और उसकी शकुन्तला आंखों में प्यार भरकर हल्की-हल्की थपकी देकर उसके सिर को सहला रही थी और दिवाकर के अन्तर में सहस्रों प्रपातों के स्वर से भी अधिक रहस्यमय कोई घोष जाग उठा था।

शकुन्तला!!

यह स्वर दिवाकर के कण्ठ से निकला तो एक बार कब्रगाह में मौजूद सभी लोग स्तम्भित रह गए। सभी के कण्ठ अवरुद्ध हो गए और मौनि जो अभी-अभी उसे एक अपदार्थ समझकर घृणा से भर उठी थी, इतनी विगलित हो गई थी कि अगर अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी उसकी वेदना का एक अंश कम कर सकती तो अपने जीवन को धन्य मानती।

मेजर कुमार का मिशन पूरा हो चुका था। दिवाकर के कंधे को जोर का झटका देकर वे कह रहे थे, "अब हौसला करो दोस्त! [illegible]"

लोग तैयार हो जाओ। मैं आखिरी कोशिश करता हूं!"

"क्या कोशिश करोगे?" कीर्ति ने कहा।

"सीधे कब्रगाह ले चलना चाहता हूं। अगर वहां भी इनकी याद ताज़ा नहीं हुई, तो फिर यह कोशिश करनी चाहिए कि सरकारी तौर पर इनका इलाज हो जाए। लेकिन पहले हमें भी कोशिश करनी चाहिए।"

कार में आगे प्रेमजीतलाल और मेजर कुमार बैठे थे और पीछे की सीट पर एक तरफ कीर्ति और दूसरी तरफ नीना दिवाकर को बीच में लेकर बैठी थीं। नीना इतनी उदास थी कि जैसे उसे ज़िंदा ही दफन करने ले जाया जा रहा है और कीर्ति अपने पति के चौड़े कंधों को देख रही थी, उसकी धूप में तपी सीधी गर्दन को देख रही थी, जिस पर इक्के-दुक्के सफेद बाल शोभित होने लगे थे। मन ही मन वह एक अज्ञात गर्व से भर उठी थी और दिवाकर को दिखाने के लिए चित्रों की जो अलबम उसने गोद में संभाली हुई थी, जोरों से अपने हाथों में दबा ली थी। कनखियों से वह दिवाकर को देख रही थी कि वह उन चित्रों को देखने का पात्र भी है!

दिवाकर की पलकें अधमुंदी-सी थीं। पालने में लेटे बच्चे को देखकर उसके मन में क्या भाव आया कि वह हतचेत हो गया, यह बात उसे अभी तक ज्ञात नहीं हुई। शकुन्तला चली गई, पर उसके मन में वह आई ही कहां थी! वह बच्चा आ गया था, उसके दुनिया में आने से पहले ही उसकी छाया उसके मन पर पड़ गई थी और उसके साथ शकुन्तला के प्रति भी एक नया भाव उसके मन में आ गया था, लेकिन क्या उसमें उतनी आसक्ति थी जितनी स्त्री और पुरुष के बीच होती है? यदि नहीं तो वह पुरुष कैसे है? लेकिन वह पुरुष था। उसका ही बच्चा पालने में सो रहा था। उसके पैर नहीं थे। वह पगहीन पुत्र का पिता है। उसका पुत्र अभिमान के साथ धरती पर कदम फटकारता हुआ कभी नहीं चलेगा। यह कौन से अकर्म का अभिशाप है? किससे पूछूं? किससे मन की व्यथा कहूं?

दिवाकर को मालूम नहीं था कि वह सोच रहा है। वह इतनी तेज़ी से सोच रहा था कि लगता था कि मस्तिष्क स्थिर हो गया है। मस्तिष्क स्थिर ही हो गया था। मेजर कुमार ने पीछे मुड़कर देखा और अपनी पत्नी को इशारा किया, "तस्वीर दिखाओ!" कीर्ति के चेहरे पर झुंझलाहट उभर आई। उसने कंधे के सहारे दिवाकर को थोड़ा जगाने की कोशिश की और अलबम खोलना शुरू कर कर दिया। आह, हर चित्र में उसकी प्यारी शिक्की कितनी

भोली और सुन्दर लग रही है। किससे उसकी तुलना करके अपने मन को सान्त्वना दे। दिवाकर विवाह के अवसर पर भी जैसे कोई दिवास्वप्न देख रहा था।

इन चित्रों को देखकर दिवाकर के कण्ठ से एक आह निकल गई। एक हल्की-सी रोशनी शायद एक चित्र में से निकली थी और उसके मानस को स्पर्श कर गई थी। "अब ये आखें देखने को नहीं मिलेंगी" दिवाकर बुदबुदाया "जीत भाई! शकुन्तला कहां चली गई? मेरी निष्ठुरता ने उसे मार डाला!"

उसका गला रुंध गया था।

"नहीं, नहीं, दिवाकर भाई, उसने तुम्हें कभी निष्ठुर नहीं माना। जाते समय भी वह तड़प रही थी। वह सच्ची पत्नी थी और सच्ची मां बनना चाहती थी। यह हम सभीका दुर्भाग्य था कि उसे बचा नहीं सके।"

दो बूंद आंसू दिवाकर की आंखों से ढुलक पड़े। उसे याद आई—जेल की सीखचों से बाहर निकले उसके हाथों पर किस तरह दो आंसू शकुन्तला की आखों से टपक पड़े थे। उसका सारा शरीर जैसे लावे की तरह घुल गया था।

कब्र गीली थी। उसके नीचे शकुन्तला की देह है। वही देह जो कभी कुन्दन की तरह दमकती थी, जिसमे चन्दन से भी मीठी सुगन्ध महकती थी, वही देह अब मिट्टी के नीचे दबी है। उन्मत्त की भांति दिवाकर उस गीली मिट्टी से चिपक गया था। जैसे शव और मिट्टी का व्यवधान समाप्त हो गया था और उसकी शकुन्तला आखों में प्यार भरकर हल्की-हल्की थपकी देकर उसके सिर को सहला रही थी और दिवाकर के अन्तर में सहस्रों प्रपातों के स्वर से भी अधिक रहस्यमय कोई घोष जाग उठा था।

शकुन्तला!!

यह स्वर दिवाकर के कण्ठ से निकला तो एक बार कब्रगाह में मौजूद सभी लोग स्तम्भित रह गए। सभीके कण्ठ अवरुद्ध हो गए और कीर्ति जो अभी-अभी उसे एक अपदार्थ समझकर घृणा से भर उठी थी, इतनी विचलित हो गई थी कि अगर अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी उसकी वेदना का एक अंश कम कर सकती तो अपने जीवन को धन्य मानती।

मेजर कुमार का मिशन पूरा हो चुका था। दिवाकर के कंधे को जोर का झटका देकर वे कह रहे थे, "अब हौसला करो दोस्त! लम्बी जिन्दगी